महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya

(A Center University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)

ज्ञान शांति मैत्री

एम.बी.ए. पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम कोड : MBA - 001

प्रथम सेमेस्टर

पाठ्यचर्या कोड : MBA – 405

पाठ्यचर्या का शीर्षक : व्यवसाय के कानूनी पहलू

दूर शिक्षा निदेशालय

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र)

प्रथम सेमेस्टर – 405 व्यवसाय के कानूनी पहलू

मार्ग निर्देशन समिति

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

संपादक

प्रो. अरबिंद कुमार झा
निदेशक, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

मनोज कुमार चौधरी
पाठ्यक्रम संयोजक: एमबीए, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा
सहायक प्रोफेसर, प्रबंधन विद्यापीठ, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

संपादक मंडल

डॉ. रवीन्द्र. टी. बोरकर
सह प्रोफेसर एवं क्षेत्रीय निदेशक, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

डॉ. ए. के. जे. मंसूरी
जी. एस. कॉलेज ऑफ़ कॉमर्स, वर्धा

डॉ. राम ओ. पंचारिया
बी. डी. कॉलेज ऑफ़ इंजीनियरिंग, सेवाग्राम

डॉ विनय चतुर्वेदी
सहायक प्रोफेसर,
दूर शिक्षा निदेशालय म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

प्रकाशक:

कुलसचिव, महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
पोस्ट: हिंदी विश्वविद्यालय, गाँधी हिल्स, वर्धा, महाराष्ट्र – 442001

पाठ्यक्रम परिकल्पना, संरचना एवं संयोजन
मनोज कुमार चौधरी
पाठ्यक्रम संयोजक: एमबीए, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा
सहायक प्रोफेसर, प्रबंधन विद्यापीठ, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

इकाई लेखन
मनोज कुमार चौधरी
सहायक प्रोफेसर, प्रबंधन विद्यापीठ, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

कार्यालयीन एवं मुद्रण सहयोग
श्री विनोद वैद्य
सहायक कुलसचिव, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

डॉ. महेंद्र प्रसाद
सहायक संपादक, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

सुश्री राधा ठाकरे
टंकक, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)
Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya
(A Central University Established by Parliament by Act No. 3 of1997)

विषय कोड: MS 405 **क्रेडिट्स:** 4 क्रेडिट

विषय का नाम: व्यवसाय के कानूनी पहलु **(Legal Aspects of Business)**

पाठ्यक्रम के उद्देश्य:

- अनुबंध की अवधारणा तथा माल बिक्री अधिनियम से विद्यार्थियों को अवगत कराना |
- साझेदारी अधिनियम तथा कम्पनी अधिनियम से विद्यार्थियों को अवगत कराना।

मूल्यांकन के मानदंड:

1. सत्रांत परीक्षा : 70 %
2. सत्रीय कार्य : 30 %

पाठ्यक्रम सामग्री:

इकाई - I: भारतीय अनुबंध अधिनियम, 1872 **(Indian Contract Act, 1872)**

- भारतीय अनुबंध अधिनियम: एक परिचय (Indian Contract Act: An Introduction)
- अनुबंध करने की क्षमता (Capacity to Contract)
- व्यर्थ एवं व्यर्थनीय अनुबंध (Void and Voidable Contract)
- अनुबंधों का निष्पादन (Performance of Contracts)

इकाई - II: वस्तु विक्रय अधिनियम, 1930**(Sales of Goods Act, 1930)**

- वस्तु विक्रय अधिनियम: एक परिचय (Sales of Goods Act: An Introduction)
- शर्त एवं आश्वासन (Conditions and Warranties)
- माल सुपुर्दगी संबंधी नियम (Rules for Delivery of Goods)
- स्वामित्व तथा स्वत्व का हस्तांतरण (Transfer of Ownership and Title)
- अदत्त विक्रेता के अधिकार तथा नीलामी द्वारा विक्रय (Rights of an Unpaid Seller and Sale by Auction)

इकाई - III: भारतीय साझेदारी अधिनियम, 1932 **(Indian Partnership Act, 1932**

- भारतीय साझेदारी अधिनियम: एक परिचय (Indian Partnership Act: An Introduction)
- अवयस्क साझेदार (Minor Partner)
- साझेदारों के आपसी संबंध (Mutual Relations of Partners)
- साझेदारी फर्म का समापन (Dissolution of a Partnership Firm)

इकाई - IV: उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 **एवं कंपनी अधिनियम,** 2013 **(Consumer Protection Act, 1986 and Companies Act, 2013)**

- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम: एक परिचय (**Consumer Protection** Act: An Introduction**)**

- जिला, राज्य एवं केन्द्रीय फोरम (District, State and Central Forum)
- उपभोक्ता संरक्षण परिषद (Consumer Protection Council)
- उपभोक्ता के अधिकार (Consumer rights)
- कंपनी अधिनियम: एक परिचय (Companies Act: An Introduction)
- कंपनी निर्माण की प्रक्रिया (Formation of Company)

इकाई - V: कंपनी की पूँजी, प्रबंधन एवं समापन (Company's Capital, Management and Winding Up)

- शेयर, शेयर-पूँजी तथा इसका आबंटन (Shares, Share Capital and its Allotment)
- ऋण लेने के अधिकार, प्रभार एवं ऋण-पत्र (Borrowing Powers, Charges and Debentures)
- कंपनी का प्रबंधन (Company Management)
- अत्याचार एवं कुप्रबंधन की रोकथाम (Prevention of Oppression and Mismanagement)
- कंपनी का समापन (Winding Up of a Company)

सम्बन्धित पुस्तकें:

- Gogna P.P.S. (2008), Mercantile Law, 4th Edition, S. Chand & Co. Ltd., India.
- Pathak Akhileshwar (2010), Legal Aspects of Business, 4th Edition, Tata McGraw Hill.
- Shukla M.C. (2007), Mercantile Law, First Edition, S. Chand & Company Ltd.
- Maheshwari & Maheshwari (2009), Elements of Corporate Laws, Himalaya Publishing House Pvt. Limited, India.
- Kapoor N. D. (2009), Elements of mercantile Law, Latest Edition, Sultan Chand and Company, India.

अनुक्रम

क्र. सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
1.	इकाई 1 – भारतीय अनुंबध अधिनियम, 1872	6-50
2.	इकाई 2 – वस्तु विक्रय अधिनियम, 1930	51-80
3.	इकाई 3 – भारतीय साझेदारी अधिनियम, 1932	81-102
4.	इकाई 4 – उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 एवं कंपनी अधिनियम, 2013	103-140
5.	इकाई 5 – कंपनी की पूँजी, प्रबंधन एवं समापन	141-209

इकाई – I: भारतीय अनुबंध अधिनियम, 1872

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 भारतीय अनुबंध अधिनियम: एक परिचय
1.3 अनुबंध करने की क्षमता
1.4 व्यर्थ एवं व्यर्थनीय अनुबंध
1.5 अनुबंधों का निष्पादन
1.6 सारांश
1.7 बोध प्रश्न
1.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- अनुबंध की अवधारणाओं को स्पष्ट कर सकेंगे।
- अनुबंध करने की क्षमता का उल्लेख कर सकेंगे।
- वैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य को जान सकेंगे।
- व्यर्थ एवं व्यर्थनीय अनुबंधों के समझ सकेंगे।
- अनुबंधों के निष्पादन संबंधी नियमों को समझ सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

अनुबंध शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द contract का हिंदी अनुवाद है। अंग्रजी भाषा के शब्द contract की उत्पत्ति लैटिन भाषा के contrectom शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है साथ मिलना अथवा खीचना होता है। व्यापार मे जो कार्य हम स्वंय नही करते है उन्हे दूसरे की सहायता से कराते है। दूसरा व्यक्ति जब इस कार्य को करने की सहमति दे देता है तब हम अपना कार्य करने का दायित्व उसे सौंप देते है। वास्तव में सहमति ही एक प्रकार का अनुबंध होता है। यह अनुबंध का केवल शाब्दिक अर्थ होता है। वास्तव मे यह एक वैधानिक शब्द है जिसका अर्थ है कि दो या दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य वैध ठहराव का होना।

व्यापार के दौरान हुआ अनुबंध कानून द्वारा भी सभी पक्षकारो के लिए बाध्यकारी होता है जिसका अनुसरण न करने पर दण्ड का प्रावधान है। वर्तमान प्रतिस्पर्धात्मक व्यापारिक गतिविधियों में अनुबंध सम्बन्धी अवधारणा, नियम, प्रक्रिया, आदि का ज्ञान आवश्यक है।

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 10 के अनुसार केवल वे ही पक्षकार अनुबंध कर सकते हैं जिनमें अनुबंध करने की क्षमता हो। एक वैध अनुबंध का दूसरा आवश्यक लक्षण संबंधित पक्षकारों में अनुबंध करने की क्षमता का होना है, क्योंकि अनुबंध द्वारा वैधानिक उत्तरदायित्व का निर्माण होता है जिसको पूर्ण करने के लिए प्रत्येक पक्षकार में अनुबंध करने की क्षमता का होना आवश्यक है। अनुबंध करने वाले पक्षकारों को उसके वैधानिक परिणामों की समझ होनी चाहिए तथा वह अपना हित और अहित जानने वाला होना चाहिए।

वैध अनुबंध के अंतर्गत पक्षकारों के बीच उत्तरदायित्व उत्पन्न होते हैं। इन उत्तरदायित्वों को उत्क अनुबंध से पृथक नहीं किया जा सकता। उन उत्तरदायित्वों को पूरा करने पर अनुबंध का निष्पादन हो जाता है। अतः अनुबंध के निष्पादन से आशय पक्षकारों द्वारा अपने-अपने उत्तरदायित्वों को पूरा किये जाने से है।

अनुबंध का निष्पादन उस समय तक पूरा नहीं माना जायेगा जब तक कि पक्षकारों ने अपना वचन पूर्ण एवं सूक्ष्म रूप से पूरा न कर दिये हों। अतः अनुबंध से संबंधित पक्षकारों को अपने-अपने वचनों का निष्पादन करना चाहिए अथवा निष्पादन करने के लिए प्रस्ताव करना चाहिए; जबकि इस प्रकार के निष्पादन से राजनियम की व्यवस्थाओं के अंतर्गत अथवा किसी राजनियम के प्रभाव से छुटकारा न मिल गया हो।

यदि अनुबंध से कोई विपरीत आशय प्रकट न होता हो तो किसी पक्षकार की मृत्यु हो जाने पर उसके वचनों का निष्पादन उसके प्रतिनिधियों पर बाध्य होता है।

1.2 भारतीय अनुबंध अधिनियम: एक परिचय

अनुबंध की अवधारणा

भारतीय अनुबंध अधिनियम 1872 से पूर्व देश मे ऐसा कोई सामान्य अनुबंध अधिनियम नही था जो सम्पूर्ण राष्ट्र में समान रूप से लागू होता रहा हो। भारत मे अनुबंध अधिनियम 25 अप्रैल 1872 को भारतीय संसद द्वारा भारतीय अनुबंध अधिनियम के नाम से पारित किया गया। यह जम्मू और कश्मीर राज्य को छोडकर भारत के समस्त राज्यों के लिए लागू होता है।

अनुबंध अधिनियम का उददेश्य अनुबंध के पक्षकारों को अपने वचनों अथवा दायित्वों को पूरा करने हेतु बाध्य करना है जिससे व्यावसायिक गतिविधियों का संचालन सफलता पूर्वक संभव हो।

अनुबंध की परिभाषाएं –

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 2 एच के अनुसार, '' अनुबंध एक ठहराव है जो कि राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होता है।''

इसके अलावा अनुबंध शब्द को विभिन्न विद्वानो एवं न्यायधीशों ने समय समय पर परिभाषित किया है :

श्री सालमण्ड के अनुसार, '' अनुबंध एक प्रकार का ठहराव है जो पक्षकारो के मध्य दायित्व उत्पन्न करता है तथा पक्षकारों के दायित्व की व्याख्या करता है।''

लार्ड हाल्सबरी के शब्दो में, '' अनुबंध दो या दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य ऐसा ठहराव है जो राजनियम द्वारा प्रवर्तित कराने के उददेश्य से किया जाता है तथा इसका निर्माण एक पक्ष्कार द्वारा किसी कार्य को करने अथवा करने से विरत रहने से दूसरे पक्षकार के प्रस्ताव की स्वीकृति देने के परिणाम स्वरूप होता है।''

अनुबंध की विशेषताएं

अनुबंध की विशेषताएं निम्नलिखित है :

- अनुबंध के लिए पहले ठहराव का होना आवश्यक होता है।
- केवल वही ठहराव अनुबंध होता है जो कि राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय हो।
- अनुबंध दो या दो से अधिक पक्षकारों के मध्य होता है।
- अनुबंध के द्वारा पक्षकारों के वैधानिक दायित्व उत्पन्न होते है।
- अनुबंध किसी कार्य के करने अथवा न करने के संबंध में हो सकता है।

वैध अनुबंध के तत्व

प्रस्ताव + स्वीकृति = वादा
\+
प्रतिफल
=
ठहराव
\+
राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय
=
अनुबंध

संविदा अधिनियम की धारा 10 के अनुसार किसी वैध अनुबंध को संविदा की संज्ञा देने के लिए निम्नलिखित तत्वों का समाहित होना आवश्यक है :

1. **कानूनी संबंध बनाने के लिए सही इरादे के साथ प्रस्ताव और स्वीकृति** – वैध अनुबंध का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण पक्षकारों के मध्य ठहराव का होना है, प्रत्येक ठहराव की उत्पत्ति प्रस्ताव और स्वीकृति से होती है। प्रस्ताव और स्वीकृति तभी प्रभावी होते है जब उसका संवहन हो जाए।
2. **दो या दो से अधिक पक्षकारों का होना** – किसी भी अनुबंध के होने के लिए दो या दो से अधिक पक्षकारों का होना आवश्यक है। इन पक्षकारों में से एक प्रस्ताव रखता है तथा दूसरा स्वीकृति देता है। दूसरे पक्ष द्वारा प्रस्ताव की स्वीकृति देते ही अनुबंध का निर्माण होता है।
3. **वैध प्रतिफल का होना** – प्रतिफल अवैध, अनैतिक या सार्वजनिक नीति के विरूद्ध नही होना चाहिए। अनुबंध हमेशा वैध प्रतिफल के बदले किया गया होना चाहिए। किसी अनुबंध में यदि इसका अभाव होता है तो वह एक बाजी अथवा जुआ कहलायेगा।
4. **पक्षकारों में अनुबंध करने की क्षमता** – अनुबंध करने के लिए पक्षकारों को कानूनी क्षमता होना आवश्यक है।

   भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा11 के अनुसार हर व्यक्ति अनुबंध करने में सक्षम है यदि

   - कानून के अनुसार वयस्क हो, और
   - स्वस्थ मस्तिष्क का हो, और
   - किसी भी राजनियम के द्वारा अनुबंध करने के लिए अयोग्य घोषित न किया गया हो।
5. **स्वतंत्र सहमति** – अनुबंध के लिए पक्षकारों की सहमति होनी चाहिए तथा वह सहमति स्वतंत्र भी होनी चाहिए। स्वतंत्र इच्छा का अर्थ है कि वे उस वस्तु के प्रति एक ही अर्थो में सहमत हुए होने चाहिए। अनुबंध अधिनियम की धारा 14 के अनुसार सहमति उस समय स्वतंत्र मानी जाती है जब वह निम्नलिखित में से किसी के द्वारा भी प्रभावित न हो :

   I. उत्पीडन
   II. अनुचित प्रभाव
   III. कपट या धोखा
   IV. मिथ्या वर्णन
   V. त्रुटि अथवा गलती
6. **अनुबंध शुन्य धोषित नही होना** – अनुबंध को स्पष्ट रूप से शुन्य घोषित नही होना चाहिए। अवयस्क के साथ किये गए अनुबंध दोनो पक्षकारों द्वारा की गई तथ्य संबंधी गलती पर आधारित अनुबंध, अस्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्तिके साथ किये गए अनुबंध अवैाधानिक प्रतिफल एवं उददेश्य पर आधारित अनुबंध शुन्य होते है।

7. **अनुबंध लिखित एवं पंजीकृत होना** – अनुबंध लिखित, साक्षी द्वारा प्रमाणित तथा पंजीकृत होना चाहिए। बशर्ते कि भारत मे किसी राजनियम द्वारा ऐसा होना आवश्यक है।

"सभी अनुबंध ठहराव होते है परन्तु सभी ठहराव अनुबंध नही होता "

अनुबंध = ठहराव + राजनियम द्वारा प्रर्वतनीय

अनुबंध और ठहराव के बीच अंतर :-

क्र.सं.	आधार	अनुबंध	ठहराव
1	धारा	धारा) 2H)	धारा) 2E)
2	परिभाषा	प्रत्येक ऐसा ठहराव जो वैधानिक रूप से प्रवर्तनीय होता है, अनुबंध कहलाता है।	प्रत्येक वचन और वचनों का समूह जो एक दूसरे का प्रतिफल हो , ठहराव कहलाता है
3	प्रर्वतनीयता	अनुबंध वैधानिक रूप से प्रर्वतनीय होता है।	ठहराव में ऐसा होना आवश्यक नही है।
4	आपसी संबंध	सभी अनुबंध ठहराव होता है।	सभी ठहराव अनुबंध नही होता है ।
5	स्कोप	इसमें केवल वाणिज्यिक ठहराव होता है।	इसमें सामाजिक और वाणिज्यिक दोनो ठहराव होता है।
6	वैधता	केवल कानूनी ठहराव ही अनुबंध होता है।	एक ठहराव कानूनी और गैर कानूनी दोनो हो सकता है।
7	कानूनी बाध्यता	प्रत्येक अनुबंध में कानूनी बाध्यता होती है।	प्रत्येक ठहराव में कानूनी बाध्यता आवश्यक नही है।

अनुबंधों के प्रकार :

1. उत्पत्ति के आधार पर
   i. स्पष्ट अनुबंध
   ii. गर्भित अनुबंध
   iii. सांयोगिक अनुबंध
2. वैधता के आधार पर
   i. वैध अनुबंध

ii. व्यर्थ अनुबंध
iii. व्यर्थनीय अनुबंध
iv. अवैध अनुबंध
v. अप्रवर्तनीय अनुबंध

3. निष्पादन के आधार पर
   i. निष्पादित अनुबंध
   ii. निष्पादकीय अनुबंध
4. दायित्व के आधार पर
   i. द्विपक्षीय अनुबंध-
   ii. एकपक्षीय अनुबंध-

उत्पत्ति के आधार पर अनुबंध के प्रकार

उत्पत्ति के आधार पर अनुबंध निम्नलिखित तीन प्रकार के होते हैं :

i. **स्पष्ट अनुबंध** – यह बोल कर या लिखित शब्दों द्वारा किया गया अनुबंध है। भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 9 के अनुसार, स्पष्ट अनुबंध ऐसा अनुबंध है जो पक्षकारों द्वारा लिखित अथवा मौखिक रूप से शब्दों के उच्चारण द्वारा किया जाता है। उदाहरण के लिए, 'अ','ब' से कहता है की तुम मेरी बाइक 15000 रूपये में खरीदोगे ? और 'ब' हाँ कर देता है।

ii. **गर्भित अनुबंध** – वह अनुबंध जो लिखित या मौखिक रूप से न होकर पक्षकारों के आचरण द्वारा होता है, गर्भित अनुबंध कहलाता है। उदाहरण के लिए, 'अ' हाथ के इशारे द्वारा टैक्सी रोकता है और उसमें बैठ जाता है। यह गर्भित अनुबंध है और 'अ' उचित किराया का भुगतान करने के लिए बाध्य है।

iii. **सांयोगिक अनुबंध** – किसी घटना के घटित होने या न होने पर किसी कार्य को करने या न करने का अनुबंध सांयोगिक अनुबंध कहलाता है। उदाहरण के लिए, सचिन, सुरेश को अपने पुत्र के सकुशल लौटने पर 10,000 रूपये देने का वचन देता है। यह सांयोगिक अनुबंध है।

वैधता के आधार पर अनुबंध के प्रकार

वैधता के आधार पर अनुबंध निम्नलिखित पांच प्रकार के होते हैं :

i. **वैध अबुबंध** – भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 10 के अनुसार, सभी ठहराव अनुबंध होते हैं यदि वे उन पक्षकारों की स्वतंत्र सहमति से किये जाते हैं, जिनमें की अनुबंध करने की क्षमता है, जो

वैधानिक प्रतिफल एवं न्यायोचित उद्देश्य के लिए किये गए हों तथा वे इस अधिनियम के द्वारा स्पष्ट रूप में व्यर्थ घोषित नहीं किये गए हों।

ii. **व्यर्थ अनुबंध** – भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 2(j) के अनुसार, एक अनुबंध जब राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हो पता है, उस समय व्यर्थ हो जाता है तथा वह इस प्रकार से अप्रवर्तनीय हो जाता है।

iii. **व्यर्थनीय अनुबंध** – भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 2(i) के अनुसार, ठहराव जो केवल एक अथवा अधिक पक्षकारों की इच्छा पर प्रवर्तनीय होता है परन्तु दुसरे पक्षकार अथवा पक्षकारों की इच्छा पर नहीं, व्यर्थनीय अनुबंध कहलाता है।

iv. **अवैध अनुबंध** – अवैध अनुबंध से आशय उस ठहराव से है जो कि स्वयं तो व्यर्थ होता ही है साथ में उसके समस्त संपार्श्विक व्यवहार भी होते हैं।

v. **अप्रवर्तनीय अनुबंध** – अप्रवर्तनीय अनुबंध से आशय उन अनुबंधों से है जिनमें यद्यपि एक अनुबंध के सभी आवश्यक तत्व होते हैं, किन्तु उसमें कुछ वैधानिक तकनीकी दोषों के कारण उन्हें प्रवर्तनीय नहीं कराया जा सकता है।

निष्पादन के आधार पर अनुबंध के प्रकार

निष्पादन के आधार पर अनुबंध निम्नलिखित दो प्रकार के होते हैं :

i. **निष्पादित अनुबंध** – एक अनुबंध जिसमें दोनों अथवा सभी पक्षकार अपने-अपने दायित्वों को पूरा कर चुके हों और कुछ करना बाकि न हो, उसे निष्पादित अनुबंध कहते हैं।

ii. **निष्पादकीय अनुबंध** – जब अनुबंध के एक अथवा सभी पक्षकार अपने-अपने दायित्वों को पूरा न किये हों और शेष बचा दायित्व भविष्य में पूरा होना हो उसे निष्पादकीय अनुबंध कहते हैं।

दायित्व के आधार पर अनुबंध के प्रकार

दायित्व के आधार पर अनुबंध निम्नलिखित दो प्रकार के होते हैं :

i. **द्विपक्षीय अनुबंध** – ऐसा अनुबंध जिसमें दोनों ही पक्ष अपने-अपने दायित्वों के निर्वहन के लिए प्रतिबद्ध हैं, द्विपक्षीय अनुबंध कहते हैं।

ii. **एक पक्षीय अनुबंध** – ऐसा अनुबंध जिसमें एक पक्षकार ने अपने दायित्वों को पूरा कर दिया है तथा दुसरे पक्षकार द्वारा दायित्वों का निर्वहन शेष है, एक पक्षीय अनुबंध कहलाता है।

प्रस्ताव एवं स्वीकृति

वैध अनुबंध के लिए दो पक्षकारों का होना अनिवार्य होता है तथा उनमें से एक के द्वारा प्रस्ताव दिया जाता है तथा दुसरे के द्वारा उस प्रस्ताव को स्वीकृति दी जाती है। प्रत्येक अनुबंध की उत्पत्ति प्रस्ताव तथा स्वीकृति से होती है, किन्तु प्रस्ताव तथा स्वीकृति तभी प्रभावी होती है जब उसका संवहन हो जाता है।

प्रस्ताव

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 2(a) के अनुसार, "जब एक व्यक्ति किसी दुसरे व्यक्ति से किसी कार्य को करने अथवा उससे विरत रहने के संबंध में अपनी इच्छा इस उद्देश्य से प्रकट करता है कि उस व्यक्ति की सहमति उस कार्य को करने अथवा उससे विरत रहने के संबंध में प्राप्त हो, तो कहेंगे कि पहले व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति के सम्मुख प्रस्ताव रखा।"

एक ठहराव करने के लिए कम से कम दो तत्वों का होना आवश्यक है – एक प्रस्ताव और दूसरा स्वीकृति। अतः प्रस्ताव किसी भी ठहराव कस आधार है। जो व्यक्ति प्रस्ताव रखता है उसे प्रस्ताविक या वचनदाता कहते हैं तथा जिस व्यक्ति को प्रस्ताव दिया जाता है उसे प्रस्तावकी ता वचनगृहीता कहते हैं।

प्रस्ताव की विशेषताएं

i. **कम से कम दो पक्षकारों का होना** – प्रस्ताव के लिए कं से कं डॉ पक्षकारों का होना आवश्यक है। एक पक्षकार प्रस्ताव करेगा तथा दूसरा पक्षकार प्रस्तावक द्वारा किये गए प्रस्ताव को स्वीकार करेगा। कोई भी पक्षकार स्वयं के समक्ष प्रस्ताव नहीं रख सकता।

ii. **प्रस्ताव किसी कार्य के करने या न करने के लिए होना** – प्रस्ताव हमेशा प्रस्तावक के द्वारा दुसरे पक्षकार को किसी कार्य को करने के लिए अथवा न करने के लिए हो सकता है।

iii. **प्रस्ताव, प्रस्तावकी को सूचित किया जाना** – प्रस्ताव तब तक पूरा नहीं माना जाता है जब तक इसकी सूचना प्रस्तावकी को न दे दिया जाय। प्रस्ताव करने के बाद प्रस्तावक के द्वारा लिखित अथवा मौखिक रूप से प्रस्तावकी को सूचित किया जाना चाहिए।

iv. **प्रस्ताव, प्रस्तावक की इच्छा दिखाना चाहिए** – कोई भी प्रस्ताव, प्रस्तावक की इच्छा को दर्शाना चाहिए। अपनी योजना को केवल बताना प्रस्ताव नहीं मन जा सकता है।

v. **प्रस्ताव दुसरे पक्षकार की सहमति के लिए किया जाना** – प्रस्ताव केवल अपनी योजना बताने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। प्रस्ताव हमेशा दुसरे पक्षकार की सहमति प्राप्त करने के उद्देश्य से किया जाना चाहिए।

vi. **मजाक में दिया गया बयान प्रस्ताव नहीं होता** – आपसी बातचीत में मजाक में बोला गया कोई भी बयान प्रस्ताव नहीं माना जा सकता है। प्रस्ताव हमेशा दुसरे पक्षकार की सहमति प्राप्त करने के लिए किया जाना चाहिए।

vii. **इच्छा की अभिव्यक्ति प्रस्ताव नहीं होता** – किसी पक्षकार द्वारा अपने इच्छा की अभिव्यक्ति को प्रस्ताव नहीं माना जा सकता है।

वैध प्रस्ताव संबंधी कानूनी नियम

भारतीय अनिबंध अधिनियम तथा समय समय पर विभिन्न न्यायधीशों द्वारा दिये गये निर्णयों के आधार पर वैध प्रस्ताव के संबंध में निम्नलिखित कानूनी नियम हैं :

i. **प्रस्ताव, प्रस्तावकी को सूचित किया जाना चाहिए** – प्रस्ताव को तभी पूरा माना जाता है जब वश प्रस्तावकी को सूचित कर दिया जाय। जब तक प्रस्ताव भेजी न जाय इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार बिना सूचना के स्वीकृत कोई भी प्रस्ताव कानूनी अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता है।

ii. **प्रस्ताव स्पष्ट, निश्चित तथा पूर्ण होना चाहिए** – प्रस्ताव स्पष्ट, निश्चित तथा पूर्ण होना चाहिए। कोई भी अस्पष्ट, अनिश्चित अथवा अपूर्ण प्रस्ताव वैध नहीं हो सकता है।

iii. **प्रस्ताव कानूनी संबंध में सक्षम होना चाहिए** – प्रस्ताव का अभिप्राय कानूनी संबंध बनाना होना चाहिए। कोई भी प्रस्ताव जिसमें कानूनी उत्तरदायित्व न उत्पन्न हो रहा हो वह वैध नहीं हो सकता है।

iv. **प्रस्ताव स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकता है** – एक प्रस्ताव स्पष्ट रूप से व्यक्त कर अथवा गर्भित हो सकता है। प्रस्ताव स्पष्ट तथा गर्भित दोनों भी हो सकता है। वह प्रस्ताव जो शब्दों द्वारा लिखकर या बोलकर व्यक्त किया जाता है उसे स्पष्ट प्रस्ताव कहते हैं। वह प्रस्ताव जो आचरण द्वारा व्यक्त किया जाता है उसे गर्भित प्रस्ताव कहते हैं।

v. **प्रस्ताव विशिष्ट एवं सामान्य हो सकता है** – किसी विशेष कार्य के लिए अथवा विशेष व्यक्ति के सम्मुख प्रस्तुत किया जाने वाला प्रस्ताव विशेष प्रस्ताव होता है तथा इसके विपरीत सामान्य प्रस्ताव सामान्य जनता अथवा सरे विश्व के लिए संबोधित किया जा सकता है। अतः प्रस्ताव विशिष्ट एवं सामान्य दोनों हो सकता है।

vi. **प्रस्ताव की विशेष शर्तों का संवहन** – प्रस्ताव में उल्लेख किये गए सभी शर्तों का संवहन अनिवार्य होता है। इसके आभाव में विशेष शर्तें लागु नहीं होंगी।

vii. **प्रस्ताव विनय के रूप में होना चाहिए** – कोई भी प्रस्ताव हमेशा ही विनय के रूप में ही होना चाहिए। आज्ञा के रूप में दिया गया प्रस्ताव वैध नहीं माना जाता है।

viii. **प्रस्ताव स्वीकृति प्राप्त करने के उद्देश्य से किया जाना चाहिए** – कोई भी प्रस्ताव दुसरे पक्षकार की सहमति प्राप्त करने के उद्देश्य से किया जाना चाहिए चाहे वह प्रस्ताव किसी कार्य को करने के लिए हो या न करने के लिए। केवल प्रस्ताव करने की इच्छा की घोषणा ही प्रस्ताव के लिए पर्याप्त नहीं होता है।

ix. **प्रस्ताव के लिए निमंत्रण प्रस्ताव नहीं होता** – प्रस्ताव करने के लिए निमंत्रण को प्रस्ताव नहीं माना जा सकता है क्योंकि प्रस्ताव के लिए निमंत्रण करने वाला पक्षकार कोई प्रस्ताव नहीं रखता वरण वह दूसरे पक्षकार को प्रस्ताव करने के लिए निमंत्रण करता है। प्रस्ताव के लिए निमंत्रण देने वाला व्यक्ति प्रस्तावक न होकर वचनगृहीता के रूप में होता है।

प्रस्ताव तथा प्रस्ताव के लिए निमंत्रण में अंतर

क्र.सं.	आधार	प्रस्ताव	प्रस्ताव के लिए निमंत्रण
1.	आशय	यह किसी कार्य के करने या न करने के संबंध में अपनी इच्छा प्रकट किये जाने से है।	यह प्रस्तावक द्वारा ऐसी शर्तें प्रस्तावित किये जाने से है जिन पर कि वह वार्ता कर सकता है।
2.	उद्देश्य	अनुबंध में प्रवेश करना।	प्रस्ताव के लिए निमंत्रित करना।
3.	स्वीकृति का परिणाम	प्रस्ताव की स्वीकृति से ठहराव तयह अनुबध होता है।	प्रस्ताव के लिए निमंत्रण से स्वीकृति से प्रस्ताव होता है।

प्रस्ताव का खंडन

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 5 के अनुसार, "प्रस्ताव का खंडन प्रस्तावक के विरुद्ध स्वीकृति का संवहन पूरा होने से पूर्व किसी भी समय किया जा सकता है, किन्तु बाद में नहीं।"

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 6 के अनुसार, निम्नलिखित रीतियों से प्रस्ताव का खंडन अथवा अंत हो जाता है :

i. **खंडन की सूचना का संचार कर** – एक प्रस्ताव का अंत प्रस्तावक के विरुद्ध स्वीकृति से पूर्व सूचना देकर किया जा सकता है। एक प्रस्तावक अपने प्रस्ताव का खंडन दुसरे पक्षकार की स्वीकृति मिलने से पूर्व कर सकता है। अतः प्रस्ताव के खंडन की सूचन प्रस्तावकी तक उसके स्वीकृति से पूर्व पंहुच जाना चाहिए।

ii. **समय व्यतीत होने पर** – यदि स्वीकृति के लिए समय निर्धारित हो और निर्धारित समयावधि में कोई प्रस्ताव स्वीकार न की गई हो तो निश्चित समय के खत्म होते ही प्रस्ताव का अंत हो जायेगा। यदि स्वीकृति के लिए समय सीमा निर्धारित न हो तो उचित समयावधि में उसे स्वीकार कर लेना चाहिए।

iii. **पूर्व शर्त का संवहन करने में विफलता से** – यदि किसी प्रस्ताव में उसके स्वीकृति के लिए कुछ शर्तें राखी गई हो और स्वीकार करने वाला पक्षकार उन शर्तों को स्वीकार करने में समर्थ न हो या उन शर्तों को स्वीकार किये बिना प्रस्ताव स्वीकार किया हो तो प्रस्ताव खंडित माना जायेगा।

iv. **प्रस्तावक की मृत्यु अथवा पागलपन की स्थिति में** – कोई भी प्रस्ताव अगर स्वीकारक के स्वीकार करने से पूर्व ही प्रस्तावक की मृत्यु हो जाय या उसे पागल घोषित कर दिया जाय तो प्रस्ताव को खंडित माना जाता है तथा इस प्रकार दी गई स्वीकृति अवैध मानी जाती है।

v. **प्रति प्रस्ताव करने पर** – यदि किसी प्रस्ताव के ऊपर प्रतिप्रस्ताव आता है तो प्रस्ताव स्वतः ही अवैध हो जाता है।

vi. **स्वीकर्ता की मृत्यु अथवा पागलपन होने पर** – यदि जिस व्यक्ति के समक्ष प्रस्ताव रखा गया, प्रस्ताव स्वीकार करने से पहले ही उसकी मृत्यु हो जय अथवा वह पागल हो जाय तो प्रस्ताव खंडित माना जायेगा।

vii. **निर्धारित अथवा सामान्य तरीके से प्रस्ताव को स्वीकार न करने पर** – कुछ प्रस्तावों में उसके स्वीकार करने के तरीकों की व्याख्या की जाती है और यदि प्रस्ताव दिये गए तरीके से न स्वीकार किया जय तो उसे खंडित माना जाता है।

viii. **कानून में बदलाव से** – कभी-कभी कानून में बदलाव के कारण प्रस्ताव खंडित हो जाता है क्योंकि उसमें दिये गए शर्तों को पूरा करना संभव नहीं होता। ऐसी स्थिति में प्रस्ताव स्वतः खंडित हो जाता है।

स्वीकृति

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 2(b) के अनुसार, “जब वह व्यक्ति जिसके लिए प्रस्ताव किया गया है उस पर अपनी सहमति प्रकट कर देता है, तो यह कहा जाता है कि प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया है।”

स्वीकृति का मतलब किसी व्यक्ति को दिये गए प्रस्ताव की सहमति है। प्रस्ताव का तब तक कोई अर्थ नहीं होता जब तक उसकी सहमति न मिल जाय। प्रस्ताव की स्वीकृति हो जाने पर वह वचन का रूप धारण कर लेती है। प्रस्ताव की स्वीकृति मिल जाने पर वह एक ठहराव बन जाता है तठे ठहराव यदि

राजनियमों द्वारा प्रवर्तनीय हो तो वह एक अनुबंध कहलाता है। अतः किसी भी अनुबंध के लिए प्रस्ताव की स्वीकृति होना अनिवार्य होता है।

स्वीकृति कौन दे सकता है?

किसी भी प्रस्ताव की स्वीकृति वही दे सकता है जिस व्यक्ति को प्रस्ताव दिया गया है। प्रस्ताव की स्वीकृति उसके प्रकृत्ति पर भी निर्भर करता है। प्रस्ताव की स्वीकृति निम्नलिखित दशाओं में भिन्न हो सकती है :

i. **सामान्य प्रस्ताव की दशा में** – जो प्रस्ताव जन साधारण के समक्ष रखा जाता है वह सामान्य अथवा साधारण प्रस्ताव कहलाता है। सामान्य प्रस्ताव को कोई भी व्यक्ति स्वीकार कर सकता है।
ii. **विशिष्ट प्रस्ताव की दशा में** – विशिष्ट प्रस्ताव एक ऐसा प्रस्ताव है जो किसी व्यक्ति विशेष को दिया जाता है। ऐसे प्रस्ताव को वह व्यक्ति स्वयं ही स्वीकार कर सकता है जिसे प्रस्ताव दिया गया है।

स्वीकृति के लिए कानूनी नियम

i. **स्वीकृति पूर्ण तथा बिना शर्त होनी चाहिए** – स्वीकृति हमेशा किये गए प्रस्ताव के प्रति पूर्ण एवं बिना किसी शर्त के होना चाहिए। स्वीकृति, प्रस्ताव में दिये गए सभी शर्तों को पूर्ण रूप से स्वीकार कर ही होना चाहिए। कोई भी स्वीकर्ता किसी प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए अगर कोई शर्त रखता है तो उसे वैध नहीं माना जायेगा।
ii. **स्वीकृति सूचित किया जाना चाहिए** – प्रस्ताव की तरह स्वीकृति को भी सूचित किया जाना चाहिए। केवल मानसिक स्वीकृति, जो शब्दों अथवा आचरण द्वारा स्पष्ट न हो, कानून से, स्वीकृति नहीं कहलाता है। प्रस्ताव मिलने पर अगर प्रस्ताव प्राप्त करने वाला मौन रह जाता है तो उसे गर्भित स्वीकृति नहीं माना जा सकता है।
iii. **स्वीकृति प्रस्ताव में निश्चित विधि के अनुरूप होना चाहिए** – यदि प्रस्ताव में प्रस्तावक ने उसकी स्वीकृति के लिए कोई विधि निश्चित की हो तो प्रस्ताव की स्वीकृति उसी विधि से होना चाहिए। ऐसा न होने पर स्वीकृत प्रस्ताव को वैध नहीं माना जायेगा।
iv. **निश्चित विधि के आभाव में उचित विधि से स्वीकृति** – यदि प्रस्तावक के द्वारा प्रस्ताव की स्वीकृति के लिए कोई विधि न राखी गई हो तो प्रस्ताव की स्वीकृति किसी भी उचित विधि द्वारा किया जा सकता है। यह उचित विधि परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

v. **निर्धारित समय में स्वीकृति** – प्रस्ताव की स्वीकृति प्रस्तावक द्वारा दिये गए निश्चित समयाविधि में ही होना चाहिए। यदि निश्चित समय में स्वीकृति प्रदान नहीं की जाती है तो प्रस्ताव की समाप्ति हो जाती है। बाद में पुनः प्रस्ताव करने पर ही उसकी स्वीकृति दी जा सकती है।

vi. **निर्धारित समय के आभाव में उचित समय में स्वीकृति** – प्रस्ताव की स्वीकृति के लिए यदि प्रस्तावक द्वारा अगर समय निर्धारित न किया गया हो तो उसकी स्वीकृति उचित समय में होना चाहिए। उचित समय एक सापेक्षिक शब्द है जो समय और परिस्थिति के अनुसार बदलता रहता है। उचित समय व्यतीत हो जाने पर दी गई स्वीकृति का कोई महत्व नहीं रहता है।

vii. **स्वीकृति केवल उसी व्यक्ति द्वारा होनी चाहिए जिससे प्रस्ताव किया गया हो** – स्वीकृति केवल उसी व्यक्ति के द्वारा होना च्चिये जिसे प्रस्तावक ने प्रस्ताव दिया हो अर्थात् अन्य व्यक्ति स्वीकार नहीं कर सकता है।

viii. **स्वीकारक को प्रस्ताव की जानकारी होनी चाहिए** – प्रस्तावक द्वारा किये गए प्रस्ताव की जानकारी स्वीकारक को होनी चाहिए, अन्यथा स्वीकृति का प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसी स्थिति में बिना स्वीकृति के ठहराव नहीं हो सकता और बिना ठहराव के अनुबंध हो ही नहीं सकता।

ix. **स्वीकृति का संवहन** – प्रस्ताव की भांति स्वीकृति का भी संवहन आवश्यक है। बिना संवहन के स्वीकृति वैध नहीं होता। केवल मानसिक स्वीकृति, जो शब्दों अथवा आचरण द्वारा स्पष्ट न हो, कानून से स्वीकृति नहीं कहलाती है। स्वीकारक द्वारा दी गई स्वीकृति का प्रस्तावक को सूचित करना अनिवार्य है।

x. **एक बार अस्वीकृत प्रस्ताव की स्वीकृति पुनः प्रस्ताव किये जाने पर ही संभव** – स्वीकारक द्वारा यदि किसी प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया जय तो वह अवैध हो जाता है। यदि स्वीकारक उस प्रस्ताव को पुनः स्वीकृत करना चाहता है तो यह तभी संभव है यदि प्रस्तावक द्वारा उसे पुनः प्रस्तावित किया जाय।

स्वीकृति का खंडन

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 5 के अनुसार, “स्वीकृति का खंडन, स्वीकर्ता के विरुद्ध स्वीकृति का संवहन होने से पहले किसी भी समय किया जा सकता है, किन्तु बाद में नहीं।”

स्वीकृति का खंडन प्रस्तावक को उसकी जानकारी होने से पूर्व किसी भी समय किया जा सकता है।

1.3 अनुबंध करने की क्षमता

अनुबंध करने की क्षमता

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 11 के अनुसार, "प्रत्येक ऐसा व्यक्ति अनुबंध करने की क्षमता रखता है, जो की संबंधित राजनियम के अनुसार (अ) वयस्क आयु का है, (ब) स्वस्थ मस्तिष्क का है तथा (स) किसी भी राजनियम द्वारा (जिसके अधीन वह है) अनुबंध करने के योग्य घोषित नहीं किया गया है।

अतः अनुबंध करने की क्षमता के तीन मूल आधार में वयस्कता, स्वस्थ मानसिकता तथा विधि द्वारा किसी भी प्रकार की योग्यता का घोषित किया जाना सम्मिलित किया जाता है। अर्थात् भारतीय विधि के अनुसार जो व्यक्ति 18 वर्ष की आयु से कं है, वह व्यक्ति जो मानसिक रूप से अनुबंध के गुण तथा दोषों की विवेचना नहीं कर सकता तथा ऐसा व्यक्ति जो पूर्व में विधि द्वारा दण्डित हो, उस व्यक्ति को अनुबंध करने का कोई अधिकार नहीं है।

अवयस्क द्वारा किया गया अनुबंध

भारतीय वयस्कता अधिनियम, 1875 की धारा 3 के अनुसार, "प्रत्येक व्यक्ति 18 वर्ष की आयु पूरी होने पर वयस्क माना जाता है। इस नियम के डॉ अपवाद हैं: (अ) यदि किसी अवयस्क के संरक्षक न्यायालय द्वारा नियुक्त किये गए हों, अथवा (ब) उसकी संपत्ति कोर्ट ऑफ़ वार्ड्स के निरीक्षण में हो, तो ऐसा व्यक्ति 21 वर्ष की आयु पूरी करने के पश्चात ही वयस्क समझा जायेगा।"

भारत वर्ष में प्रचलित अधिनियमों के आधार पर एक अवयस्क की स्थिति इस प्रकार है :

i. **ठहराव पूर्ण रूप से व्यर्थ** – किसी भी अवयस्क के साथ किया गया ठहराव पूर्ण रूप से व्यर्थ होता है।
ii. **वयस्क होने पर पुष्टि संभव नहीं** – यदि कोई भी अनुबंध किस अवयस्क के साथ किया जय तो वह प्रारंभ से ही व्यर्थ होता है। अतः अवयस्क के वयस्क होने पर उसकी पुष्टि नहीं की जा सकती है।
iii. **अवयस्क से अनुबंध का लाभ वापस नहीं लिया जा सकता है** – यदि किसी अनुबंध में कोई अवयस्क लाभ प्राप्त करता है तो उससे वह लाभ वापस नहीं लिया जा सकता है क्योंकि अवयस्क के साथ किया गया अनुबंध प्रारंभ से ही व्यर्थ होता है अतेव अवयस्क को लाभ वापस करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है।

iv. **अवरोध का सिद्धांत लागू नहीं** – यदि कोई अवयस्क अपनी झूठी आयु बताकर अनुबंध करता है तो बाद में उसे अपने आप को अवयस्क साबित करने से रोका नहीं जा सकता है। किसी भी अवयस्क पर अवरोध का सिद्धांत लागु नहीं किया जा सकता है।

v. **अनिवार्य आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए दायित्व** – यदि कोई व्यक्ति किसी अवयस्क को अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति करता है तो वह उसकी संपत्ति से धन वसूल कर सकता है परन्तु अवयस्क व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं होगा।

vi. **अवयस्क के लाभ के लिए किये गए अनुबंध का वैध होना** – अवयस्क के साथ किया गया प्रत्येक अनुबंध प्रारंभ से ही व्यर्थ होता है परन्तु उसके लाभ के लिए किया गया अनुबंध वैध हो सकता है।

vii. **अवयस्क पूर्ण साझेदार नहीं हो सकता** – अधिनियम की धारा 30 के अनुसार, "एक अवयस्क को साझेदारी के लाभ में भागीदार बनाया जा सकता है, किन्तु वह साझेदारी के ऋण के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है।"

स्वस्थ मस्तिष्क वाला व्यक्ति

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 12 के अनुसार, "ऐसा कोई भी व्यक्ति स्वस्थ मस्तिष्क का कहा जा सकता है जो अनुबंध करने के समय अनुबंध को समझने की क्षमता रखता हो और साथ ही उसमें विवेकपूर्ण निर्णय लेने की क्षमता हो की उक्त अनुबंध का उस पर क्या प्रभाव पड़ेगा।"

अस्वस्थ मन वाले व्यक्ति द्वारा किया गया अनुबंध शून्यप्रभावी होता है। एक व्यक्ति जो प्रायः विकृत मन का रहता है, पर कभी-कभी स्वस्थ मन का होता है, उस समय अनुबंध कर सकता है जब वह स्वस्थ मन का हो। इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति साधारणतः स्वस्थ चित्त का हो किन्तु कभी-कभी विकृत चित्त का हो जाता है, उस समय अनुबंध नहीं कर सकता है जब वह विकृत चित्त का रहता है।

अस्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्ति अनुबंध करने की क्षमता नहीं रखते हैं। निम्नलिखित व्यक्तियों को अस्वस्थ मस्तिष्क का माना जाता है :

i. **पागल व्यक्ति** – ऐसा व्यक्ति जो कभी स्वस्थ मस्तिष्क का होता है तथा कभी अस्वस्थ मस्तिष्क का उसे पागल व्यक्ति कहा जाता है। वह केवल उसी समय अनुबंध कर सकता है जब वह स्वस्थ मस्तिष्क का होता है।

ii. **जन्मजात मूर्ख** – ऐसा व्यक्ति जो जन्म से ही अस्वस्थ मस्तिष्क का होता है तथा उसमें अच्छा-बुरा समझने की क्षमता नहीं होता है। ऐसा व्यक्ति जन्मनत मूर्ख कहलाता है। उसे विवेकपूर्ण निर्णय लेने की क्षमता नहीं होती है। अतः उसके द्वारा किया गया अनुबंध व्यर्थ होता है।

iii. **शराबी अथवा बेसुध व्यक्ति** – ऐसा व्यक्ति जो अत्यधिक शराब पीता है अथवा किसी कारणवश बेसुध है वह अनुबंध से होने वाले परिणामों की विवेचना नहीं कर सकता है। ऐसा व्यक्ति अनुबंध के लिए योग्य माना जाता है तथा उसके द्वारा किया गया अनुबंध व्यर्थ माना जाता है।

iv. **मानसिक कमजोरी** – किसी कारणवश जैसा कि बुढ़ापा अथवा बीमारी की वजह से व्यक्ति मानसिक रूप से इतना कमजोर हो जाता है की वह अनुबंध के शर्तों को समझने में असमर्थ हो जाता है। ऐसे व्यक्ति द्वारा किया गया अनुबंध व्यर्थ होता है।

v. **मोहावस्था** – जब व्यक्ति कृत्रिम निद्रा की अवस्था में होता है तथा वह सही और गलत में अंतर करने में असमर्थ होता है तो उसे मोहावस्था कहा जाता है। इस अवस्था में वह व्यक्ति अनुबंध करने योग्य नहीं होता है।

स्थिति के अनुसार अयोग्यताएँ

वे व्यक्ति जो भारतीय राजनियम जिसके अधीन वे हैं द्वारा अयोग्य घोषित किये गए हैं, अनिबंध नहीं कर सकते हैं।

निम्नलिखित व्यक्तियों को अनुबंध करने के लिए अयोग्य माना गया है :

i. **विदेशी सम्राट, राजदूत अथवा प्रतिनिधि** – विदेशी सम्राट, राजदूत अथवा प्रतिनिधि पर भारतीय राजनियम लागू नहीं होता है तथा उनके खिलाफ भारतीय न्यायालयों में वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है। अतः वे भारतीय अनुबंध अधिनियम के अनुसार अनुबंध करने के लिए अयोग्य घोषित किये गए हैं। यदि वे चाहें तो अपने किसी भारतीय प्रतिनिधि के माध्यम से अनुबंध कर सकते हैं तथा अनुबंध के निष्पादन के लिए वह भारत में रहने वाला प्रतिनिधि व्यक्तिगत तौर पर उत्तरदायी होगा।

ii. **उच्च पेशे वाले व्यक्ति** – उच्च पेशे वाले व्यक्ति जैसे कि डॉक्टर और बैरिस्टर को अनुबंध करने के लिए योग्य माना गया है।

iii. **विदेशी शत्रु** – अगर किसी देश का भारत के साथ युद्ध चल रहा हो या युद्ध की घोषणा कर दी गई हो तो उस देश का नागरिक विदेशी शत्रु कहलाता है। ऐसा व्यक्ति किसी भी भारतीय नागरिक के साथ अनुबंध नहीं कर सकता है।

iv. **कैदी या अपराधी** – ऐसा व्यक्ति जो भारतीय न्यायालय द्वारा अपराधी घोषित किया गया है अथवा वह अपनी सजा की वजह से कैद में है वह अनुबंध करने की क्षमता नहीं रखता है। वह तब तक अनुबंध नहीं कर सकता है जब तक न्यायालय द्वारा उसका दंड चालू है। सजा की समाप्ति के उपरांत अथवा इसके पूर्व क्षमा प्रदायी किये जाने पर वह अनुबंध करने के योग्य हो जाता है।

v. **विवाहित स्त्रियाँ** – विवाहित स्त्रियाँ केवल व्यक्तिगत संपत्ति के लिएय ही अलग से अनुबंध कर सकती हैं। साथ ही यदि विवाहित स्त्री का पति अनिवार्यताओं की व्यवस्था नहीं करता है तो वह अपने जीवन की आवश्यक वस्तुओं के लिए अपने पति की साख गिरवी रख सकती है।

vi. **सम्मेलित संस्थाएँ अथवा निगम अथवा कंपनियाँ** – सम्मेलित संस्थाएँ अथवा निगम अथवा कंपनियाँ कृत्रिम व्यक्ति होने हैं संस्थाएँ अथवा निगम अथवा कंपनियाँ इनका निर्माण अथवा समापन राजनियमों द्वारा होता है। ये निम्नलिखित तरीके से अनुबंध कर सकते हैं :

- एजेंट द्वारा
- पार्षद-सीमानियम के अनुसार

vii. **दिवालिया** – यदि किसी व्यक्ति अथवा संस्था को भारतीय न्यायालय द्वारा दिवालिया घोषित कर दिया गया हो तो वह अनुबंध नहीं कर सकता है ।

viii. **भारत के राष्ट्रपति** – भारतीय संविधान के अनुसार भारत के राष्ट्रपति सर्वोपरि स्थिति में होते हैं तथा उन पर किसी भी न्यायालय में वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है । इस प्रकार भारत के राष्ट्रपति अनुबंध नहीं कर सकते हैं ।

स्वतंत्र सहमति

एक वैध अनुबंध के लिए आवश्यक लक्षण प्रस्ताव एवं स्वीकृति तथा पक्षकारों की अनुबंध करने की क्षमता के बाद तृतीय महत्वपूर्ण लक्षण संबंधित पक्षकारों की स्वतंत्र सहमति है । बिना स्वतंत्र सहमति के कोई भी अनुबंध वैध नहीं हो सकता । अतः वैध अनुबंध के लिए स्वतंत्र सहमति अनिवार्य है । स्वतंत्र सहमति से पहले यह समझना आवश्यक है कि सहमति क्या है ?

सहमति

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 13 के अनुसार, “जब दो या दो से अधिक व्यक्ति एक ही बात पर तथा एक ही अर्थ में सहमत होते हैं, तो उसे सहमति कहते हैं ।” यदि दोनों पक्षकारों के विचार अलग-अलग होंगे तो विचारों की एकरूपता नहीं होगी और सहमति नहीं होगी ।

उदाहरण के लिए, राम के पास दो कारें है : एक सफ़ेद रंग की और एक नीले रंग की । राम, सचिन को सफ़ेद रंग की कार बेचना चाहता है जबकि सचिन को केवल नीले रंग के कर की जानकारी है । सचिन, राम के प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए कार 1,20,000 रूपये में खरीदने को तैयार हो जाता है । राम सफ़ेद कार बेचना चाहता है जबकि सचिन नीला कार खरीदना चाहता है । अतः दोनों का भाव एक न होने से ठहराव वैध नहीं है ।

सहमति के लिए आवश्यक शर्तें

सहमति के लिए निम्नलिखित शर्तों का होना आवश्यक है :

i. कम से कम दो पक्षकारों का होना ।
ii. एक ही बात पर एक ही भाव से सहमत होना ।

स्वतंत्र सहमति

अनुबंध अधिनियम की धारा 14 के अनुसार, सहमति केवल उसी समय स्वतंत्र कही जा सकती है यदि वह निम्नलिखित में से किसी के भी कारण प्रदान न की गई हो :

i. उत्पीड़न
ii. अनुचित प्रभाव
iii. कपट
iv. मिथ्या वर्णन
v. गलती

उत्पीड़न

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 15 के अनुसार, “एक ठहराव उत्पीड़न द्वारा हुआ समझा जाता है यदि एक पक्षकार दुसरे पक्षकार को ठहराव के वास्ते विवश करने के लिए निम्नलिखित में से कोई कार्य करता है :

- कोई ऐसा कार्य करना अथवा करने की धमकी देना जो भारतीय दंड विधान द्वारा वर्जित हो, अथवा
- किसी व्यक्ति को हानि पहुँचाने के लिए उसकी संपत्ति को अवैध रूप से रोकना अथवा रोकने की धमकी देना ।”

उत्पीड़न को सामान्य बोलचाल की भाषा में जबरदस्ती, दबाव, अव्पीदन अथवा बल प्रयोग भी कह सकते हैं ।

उत्पीड़न के आवश्यक तत्व

i. **भारतीय दंड विधान में वर्जित कार्य को करना** – यदि एक पक्षकार अपने कार्य को पूरा करने के लिए दुसरे पक्षकार के साथ कुछ ऐसा करता है जो भारतीय दंड विधान द्वारा वर्जित है, तो उसे

उत्पीड़न कहा जाता है । जैसे – किसी व्यक्ति की हत्या करना, डाका डालना, अपहरण करना, आत्महत्या करना इत्यादि ।

ii. **भारतीय दंड विधान में वर्जित किसी कार्य को करने की धमकी देना** – यदि एक पक्षकार अपने कार्य को पूरा करने के लिए भारतीय दंड विधान द्वारा वर्जित किस कार्य को करता नहीं जय बल्कि उसे करने की धमकी देता है तो उसे उत्पीड़न माना जाता है। ऐसी धमकी का प्रयोग कर किया गया अनुबंध पीड़ित पक्षकार की अच्छा पर व्यर्थनीय होता है।

iii. **अवैध रूप से संपत्ति रोकना** – किसी व्यक्ति को हानि पंहुचाने के उद्देश्य से उसकी संपत्ति को अवैध रूप से रोकना उत्पीड़न कहलाता है।

iv. **अवैध रूप से संपत्ति रोकने की धमकी देना** – यदि कोई पक्षकार दूसरे पक्षकार की संपत्ति को अवैध रूप से रोककर रखने की धमकी देता है तो वह भी उत्पीड़न कहलाता है

v. **उत्पीड़न स्वयं पक्षकार द्वारा अथवा किसी एनी व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है** – उत्पीड़न का प्रयोग एक पक्षकार स्वयं दूसरे पक्षकार पर कर सकता है अथवा किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा वह दूसरे पक्षकार पर उत्पीड़न कर अनुबंध करने के लिए बाध्य कर सकता है।

vi. **उत्पीड़न का प्रयोग स्वयं पक्षकार के विरुद्ध अथवा किसी अन्य व्यक्ति के विरुद्ध किया जा सकता है** – उत्पीड़न का प्रयोग एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार के ऊपर स्वयं किया जा सकता है अथवा किसी अन्य व्यक्ति जो पक्षकार से समबन्धित है के विरुद्ध किया जा सकता है।

vii. **उत्पीड़न का स्थान** – उत्पीड़न का प्रयोग अनुबंध करने के उद्देश्य से किसी भी स्थान पर क्यों न किया जाये, उत्पीड़न ही माना जायेगा। दूसरे शब्दों में, उत्पीड़न का प्रयोग ऐसे स्थान पर भी हो सकता है जहाँ पर भारतीय दंड विधान लागु नहीं होता है।

viii. **कुछ धमकियाँ उत्पीड़न नहीं होती** – सभी धमकियाँ उत्पीड़न नहीं होती है। ऐसी धमकियाँ जो उत्पीड़न नहीं होती है निम्नलिखित हैं :

- किसी व्यक्ति के विरुद्ध वैधानिक कार्यवाही करने की धमकी देना अथवा इस आधार पर संपत्ति को रोकना अथवा रोकने की धमकी देना उत्पीड़न नहीं है।
- यदि किसी कानून के अनुसार किसी व्यक्ति को अनुबंध करने के लिए बाध्य किया जाता है तो वह उत्पीड़न नहीं है।
- कर्मचारियों द्वारा अपनी मांग मनवाने के लिए दी जानेवाली धमकियाँ उत्पीड़न नहीं है।

ix. **उत्पीड़न की विद्यमानता** – उत्पीड़न की विद्यमानता केवल उसी समय मानी जाएगी जबकि दूसरे पक्षकार ने वास्तविक रूप से इससे प्रभावित होकर अपनी सहमति दी हो।

अनुचित प्रभाव

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 16(1) के अनुसार, " कोई भी अनुबंध उस समय अनुचित प्रभाव द्वारा प्रेरित किया हुआ कहा जाता है जबकि पक्षकारों के बीच ऐसे संबंध हों कि उनमें से कोई एक पक्षकार दुसरे पक्षकार की इच्छा के प्रभावित करने की स्थिति में हो, और दुसरे पक्षकार पर अनुचित लाभ पाने के लिए उस स्थिति का वास्तव में प्रयोग किया गया हो।"

उक्त परिणामों से स्पष्ट है कि अनुचित प्रभाव द्वारा :

- अनुचित लाभ प्राप्त किया जा सकता है, और
- अनुचित रूप में ही एक पक्षकार दूसरे पक्षकार की इच्छा शक्ति को प्रभावित कर सकता है।

अनुचित प्रभाव प्रयोग करने की स्थिति

अनुबंध अधिनियम की धारा 16(2) के अनुसार एक व्यक्ति पर निम्नलिखित परिस्थितियों में अनुचित प्रभाव डाला जा सकता है :

i. **दूसरे पक्षकार पर संप्रभुता प्राप्त होना** – ऐसी स्थिति जहाँ एक पक्षकार का दूसरे पक्षकार पर संप्रभुता प्राप्त हो जिससे वह अपना प्रभुत्व कायम कर सके। जैसे पति-पत्नी, नियोक्ता-एजेंट, पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य, ऋणदाता-ऋणी, इत्यादि।
ii. **विश्वासाश्रित संबंधों का होना** – जब पक्षकारों के बीच विश्वासाश्रित संबंध हो। जैसे वकील-मुवक्किल, ऋणी-ऋणदाता, धर्मगुरु-चेला, इत्यादि।
iii. **मानसिक अथवा शारीरिक व्यथा** – जहाँ अनुबंध से संबंधित एक पक्षकार की मानसिक दशा अधिक आयु अथवा बीमारी के कारण अथवा किसी मानसिक या शारीरिक कष्ट के कारण ठीक न हो।

अनुचित प्रभाव का प्रभाव

i. **पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय** – यदि किसी पक्षकार की सहमति अनुचित प्रभाव द्वारा प्राप्त किया गया हो तो अनुबंध पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय होता है।
ii. **निरस्त किया जाना** – यदि कोई अनुबंध अनुचित प्रभाव द्वारा सहमति प्राप्त कर लिया गया हो तो न्यायालय की इच्छा पर ऐसा अनुबंध पूर्ण अथवा शर्तयुक्त रूप में निरस्त किया जा सकता है।

iii. **पीड़ित पक्षकार द्वारा कुछ लाभ प्राप्त करने की दशा में** – यदि कोई अनुबंध अनुचित प्रभाव द्वारा किया गया हो और उस अनुबंध के अधीन पीड़ित पक्षकार ने कोई लाभ प्राप्त कर लिया है तो न्यायालय ऐसे अनुबंध को उन शर्तों पर निरस्त कर सकता है जो उसे उचित प्रतीत हो।

कपट

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 17 के अनुसार, " यदि अनुबंध का कोई पक्षकार स्वयं अथवा उसकी सांठ-गांठ से अथवा उसके एजेंट, दुसरे पक्षकार अथवा उसके एजेंट को धोखा देने के उद्देश्य से अथवा अनुबंध के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से निम्नलिखित कार्यों में से कोई कार्य करता है, तो कहेंगे कि उसने कपट किया है :

i. किसी असत्य बात को जान-बूझकर सत्य बताना,
ii. किसी ऐसी बात को छिपाना जिसका उसे निश्चित ज्ञान या विश्वास है,
iii. पूरा न करने के अभिप्राय से दिया गया कोई वचन,
iv. कोई भी एनी कार्य जोकि धोखा देने के लिए है,
v. कोई भी ऐसा कार्य अथवा भूल जिसको राजनियम विशेष रूप से कपटमय घोषित करता है,
vi. उपर्युक्त के अतिरिक्त कभी-कभी मौन रहना भी कपट माना जाता है।

कपट का प्रभाव

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 19 के अनुसार वह व्यक्ति जिसकी सहमति कपट के द्वारा प्राप्त की गई हो, उसे निम्नलिखित अधिकार प्राप्त है :

i. **अनुबंध का व्यर्थनीय होना** – यदि कपट द्वारा किसी पक्षकार की सहमति प्राप्त की जाती है तो पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर अनुबंध व्यर्थनीय होता है, अर्थात वह अनुबंध को रद्द कर सकता है।
ii. **अनुबंध की पुष्टि की मांग** – कपट द्वारा किसी पक्षकार की सहमति प्राप्त करने की दशा में वह व्हाहे तो अनुबंध के पुष्टिकी मांग कर सकता है, यदि ऐसा करना उसके हित में हो। ऐसी मांग होने पर दुसरे पक्षकार को अनुबंध पूरा करना होगा।
iii. **प्रत्यस्थापन की मांग** – कपट द्वारा किसी पक्षकार की सहमति प्राप्त करने की दशा में वह अनुबंध के अंतर्गत दुसरे पक्षकार को दिये गए धन या संपत्ति को वापस पाने का अधिकारी होगा।
iv. **क्षतिपूर्ति की मांग** – यदि पीड़ित पक्षकार को कपटमाय प्रदर्शन के कारण कोई क्षति हुई हो तो वह दोषी पक्षकार से क्षतिपूर्ति की मांग कर सकता है।

मिथ्या-वर्णन

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 18 के अनुसार मिथ्या-वर्णन में निम्नलिखित बातें सम्मिलित हैं :

i. किसी भी तथ्य का निश्चयात्मक कथन जो कि वास्तव में सत्य नहीं है किन्तु कहने वाला उसके सत्य होने के बारे में विश्वास रखता है।
ii. धोखा न देने के उद्देश्य से किया गया कर्तव्य भंग जिसमें कर्तव्य भंग करनेवाले पक्षकार को लाभ और दूसरे पक्षकार को हानि होती है।
iii. अनुबंध के एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार को ठहराव की विषय-वस्तु के बारे में गलती करने के लिएय प्रेरित किया जाना चाहे वह अज्ञानवश ही क्यों न किया जाये।

मिथ्या-वर्णन का प्रभाव

मिथ्या-वर्णन की दशा में पीड़ित पक्षकार को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होते हैं :

i. **अनुबंध का व्यर्थनीय होना** – पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर अनुबंध व्यर्थनीय होता है अर्थात् वह अनुबंध को रद्द कर सकता है बशर्ते दशाएं ऐसी हों कि साधारण उद्योग से सत्य का पता नहीं चलाया जा सकता है।
ii. **अनुबंध की अभिपुष्टि की मांग** – यदि पीड़ित पक्षकार के हित में हो, तो वह अनुबंध की अभिपुष्टि कर सकता है और इसकी सभी शर्तों को पूरा करने के लिए दुसरे पक्षकार को बाध्य कर सकता है।
iii. **प्रत्यास्थापन** – अनुबंध को रद्द करने की दशा में पीड़ित पक्षकार प्रत्यास्थापन की मांग कर सकता है, अर्थात् वह दिया गया धन व संपत्ति वापस पाने का अधिकारी है, किन्तु वह क्षतिपूर्ति पाने का अधिकारी नहीं होगा।

गलती

यदि किसी बात के संबंध में पक्षकारों को भ्रमात्मक विश्वास है तो कहा जाता है कि वे गलती पर हैं।

गलती निम्नलिखित तीन प्रकार की हो सकती है :

i. तथ्य संबंधी गलती
ii. नियम संबंधी गलती
iii. पक्षकार संबंधी गलती

i. **तथ्य संबंधी गलती** – भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 20 के अनुसार, "जब ठहराव के दोनों पक्षकार ठहराव के किसी आवश्यक तथ्य संबंधी विषय पर गलती में हों तो यह तथ्य संबंधी गलती होगी। जब कोई गलती ठहराव के किसी महत्वपूर्ण तथ्य से संबंधित हो तथा गलती एक पक्षकार की न होकर दोनों पक्षकार की हो तो इसे तथ्य संबंधी गलती कहा जाता है। उदाहरण के लिए, सुमित, अमित को जहाज से आ रहे माल को देने का ठहराव करता है जो अमेरिका से आनेवाला है, किन्तु जहाज माल आने से पहले डूब चूका था जिसकी जानकारी दोनों पक्षकारों को नहीं थी। अतः यह ठहराव दोनों पक्षकारों की गलती होने के कारण व्यर्थ है।

ii. **नियम संबंधी गलती** – भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 21 के अनुसार, "प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा की जाती है की उसे देश के कानूनों का ज्ञान है, अतः कानून की अज्ञानता लक्ष्य नहीं है। " ऐसा कानून जो भारत में लागु नहीं है, की गलती होने पर अनुबंध व्यर्थ होगा। प्रत्येक व्यक्ति से यह उम्मीद की जाती है कि उसे देश के कानून का ज्ञान है। अतः कानून से संबंधित गलती के लिए किसी को भी क्षमा नहीं कियस जा सकता है। उदाहरण के लिए, अमन, चमन का मोबाइल चोरी करता है और पकड़े जाने पर वह कहता है कि उसे मालूम नहीं था कि चोरी करना दंडनीय अपराध है तो इस आधार पर उसे क्षमा नहीं किया जा सकता है।

iii. **पक्षकार संबंधी गलती** – पक्षकार संबंधी गलती के कारण भी अनुबंध व्यर्थ हो जाता है। उदाहरण के लिए, सुनिल, अनिल के साथ अनुबंध करना चाहता है, और गलती से अनुबंध सुरेश के साथ हो जाता है तो इस अनुबंध का कोई अस्तित्व नहीं होगा और अनुबंध व्यर्थ होगा।

उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि यदि कोई सहमति उत्पीड़न, अनुचित प्रभाव, कपट, मिथ्या-वर्णन व गलती के कारण प्रदान की जय तो वह स्वतंत्र सहमति नहीं होगी।

स्वतंत्र सहमति न होने का अनुबंध पर प्रभाव

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धाराओं 19, 19(अ) तथा 20 के अनुसार किसी अनुबंध के पक्षकारों की सहमति स्वतंत्र न होने के निम्नलिखित प्रभाव होते हैं :

i. **अनुबंध का व्यर्थनीय होना** – यदि किसी ठहराव की सहमति उत्पीड़न, कपट अथवा मिथ्या-वर्णन द्वारा प्राप्त किया जाता है तो पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर अनुबंध व्यर्थनीय होता है। किन्तु यदि सहमति मौन द्वारा कपट के रूप में दी गई है जिसकी सच्चाई का पता साधारण प्रयत्नों से लगाया जा सकता था तो अनुबंध व्यर्थनीय न होकर एक मान्य अनुबंध होगा।

ii. **अनुबंध की अभिपुष्टि** – पीड़ित पक्षकार चाहे तो ऐसे अनुबंध को मान्यता देकर इसकी अभिपुष्टि कर सकता है। ऐसी स्थिति में वह दुसरे पक्षकार को अनुबंध की समस्त शर्तों को मानने के लिए बाध्य कर सकता है।

iii. **क्षतिपूर्ति का अधिकार** – कपट की दशा में पीड़ित पक्षकार को क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार प्राप्त होता है। यह अधिकार केवल कपट की दशा में प्राप्त होता है।

iv. **अनुबंध को निरस्त किया जाना** – अनुचित प्रभाव की दशा में अनुबंध को पूरी तरह से रद्द किया जा सकता है, अथवा अनुबंध के अंतर्गत पीड़ित पक्षकार अगर कुछ लाभ प्राप्त कर चुका हो, तो ऐसी दशा में अनुबंध उन शर्तों पर रद्द किया जा सकता है जो न्यायालय की दृष्टि में उचित हो।

v. **अनुबंध का व्यर्थ होना** – अनुबंध के दोनों पक्षकारों द्वारा तथ्य संबंधी गलती की दशा में अनुबंध पूर्णतया व्यर्थ होता है।

वैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य

एक वैध अनुबंध का चतुर्थ आवश्यक लक्षण न्यायोचित प्रतिफल एवं उद्देश्य का होना है। बिना न्यायोचित प्रतिफल एवं उद्देश्य के वैध अनुबंध का निर्माण नहीं होता है।

प्रतिफल का अर्थ एवं परिभाषा

साधारण बोलचाल की भाषा में प्रतिफल से आशय उस मूल्य या प्राप्ति से होता है जो वचनदाता के वचन के बदले वचनगृहीता द्वारा दिया जाता है। दूसरे शब्दों में यह कुछ के बदले कुछ है।

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 2(d) के अनुसार, “जब वचनदाता की इच्छा पर वचनगृहीता अथवा किसी एनी व्यक्ति ने – (अ) कोई कार्य किया अथवा उसके करने से विरत रहा, अथवा (ब) कोई कार्य करता है अथवा उसके करने से विरत रहता है (स) कोई कार्य करने अथवा विरत रहने का वचन देता है, तो ऐसा कार्य या विरति या वचन, उस वचन के लिए प्रतिफल कहलाता है।”

उदाहरण के लिए, करण अपना मोटर साइकिल सोहन को 10,000 रूपये में बेचने के लिए सहमत हो जाता है, यहाँ पर करण का प्रतिफल 10,000 रूपया तथा सोहन का प्रतिफल मोटर साइकिल है।

प्रतिफल संबंधी वैधानिक नियम

i. **प्रतिफल वचनदाता की इच्छा पर हो** – प्रतिफल सदैव वचनदाता की इच्छा पर ही होना चाहिए। यदि कोई कार्य वाचनदाता की बिना इच्छा से अथवा तृतीय पक्षकार की इच्छा से किया जाता है, तो वह वैधानिक प्रतिफल नहीं हो सकता है।

ii. **प्रतिफल वचनगृहीता अथवा किसी अन्य व्यक्ति की ओर से हो सकता है** – प्रतिफल वचनगृहीता अथवा किसी अन्य व्यक्ति की ओर से हो सकता है। इस नियम को रचनात्मक प्रतिफल का सिद्धांत भी कहते हैं।

iii. **प्रतिफल कुछ कार्य या विरति का वचन हो सकता है** – प्रतिफल कि परिभाषा से स्पष्ट है कि प्रतिफल कुछ कार्य या विरति का वचन हो सकता है।

iv. **कुछ प्रतिफल अवश्य होना चाहिए** – प्रतिफल की दी गई परिभाषा के अनुसार कुछ प्रतिफल अवश्य होना चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि प्रतिफल उपयुक्त अथवा पर्याप्त ही हो।

v. **प्रतिफल वास्तविक होना चाहिए** – प्रतिफल वास्तविक होना चाहिए। अतएव यदि प्रतिफल अस्पष्ट, अनिश्चित, छलपूर्ण, असंभव, भ्रामक अथवा कपटपूर्ण होगा तो वह प्रतिफल नहीं माना जायेगा।

vi. **प्रतिफल अवैधानिक नहीं होना चाहिए** – प्रतिफल अवैधानिक नहीं होना चाहिए क्योंकि ऐसा होने पर ठहराव व्यर्थ माना जाता है।

vii. **प्रतिफल भूत, वर्तमान अथवा भावी हो सकता है** – भारतीय अनुबंध अधिनियम में दी गई परिभाषा के अनुसार प्रतिफल भूत, वर्तमान अथवा भावी हो सकता है।

viii. **प्रत्येक अनुबंध के लिए प्रतिफल अलग-अलग होना चाहिए** – यह भी आवश्यक है कि अलग-अलग अनुबंध के लिए प्रतिफल अलग-अलग होना चाहिए।

ix. **प्रतिफल मूल्यवान होना चाहिए** – राजनियम की दृष्टि से प्रतिफल का कुछ मूल्य होना आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं होता है तो वह ठहराव वैध नहीं होगा।

अवैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 23 के अनुसार, प्रत्येक ठहराव में निम्नलिखित दशाओं को छोड़कर प्रतिफल एवं उद्देश्य वैधानिक माना जाता है :

i. **यदि वह राजनियम द्वारा वर्जित हो** – यदि कोई भी कार्य राजनियम द्वारा वर्जित हो तथा अनुबंध का वचन अथवा वचन का प्रतिफल अथवा उद्देश्य राजनियम द्वारा वर्जित हो, तो इस प्रकार से हुआ ठहराव अवैध होगा।

ii. **अन्य अधिनियम के आदेशों को निष्फल करना** – यदि किसी अनुबंध का प्रतिफल अथवा उद्देश्य ऐसा है कि उसकी अनुमति दिये जाने पर वह किसी अन्य राजनियम के आदेशों को निष्फल कर देगा, तो ऐसी स्थिति में प्रतिफल अथवा उद्देश्य अवैधानिक मने जायेंगे और इस प्रकार का अनुबंध व्यर्थ होगा।

iii. **कपटमय कार्य** – यदि किसी अनुबंध का वचन अथवा प्रतिफल कपटमय हो या कपटमय तरीके से प्राप्त की गई हो तो ऐसा ठहराव व्यर्थनीय होगा।

iv. **न्यायालय की दृष्टि में अनैतिक** – ऐसा ठहराव जिससे व्यक्तियों के बीच अनैतिक संबंधों को प्रोत्साहन मिलता है, अनैतिक कहलाता है। जैसे वेश्यागमन। साथ ही कोई भी ऐसा कार्य जो न्यायालय की दृष्टि में अनैतिक है।

v. **दुसरे व्यक्ति के शरीर अथवा संपत्ति को क्षति पहुँचाने वाला कार्य** – किसी भी ऐसे कार्य का ठहराव जिससे दुसरे व्यक्ति के शरीर अथवा संपत्ति की क्षति हो, व्यर्थ होता है।

vi. **न्यायालय की दृष्टि में लोकनीति के विरुद्ध कार्य** – ऐसा ठहराव जो सामान्य हित अथवा देश के विरुद्ध हो, लोकनीति के विरुद्ध कहलाते हैं। लोक नीति के विरुद्ध होने के आधार पर भी ठहराव व्यर्थ हो सकते हैं।

क्या प्रतिफल रहित ठहराव सदैव व्यर्थ है ?

सामान्यतः प्रतिफल रहित ठहराव सदैव व्यर्थ होते हैं। इसका कारण यह है कि प्रतिफल के आभाव में दिये गये सभी ठहराव एवं अनुबंध जुए के समान समझे जाते हैं, अतएव व्यर्थ होते हैं।

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 25 के अनुसार, “प्रतिफल के आभाव में ठहराव व्यर्थ होते हैं।” इस प्रकार एक वैध अनुबंध के लिए प्रतिफल का होना आवश्यक है अन्यथा इसके अभाव में अनुबंध व्यर्थ माना जाता है।

अपवाद

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 25 में कुछ अपवाद का वर्णन किया गया है जिसके अनुसार बिना प्रतिफल के भी अनुबंध वैध होते हैं। ये अपवाद निम्नलिखित हैं :

i. स्वाभाविक प्रेम एवं स्नेह के कारण दिया गया वचन।
ii. भूतकाल में स्वेच्छा से प्रदान की गई सेवाओं की क्षतिपूर्ति के लिए दिया गया वचन।
iii. अवधि वर्जित ऋण को चुकाने के लिए किया गया वचन।
iv. एजेंसी का अनुबंध।

v. निःशुल्क निक्षेप।
vi. दान एवं भेंट।
vii. वचनगृहीता द्वारा शिथिलता या छूट दिया जाना।

1.4 व्यर्थ एवं व्यर्थनीय अनुबंध

वैध अनुबंध होने के किये पाचवां महत्वपूर्ण लक्षण है संबंधित पक्षकारों के मध्य ही ठहराव हो और वह ठहराव अनुबंध अधिनियम द्वारा स्पष्ट रूप में व्यर्थ घोषित न किया गया हो। भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 2(g) के अनुसार, "ठहराव जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नहीं होता, व्यर्थ होता है।" इस तरह के ठहरावों को किसी भी पक्षकार द्वारा कानूनी रूप से प्रवर्तनीय नहीं कराया जा सकता है। इस तरह के ठहरावों में कहीं न कहीं कानूनी रूप से किसी पहलू में कमी होती है। संभवतः यही सबसे बड़ा कारण है कि इसे कानून द्वारा लागु नहीं कराया जा सकता है और यह पूर्णतया व्यर्थ हो जाता है। व्यर्थ ठहराव पक्षकारों के मध्य किसी भी प्रकार के वैधानिक संबंध उत्पन्न नहीं करते हैं। इस तरह के ठहराव शुरुआत से ही पूर्णतया व्यर्थ होते हैं क्योंकि ये किसी भी पक्षकार के संबंध में न तो अधिकार प्रदान करते हैं और न ही दायित्वों का बोध करते हैं।

व्यर्थ ठहराव निम्नलिखित हैं :

i. अयोग्य पक्षकारों द्वारा किया गया ठहराव।
ii. उभय-पक्षीय तथ्य संबंधी गलती से प्रभावित ठहराव।
iii. अवैधानिक प्रतिफल अथवा उद्देश्य पर आधारित ठहराव।
iv. आंशिक रूप से अवैधानिक प्रतिफल अथवा उद्देश्य।
v. बिना प्रतिफल के ठहराव।

व्यर्थ संविदा

व्यर्थ संविदा का कोई कानूनी महत्व नहीं होता। व्यर्थ संविदा का आशय ऐसे संविदा से है जो राजनियम द्वारा स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित कर दिया गया हो। ऐसे बहुत से करार होते हैं जो नैतिक तथा सामाजिक दृष्टिकोण से अव्यावहारिक होते हैं और जो लोकनीति के विरुद्ध होते हैं। ये सब व्यर्थ संविदा की श्रेणी में आते हैं और इनका कोई कानूनी महत्व नहीं होता है।

भारतीय अनुबंध अधिनियम की विभिन्न धाराओं के अधीन निम्नलिखित ठहराव स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित हैं :

i. **विवाह में रुकावट डालने वाले ठहराव** – भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 26 के अनुसार, "प्रत्येक ऐसा ठहराव जो अवयस्क को छोड़कर किसी अन्य व्यक्ति के विवाह में रुकावट डालने के

लिए हो व्यर्थ होता है ।" भारतीय राजनियम के अनुसार विवाह करना एवं विवाहित दशा में रहना प्रत्येक वयस्क नागरिक का मूलभूत अधिकार है।

ii. **व्यापार में रुकावट डालने वाले ठहराव** – भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 27 के अनुसार, "ऐसा ठहराव जिसका उद्देश्य किसी व्यक्ति को वैध धंधा, व्यवसाय, व्यापार अथवा कारोबार करने के अधिकार से वंचित करना हो, वह ठहराव व्यर्थ होगा ।" प्रत्येक व्यक्ति को वैधानिक व्यापार अथवा कारोबार या धंधा करने का अधिकार प्राप्त है और इसमें रुकावट डालने वाला प्रत्येक ठहराव व्यर्थ होता है । ऐसी रुकावट सामान्य हो अथवा आंशिक शर्तयुक्त हो अथवा शर्त-रहित, ठहराव व्यर्थ माना जाता है।

धारा 27 के अपवाद:

व्यापार में रुकावट डालने वाले सभी ठहराव व्यर्थ होते हैं, किन्तु इस धारा के निम्नलिखित अपवाद हैं :

- व्यापार की ख्याति का विक्रय।
- विद्यमान साझेदारों पर प्रतिबंध।
- साझेदारी भंग होने अथवा इसकी आशंका।
- साझेदारी से मिलता-जुलता कार्य।
- सेवा संबंधी ठहराव।
- आपसी प्रतियोगिता को रोकने के लिए व्यापारिक संयोजन।
- व्यापारिक व्यवहारों की स्वतंत्रता पर रोक।

iii. **वैधानिक कार्यवाही में रुकावट डालने वाले ठहराव** – भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 28 के अनुसार, "ऐसा प्रत्येक ठहराव, जिसके द्वारा कोई पक्षकार किसी ठहराव के अधीन उससे संबंधित अपने अधिकारों को साधारण न्यायालय में प्रचलित वैधानिक कार्यवाही द्वारा प्रवर्तित कराने से पूर्णतया रोका जाता है, अथवा जो उस समय को सीमित करे जिसके अन्दर वह अपने अधिकारों को प्रवर्तित करा सकता है, उस सीमा तक व्यर्थ होता है ।"

प्रत्येक ऐसा ठहराव जो न्याय के मार्ग में बाधा उत्पन्न करता है, व्यर्थ होता है क्योंकि उसका उद्देश्य अवैध है।

उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार, ऐसे ठहराव जो साधारण न्यायालय में किसी व्यक्ति को अपने अधिकार को प्रवर्तित करने से रोकते हैं अथवा जो भारतीय लिमिटेशन अधिनियम द्वारा प्रदान की गई अवधि को कं करते हैं, व्यर्थ होते हैं।

iv. **ऐसे ठहराव जिनका अर्थ निश्चित न हों** – भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 29 के अनुसार, “ऐसे ठहराव जिनका अर्थ निश्चित न हो अथवा निश्चित न किया जा सकता हो, व्यर्थ होते हैं।”

यदि पक्षकार स्वयं न तो ठहराव के अर्थ को समझते हैं और न इनका अर्थ निश्चित किया जा सकता है, तो यह स्वाभाविक प्रतीत होता है कि ऐसे ठहराव को कार्यान्वित नहीं कराया जा सकता है।

v. **बाजी लगाने के रूप में किये गए ठहराव** – भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 30 के अनुसार, “बजी लगाने के रूप में किये गए ठहराव व्यर्थ होते हैं।”

किसी अनिश्चित घटना के तय होने पर रूपया अथवा एनी वस्तु देने का वचन, बाजी लगाना होता है। बाजी लगाने के ठहराव पर जीता गया धन या ऐसे ठहराव के अथवा किसी अनिश्चित घटना के परिणाम को मानने की गारंटी स्वरुप किसी अन्य व्यक्ति को सौपे गए धन को वापस पाने हेतु कोई वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।

बजी लगाने के ठहराव के लक्षण

- इसमें कुछ निश्चित धन या धन के बदले वस्तु देने का वचन होता है।
- वचन किसी अनिश्चित घटना के निर्णय पर आधारित होना चाहिए।
- दोनों पक्षकारों के हर अथवा जीत के बराबर अवसर होते हैं।
- बाजी लगाने के रूप में किया गया ठहराव व्यर्थ होता है।
- घटना के घटित होने के पूर्व दोनों पक्षकारों का उस घटना की संभावना पर निर्भर रहना आवश्यक होता है।
- बाजी के ठहराव में बाजी के हरने या जीतने के अतिरिक्त कोई और प्रतिफल नहीं होना चाहिए।

vi. **असंभव कार्य करने का ठहराव** – भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 56 के अनुसार, “किसी ऐसे कार्य को करने का ठहराव जो स्वयं असंभव हो, व्यर्थ होता है।” उदाहरण के लिए, श्याम, मोहन से कहता है कि अगर तुम तारे तोड़कर ला डोज तो मैं 1,00,000 रूपये दूंगा। यह ठहराव व्यर्थ है।

व्यर्थनीय/शून्यकरणीय संविदा

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 2(I) के अनुसार, “कोई ठहराव एक पक्षकार की अच्छा पर प्रवर्तनीय हो परन्तु दुसरे पक्षकार की इच्छा पर प्रवर्तनीय न हो तो उसे व्यर्थनीय अनुबंध की श्रेणी में रखा जाता है।” इस प्रकार के ठहरावों में किसी न किसी वैधानिक पहलू की कमी होती है जिसके कारण यह

ठहराव व्यर्थनीय ठहराव कहलाता है, अर्थात् जब कोई संविदा दोनों पक्षकारों में से किसी एक पक्षकार की इच्छा पर लागु हो सके किन्तु दुसरे पक्षकार की इच्छा पर लागु नहीं हो सकती है तो संविदा शून्यकरणीय संविदा कहलाती है।

व्यर्थनीय अनुबंध की विशेषताएँ

व्यर्थनीय अनुबंध की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :

- जब बल प्रदर्शन, अनुचित प्रभाव, मिथ्या वर्णन या कपट द्वारा प्रभावित कर कोई अनुबंध की जाती है तो वह व्यर्थनीय अनुबंध होता है।
- व्यर्थनीय अनुबंध का एक पक्ष मानी अनुबंध का स्वरुप प्रदान कर सकता है।
- इसका स्वरुप लचीला होता है।
- यह आरम्भ से मानी रहता है तथा तब तक मानी रहता है जब तक कि अधिकार प्राप्त पक्ष इसे शून्य घोषित न कर डे।

अर्द्ध-अनुबंध

अर्द्ध-अनुबंध शब्द भारतीय अनुबंध अधिनियम में कहीं प्रयुक्त नहीं किया गया है। अतएव अधिनियम में इसकी परिभाषा का कोई उल्लेख नहीं मिलता है लेकिन प्रचलित तथा सामान्य शब्दों में अर्द्ध-अनुबंधों से तात्पर्य ऐसे अनुबंधों से है जो साधारण अनुबंधों की तरह नहीं होते किन्तु कानून की दृष्टि में अनुबंधों की श्रेणी में रखे जाते हैं तथा इनके समस्त प्रभाव अनुबंधों की तरह ही होते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अर्द्ध-अनुबंध एक प्रकार का व्यवहार होता है जो कि पक्षकारों के मध्य होता है किन्तु किसी भी तरह का अनुबंध निर्माण नहीं करता, किन्तु राजनियम की दृष्टि में उसकी प्रकृति अनुबंध की तरह ही होती है।

अतः अर्द्ध-अनुबंध की एक संक्षिप्त एवं उपयुक्त परिभाषा निम्न शब्दों में दी जा सकती है – “अर्द्ध-अनुबंध एक ऐसा व्यवहार है जिसमें यद्यपि पक्षकारों के बीच का अनुबंध नहीं होता है किन्तु सन्नियम के अनुसार उसमें सामान्य रूप से कुछ अधिकार और दायित्व उत्पन्न होते हैं।” उदाहरण के लिए, सुरेश, महेश के द्वारा रमेश के यहाँ पुस्तकें भेजता है। महेश गलती से उन पुस्तकों को पुनीत के यहाँ पहुंचा देता है। पुनीत उन्हें अपने पास रख लेता है। यहाँ पर यद्यपि सुरेश और पुनीत के बीच किसी भी प्रकार का ठहराव नहीं हुआ है, किन्तु फिर भी वह (पुनीत) उनका मूल्य चुकाने के लिए बाध्य किया जा सकता है।

अर्द्ध-अनुबंध की विशेषताएँ

अर्द्ध-अनुबंध की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :

- अर्द्ध-अनुबंध कोई वास्तविक अनुबंध नहीं है अपितु यह कानून द्वारा किसी व्यक्ति पर थोपा गया दायित्व है।
- ऐसे अनुबंध में प्रायः एक पक्षकार किसी दुसरे पक्षकार को कुछ धन चुकाने के लिए बाध्य होता है।
- इसका सृजन प्रस्ताव एवं स्वीकृति से नहीं बल्कि कानून द्वारा किया जाता है।
- इसमें वैध अनुबंध के सभी लक्षण विद्यमान नहीं होते हैं।
- ऐसे अनुबंध में एक पक्षकार को दुसरे पक्षकार से धन प्राप्त करने का अधिकार होता है, निस्तीर्ण क्षतिपूर्ति का अधिकार नहीं।
- ऐसे अनुबंध एक पक्षकार को किसी विशिष्ट पक्षकार के विरुद्ध ही कुछ अधिकार प्रदान करते हैं। अतएव ऐसे अनुबंध व्यक्तिगत होते हैं, सार्वजानिक नहीं।
- यह समता से सिद्धांत के लागू होने से उत्पन्न होता है। यह सिद्धांत यह कहता है कि किसी भी व्यक्ति को दूसरे की कीमत पर अनुचित लाभ उठाने नहीं दिया जाना चाहिए।
- यह किसी व्यक्ति के कर्तव्य के कारण उत्पन्न नहीं होता है, न कि किसी के वचन देने के कारण।

गर्भित अथवा अर्द्ध-अनुबंधों के प्रकार

अर्द्ध अनुबंधों के प्रकार निम्नलिखित है :

i. अनुबंध करने में असमर्थ व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मांग – यदि अनुबंध करने में असमर्थ किसी व्यक्ति को अथवा किसी ऐसे व्यक्ति को जिसका पालन करने के लिए वह वैध रूप से बाध्य है कोई दूसरा व्यक्ति उसकी स्थिति के अनुकूल जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है तो पूर्ति करने वाला पक्ष ऐसे असमर्थ व्यक्ति की संपत्ति में से परिशोध प्राप्त करने का अधिकारी है।

ii. अपने हित के लिए अन्य व्यक्ति की ओर से भुगतान कर देने के लिए परिशोध – यदि कोई व्यक्ति अपने हित के लिए कोई ऐसा भुगतान चुकता है जिसके लिए राजनियम के अनुसार कोई दूसरा व्यक्तिमूल ऋणी से परिशोध पाने का अधिकारी है।

iii. निःशुल्क न होने वाले कार्य का लाभ उठाने वाले व्यक्ति का दायित्व – जब कोई व्यक्ति निःशुल्क ही कार्य करने का अभिप्राय न रखते हुए किसी अन्य व्यक्ति के लिए वैधानिक रूप से कोई कार्य करता

है अथवा उसे कोई वस्तु देता है और अन्य व्यक्ति उससे लाभ उठता है, तो दूसरा व्यक्ति प्रथम व्यक्ति के प्रति क्षतिपूर्ति करने के लिए अथवा वस्तु लौटने के लिए बाध्य है।

iv. माल पाने का उत्तरदायित्व – जब एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति का पड़ा हुआ माल मिलता है और वह उसे अपने संरक्षण में ले लेता है तो उसका उत्तरदायित्व निक्षेपगृहीता के समान हो जाता है।

v. गलती तथा उत्पीड़न के अंतर्गत धन अथवा वस्तु पाने वाले का दायित्व – जिस व्यक्ति को गलती अथवा उत्पीड़न के अंतर्गत धन अथवा वस्तु दे दी गई है, उसे धन या वस्तु लौटना पड़ेगा।

सांयोगिक अनुबंध

प्रकृति की दृष्टि से अनुबंध शर्तरहित तथा शर्तसहित हो सकते हैं। जब एक अनुबंध शर्तरहित होता है तो उसका निष्पादन करना आवश्यक होता है। परन्तु यदि एक अनुबंध शर्तसहित हो तो उस अनुबंध का निष्पादन उस शर्त के पूरा करने पर ही किया जा सकता है। ऐसे अनुबंध को सांयोगिक अनुबंध कहते हैं। सांयोगिक अनुबंध का निष्पादन पूर्णतया किसी भावी स्थिति के आने अथवा न आने की शर्त पर निर्भर करता है। अतः यह किसी भविष्य की स्थिति के आने पर किसी कार्य के करने अथवा न करने के लिए या कसीस स्थिति के न आने पर किसी कार्य को करने के लिए हो सकता है। इस प्रकार यह कह सकते हैं कि सांयोगिक अनुबंध का पालन होना या न होना किसी घटना/स्थिति के घटने अथवा न होने की शर्त पर पूर्णतः आधारित है।

भारतीय अनुबंध की धारा 31 के अनुसार, “सांयोगिक अनुबंध किसी ऐसी घटना के गह्तित होने अथवा न होने पर, जोकि अनुबंध के संपार्श्विक हो, किसी कार्य के करने अथवा न करने का अनुबंध है।” उदाहरण के लिए, एक भवन निर्माण करने वाले ठेकेदार के बिल का भुगतान स्थानीय संस्था उसी समय करेगी जबकि वह प्रमाणित इंजीनियर का प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करे कि सारा कार्य निर्धारित योजना के अनुरूप सही ढंग से हुआ है।

सांयोगिक अनुबंध की विशेषताएँ

i. **किसी कार्य को करने या न करने का अनुबंध** – सांयोगिक अनुबंध किसी कार्य को करने या न करने का अनुबंध होता है। उदाहरण के लिए, राम, श्याम को वचन देता है कि यदि वह सुरक्षित दिल्ली पहुँच गया तो वह 100 जीन्स 800 रुपया प्रति जीन्स की दर से दे देगा।

ii. **अनिश्चित घटना पर निर्भर होना** – सांयोगिक अनुबंध का निष्पादन किसी अनिश्चित घटना के घटित होने अथवा न होने पर निर्भर करता है। इस प्रकार से एक सांयोगिक अनुबंध पूर्ण अनुबंध से बिल्कुल भिन्न होता है।

iii. **संयोगिकता अनुबंध के संपार्श्विक होना चाहिए न कि स्वयं अनुबंध का कोई भाग** – सांयोगिक अनुबंध में घटना का घटित होना अनिश्चित एवं अनुबंध का संपार्श्विक होना चाहिए। ऐसी घटना पक्षकारों द्वारा दिये गए वचनों का भाग नहीं होता। संपार्श्विक घटना न तो वह निष्पादन है जिसके लिए अनिबंध के एक भाग के रूप में वचन दिया गया है और न किसी प्रतिज्ञा के लिए पूर्व प्रतिफल ही।

iv. अनुबंध से संबंधित संयोगिकता किसी एक अथवा दोनों पक्षकार के वश में हो सकती है अथवा उन दोनों की शक्ति से बहार हो सकती है। वह संयोगिकता किसी तीसरे व्यक्ति पर निर्भर हो सकती है।

v. घटना वचनदाता की केवल इच्छा पर निर्भर नहीं होना चाहिए।

सांयोगिक अनुबंधों के प्रवर्तनीयता संबंधी नियम

सांयोगिक अनुबंधों के प्रवर्तनीयता संबंधी नियम निम्नलिखित हैं :

i. **किसी भावी अनिशिचित घटना के घटने पर प्रवर्तनीय अनुबंध** – भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 32 के अनुसार, "किसी भावी अनिश्चित घटना के घटित होने पर किसी कार्य को करने अथवा न करने का सांयोगिक अनुबंध, राजनियम द्वारा उस समय तक प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता, जब तक कि घटना घटित नहीं हो जाती। यदि घटना का घटित होना असंभव हो जय तो अनुबंध व्यर्थ होगा।

ii. **किसी भावी अनिश्चित घटना के घटित होने पर प्रवर्तनीय अनुबंध** – भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 33 के अनुसार, "किसी भावी अनिश्चित घटना के घटित न होने पर किसी कार्य को करने अथवा न करने का सांयोगिक अनुबंध उस समय प्रवर्तित कराया जा सकता है, जबकि घटना का घटित हों असंभव हो जय और पहले नहीं।"

iii. **घटित होने वाली असंभव घटना के घटित होने वाली असंभव घटना के असंभव हो जाने पर प्रवर्तनीय अनुबंध** – भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 34 के अनुसार, "यदि भावी घटना जिसपर कोई अनुबंध सांयोगिक हो किसी व्यक्ति के अनिर्दिष्ट समय में कार्य करने की रीति है, तो वह घटना उस समय असंभव हुई मानी जाएगी जबकि वह व्यक्ति कोई कार्य करे, जिससे उस निश्चित समय के अन्दर उसका कार्य करना असंभव हो जय।"

iv. **निर्दिष्ट अनिश्चित घटना के समय में घटने पर प्रवर्तनीय अनुबंध** – भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 35 के अनुसार, "सांयोगिक अनुबंध जो कि किसी निर्दिष्ट अनिश्चित घटना के निश्चित समय में घटित न होने पर निर्भर होते हैं, राजनियम द्वारा उस समय प्रवर्तित कराये जा सकते हैं जबकि निश्चित समय समाप्त हो जाता है और घटना घटित नहीं होती या निश्चित समय के समाप्त होने से पूर्व ही तय हो जाता है कि घटना घटित नहीं होगी।"

v. **असंभव घटनाओं पर आधारित सांयोगिक ठहरावों का व्यर्थ होना** – भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 36 के अनुसार, "किसी असंभव घटना के घटित होने पर किसी कार्य को करने अथवा न करने का सांयोगिक ठहराव व्यर्थ होता है चाहे ठहराव करते समय पक्षकारों को घटना की असंभवता का पता हो अथवा नहीं।

1.5 अनुबंधों का निष्पादन

अनुबंधों का निष्पादन

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से अनुबंधों को निष्पादन के अंतर्गत दी गई विषय सामग्री को निम्न खण्डों के अंतर्गत विभक्त किया जा सकता है :

1. **अनुबंधों के निष्पादन के संबंध में पक्षकारों का दायित्व** – भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 37 के अनुसार, "अनुबंध से संबंधित पक्षकारों को अपने-अपने वचनों का निष्पादन करना चाहिए अथवा निष्पादन करने के लिए प्रस्ताव करना चाहिए, जब तक कि इस प्रकार के निष्पादन से राजनियम की व्यवस्थाओं के अंतर्गत अथवा एनी किसी राजनियम के प्रभाव से छुटकारा न मिल गया हो।"

निष्पादन का प्रस्ताव

जब वाचंदाता ने वचन गृहीता के समक्ष निष्पादन का प्रस्ताव किया हो और वह प्रस्ताव स्वीकार न किया गया हो तो वाचनदाता निष्पादन न होने के लिए उत्तरदायी नहीं होता और न वह इससे अनुबंध के अंतर्गत अपने अधिकारों को ही खो देता है।

निष्पादन के प्रस्ताव की शर्तें

निष्पादन के प्रस्ताव में निम्नलिखित शर्तों का होना आवश्यक है :

i. **वह शर्तरहित होना चाहिए** – निष्पादन का प्रस्ताव शर्तरहित होना चाहिए। उदाहरण के लिए, चेक द्वारा भुगतान करने का प्रस्ताव वैध प्रस्ताव नहीं होता क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को उसे स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

ii. **प्रस्ताव उचित समय एवं नियत स्थान पर होना चाहिए** – प्रस्ताव उचित समय एवं नियत स्थान पर तथा ऐसी परिस्थितियों में प्रस्तुत किया जाना चाहिए कि उस व्यक्ति को जिसके प्रति वह किया गया है, उचित समय मिल जय।

iii. **वचनगृहीता को वस्तु की जाँच करने का उचित अवसर मिलना चाहिए** – यदि प्रस्ताव किसी वचनगृहीता को किसी वस्तु की सुपुर्दगी देने के संबंध में है, तो वचनगृहीता को इस बात का उचित अवसर दिया जाना चाहिए कि वह यह देख सके कि जो वस्तु प्रस्तावित की जा रही है वह सही वही है।

iv. **प्रस्ताव की योग्यता** – प्रस्ताव उसी व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिए जो अपने वचन को पूरा करने के योग्य, इच्छुक एवं तत्पर हो।

v. **संयुक्त वचनगृहीता की दशा में** – संयुक्त वचनगृहीताओं में से किसी एक को किये गए प्रस्ताव का ही वैधानिक प्रस्ताव होता है, जैसे कि किसी एक को किये गए प्रस्ताव का हो।

vi. **उचित व्यक्ति को प्रस्ताव** – अनुबंध के निष्पादन का प्रस्ताव उचित व्यक्ति को किया जाना चाहिए। वचनगृहीता अथवा उसका वैधानिक प्रतिनिधि ही उचित माना जाता है।

vii. **प्रस्ताव अनुबंध में वर्णित वस्तु की किस्म एवं मात्र के अनुकूल हो** – अनुबंध के निष्पादन का प्रस्ताव अनुबंध में वर्णित वस्तु की किस्म एवं मात्र के अनुसार ही होना चाहिए। उससे भिन्नता होने पर उसे वैध प्रस्ताव नहीं माना जा सकता है।

viii. **प्रस्ताव सम्पूर्ण भाग के लिए हो न कि एक हिस्से के लिए** – यह आवश्यक है कि निष्पादन प्रस्ताव, सम्पूर्ण अनुबंध के निष्पादन का प्रस्ताव होना चाहिए। किसी अनुबंध के आंशिक निष्पादन के प्रस्ताव को वैध निष्पादन प्रस्ताव नहीं माना जा सकता है।

ix. **मुद्रा के भुगतान का प्रस्ताव** – यदि निष्पादन के प्रस्ताव द्वारा मुद्रा का भुगतान करना है तो भुगतान का प्रस्ताव ऋणी अथवा उसके एजेंट द्वारा ऋणदाता अथवा उसके एजेंट के सम्मुख किया जाना चाहिए। साथ ही प्रस्ताव वैधानिक मुद्रा के द्वारा सम्पूर्ण भुगतान के लिए होना चाहिए।

2. अनुबंधों का निष्पादन कौन करे ?

i. **स्वयं वचनदाता अथवा उसके प्रतिनिधि द्वारा निष्पादन** – भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 40 के अनुसार, "यदि पक्षकारों का अभिप्राय यह है कि वचन का निष्पादन स्वयं वचनदाता द्वारा हो, तो ऐसी दशा में वचनदाता को ही वचन का निष्पादन करना चाहिए। अन्य दशाओं में वचनदाता अथवा उसका प्रतिनिधि किसी उपयुक्त व्यक्ति को उसके निष्पादन के लिए नियुक्त कर सकते हैं।"

ii. **वैधानिक प्रतिनिधि द्वारा निष्पादन** – भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 40 के अनुसार, "व्यक्तिगत कुशलता अथवा निपुणता वाले अनुबंधों को छोड़कर वचनदाता की मृत्यु होने पर उसके वैधानिक प्रतिनिधि द्वारा अनुबंधों का निष्पादन किया जाना चाहिए।"

iii. **तृतीय पक्षकार द्वारा निष्पादन** – भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 41 के अनुसार, "जब वचनगृहीता किसी तृतीय पक्षकार को वचन के निष्पादन के लिए स्वीकार कर लेता है तो वह बाद में वचनदाता को वचन पूरा करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता है।"

iv. **संयुक्त वचनदाताओं द्वारा निष्पादन** – जब दो या दो से अधिक व्यक्ति मिलकर वचन देते हैं, तो वे संयुक्त वचनदाता कहलाते हैं। इस प्रकार से दिये गए वचन के निष्पादन के संबंध में उसका दायित्व निम्न प्रकार होगा :

- वचनदाताओं द्वारा संयुक्त रूप में निष्पादन।
- संयुक्त तथा व्यक्तिगत दायित्व।
- प्रत्येक वचनदाता अंशदान की मांग करने का अधिकार।
- अंशदान में त्रुटि की दशा में हानि का बंटबारा।

3. वचन के निष्पादन का समय और स्थान

वचन के निष्पादन का समय और स्थान क्या हो यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 46 से 50 तक में वचन के निष्पादन के समय और स्थान का वर्णन है। इस संबंध में सामान्य नियम यह है कि यदि अनुबंध के निष्पादन के समय और स्थान का उल्लेख ही, तो पक्षकारों को उसी स्थान और समय पर अनुबंध का निष्पादन करना चाहिए।

यदि अनुबंध में वचन के निष्पादन के समय और स्थान का उल्लेख न हो तो अनुबंध के निष्पादन के लिए निम्नलिखित नियम लागु होंगे :

i. **भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 46 के अनुसार**, "जहाँ वाचंदाता अपने वचन का निष्पादन बिना वचनगृहीता के आवेदन पर ही करने का वचन देता है और निष्पादन हेतु अनुबंध में कोई निश्चित समय नहीं दिया गया है, तो वचनदाता को उचित समय में निष्पादन करना चाहिए।"

ii. **भारतीय अनिबंध अधिनियम की धारा 47 के अनुसार**, "जब वचनदाता को अपने वचन का निष्पादन, बिना वचनगृहीता के आवेदन पर, किसी नियत दिन करना हो, तो वचनदाता को नियत दिन व स्थान पर कारोबार के काम के घंटों में अपने वचन का निष्पादन करना चाहिए।"

iii. **भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 48 के अनुसार**, "जस्ब वचन का निष्पादन नियत दिन किया जाना हो और वचनदाता से वचनगृहीता के आवेदन के बिना उसके निष्पादन का भर न लिया हो तो वचनगृहीता को उचित तथा कारोबार के घंटों में निष्पादन की मांग करनी चाहिए।"

iv. **भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 49 के अनुसार**, "जब वचन का निष्पादन बिना वचनगृहीता के किया जाना हो और उसके लिये कोई स्थान नियत

न किया गया हो, तो वचनदाता का कर्तव्य है कि वह उचित स्थान के लिए वचनगृहीता से आवेदन करे तथा वहां पर निष्पादन करे।"

v. **भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 50 के अनुसार**, "वचन का निष्पादन किसी भी ऐसी रीति अथवा समय पर किया जा सकता है जिसका कि वचनगृहीता आदेश अथवा अनुमोदन करे।"

4. पारस्परिक वचनों का निष्पादन

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 2(F) के अनुसार, "वचन जो एक-दुसरे के लिए प्रतिफल अथवा आंशिक प्रतिफल होते हैं, पारस्परिक वचन कहलाते हैं।"

पारस्परिक वचनों के निष्पादन संबंधी नियम निम्नलिखित है :

i. **भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 51 के अनुसार**, "जब अनुबंध में ऐसे पारस्परिक वचन होते हैं जिन्हें एक साथ पूरा किया जाता है, तो जब तक वचनगृहीता अपने वचन के निष्पादन के लिए इच्छुक तथा तत्पर नहीं हो जाता तब तक वचनदाता के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह वचन का निष्पादन करे।"

ii. **भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 52 के अनुसार**, "जहाँ पर वचनों के निष्पादन के लिए क्रम स्पष्टतया निश्चित हो तो वचनों का निष्पादन उसी क्रमानुसार होगा और यदि क्रम स्पष्टतया निश्चित न हो, तो निष्पादन व्यवहार की प्रकृति के अनुसार होगा।"

iii. **भारतीय अनुबंश अधिनियम की धारा 53 के अनुसार**, "जब अनुबंध पारस्परिक वचनों का है और एक पक्षकार दुसरे पक्षकार को वचन देने व निष्पादन करने से रोकता है, तो उस रोके हुए पक्षकार की इच्छा पर अनुबंध व्यर्थनीय है और यदि निष्पादन न करने से उसे किसी भी प्रकार की हानि हुई है, तो वह उसकी क्षतिपूर्ति कराने का भी अधिकारी है।"

iv. **भारतीय अनुबंध अधिनियम के धारा 54 के अनुसार**, "जब अनुबंध किसी ऐसे व्यापारिक वचनों का है जिसके अंतर्गत, जब तक एक वचन का निष्पादन नहीं हो जाता, तब तक दुसरे का निष्पादन नहीं हो सकता तो पहले वचन के निष्पादित न होने की दशा में, वचनदाता दुसरे वचन के निष्पादन की मांग नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त, यदि निष्पादन न करने से दुसरे पक्षकार को हानि हुई हो, तो उसे क्षतिपूर्ति करनी होगी।"

v. **पारस्परिक वचन जिसमें समय अनुबंध का सार है** – भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा ५५ के अनुसार, इस संबंध में निम्न तीन नियम हैं :

- जब अनुबंध का कोई पक्षकार निश्चित समय अथवा उससे पहले किसी कार्य को करने का वचन देता है।
- यदि पक्षकारों का अभिप्राय समय को सार मन्ना नहीं तह।
- यदि समय अनुबंध का सार साई किनती वचनगृहीता निश्चित समय के अतिरिक्त भी किसी समय निष्पादन करना स्वीकार कर लेता है।

vi. **भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 57 के अनुसार**, "जब पक्षकार पहले तो कुछ वैध कार्य करने के लिए तथा बाद में निश्चित परिस्थितियों में कुछ अवैध कार्य करने के लिए पारस्परिक वचन देते हैं, तो पहले वचनों का भाग अनुबंध होता है, परन्तु दुसरे वचनों का भाग व्यर्थ ठहराव है।"

vii. **भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा ५८ के अनुसार**, "वैकल्पिक वचन जिसका एक विकल्प वैध है तथा दूसरा अवैध है, केवल वैध विकल्प को ही प्रवर्तित कराया जा सकता है।"

5. निष्पादन की असंभवता

असंभव कार्य को करने का ठहराव स्वतः व्यर्थ होता है।

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 56 के अनुसार, "ऐसे कार्य करने का अनुबंध जो अनुबंध करने के पश्चात असंभव हो गया हो अथवा किसी घटना के घटित होने पर अवैधानिक हो गया हो, उस समय व्यर्थ हो जाता है, जबकि कार्य असंभव अथवा अवैधानिक हो गया हो।"

उदाहरण के लिए, सचिन तथा सोहन दोनों आपस में विवाह करने का अनुबंध करते हैं, किन्तु विवाह के समय से पहले ही सचिन पागल हो जाता है। यह अनुबंध व्यर्थ अहि।

6. भुगतानों का विनियोग

कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी एक पक्षकार पर दुसरे पक्षकार के कई प्रकार के ऋण शेष हों और वह भुगतान करता है जो सभी ऋणों से निवृत्ति के लिए अपर्याप्त है, तब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि वह भुगतान किस ऋण से निवृत्ति के लिए लागु होगा।

भुगतानों के विनियोजन से संबंधित विवरण भारतीय अनुबंध अधिनियम की धाराओं 59-61 में है, जो इस प्रकार है –

i. **विनियोग के लिए स्पष्ट तथा गर्भित निर्देश की दशा में** – यदि विनियोग के लिए स्पष्ट तथा गर्भित दिशा निर्देश हो तथा ऋणी ऐसी परिस्थितियों में भुगतान करता है जिसमें यह अनुमान

लगाया जा सकता है कि वह किसी विशेष ऋण के लिए है तो भुगतान स्वीकार किये जाने पर उसका उसी के अनुसार विनियोजन होना चाहिए।

ii. **निर्देश न दिये जाने पर भुगतान का विनियोजन** – यदि ऋणी ने न तो कोई निर्देश दिया हो और न ऐसी परिस्थितियाँ ही हो जिनमें यह अनुमान लगाया जा सके कि भुगतान किस ऋण के चुकता करने के लिए है, तो ऐसी परिस्थिति में ऋणदाता अपनी इच्छानुसार उसे किसी भी वैध ऋण के संबंध में प्रयोग कर सकता है।

iii. **किसी भी पक्षकार द्वारा नियोजन न किये जाने की दशा में** – यदि पक्षकार भुगतान का नियोजन करने में असमर्थ रहते हैं, तो भुगतान का प्रयोग समयक्रमानुसार किया जायेगा, चाहे यह प्रचलित राजनियम के अंतर्गात अवधि-वर्जित हो अथवा नहीं।

iv. **यदि मूलधन तथा ब्याज दोनों बकाया हों** – यदि ऋणी धनराशि का भुगतान करते समय ऋणदाता को यह नहीं बताता है कि उसके द्वारा दी गई धन राशि का नियोजन मूलधन के लिए है, अथवा ब्याज के लिए, तो उसके द्वारा दी गई धनराशि का नियोजन सबसे पहले ब्याज के भुगतान के लिए किया जायेगा।

अनुबंध का खंडन

जब अनुबंध का निष्पादन अथवा अंत अन्य किसी रीति से नहीं होता और पक्षकार अपने दायित्व को पूरा नहीं करते, तो यह अनुबंध का खंडन कहलाता है। ऐसी स्थिति, जब पक्षकार अनुबंध के अंतर्गत उत्पन्न हुए अपने दायित्वों को पूरा नहीं करता है तो दूसरा पक्षकार उसे अनुबंध का खंडन मान सकता है और पीड़ित पक्षकार क्षतिपूर्ति की मांग कर सकता है।

अनुबंध का खंडन दो प्रकार से हो सकता है :

i. वास्तविक अनुबंध खंडन
ii. प्रत्याशित अनुबंध खंडन

वास्तविक अनुबंध खंडन

जब अनुबंध का खंडन अनुबंध के निष्पादन की तिथि अथवा अवधि में किया जाता है तो उसे अनुबंध का वास्तविक खंडन कहा जाता है। यदि अनुबंध नियत समय से पूर्व ही भंग कर दिया जाय तो उसे पूर्वधारी भंग कहते हैं। जब किसी अनुबंध के एक पक्षकार ने अपने पूरे दायित्वों का पालन करने से इंकार कर दिया है या अपने को योग्य बना लिया है तो अनुबंध का अंत हो जायेगा। यदि अनुबंध के निष्पादन के लिए

समय पूर्व से निश्चित होता है तथा उस समय पर एक पक्षकार द्वारा अनुबंध का निष्पादन करने से इंकार कर दिया जाता है तो इसे निष्पादन के समय खंडित माना जाता है।

वास्तविक अनुबंध के खंडन के निम्नलिखित प्रभाव होते है :

- अनुबंध पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय हो जाता है।
- पीड़ित पक्षकार पूर्व सूचना देकर क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकता है।

प्रत्याशित अनुबंध खंडन

जब अनुबंध का एक पक्षकार अनुबंध के निष्पादन से पूर्व ही अनुबंध का निष्पादन करने से मना कर देता है अथवा वह पक्षकार कोई ऐसा कार्य करता है जिससे अनुबंध का निष्पादन असंभव हो जाता है, तो उसे प्रत्याशित अनुबंध खंडन कहा जाता है। यदि किसी अनुबंध का पूरा होना किसी घटना के घटित होने पर निर्भर करता हो और अनुबंध का पक्षकार उस घटना के घटित होने से पूर्व ही अनुबंध को पूरा करने से इंकार कर देता है तो अनुबंध का प्रत्याशित खंडन माना जाता है।

अनुबंध खंडन के उपचार

जब अनुबंध का एक पक्षकार अनुबंध का खंडन करता है, तो दुसरे पक्षकार को पहले पक्षकार के प्रति निम्नलिखित उपचार प्राप्त होता है :

i. **निष्पादन से मुक्ति** – जब अनुबंध का एक पक्षकार अनुबंध का खंडन करता है तो दूसरा पक्षकार अनुबंध को समाप्त हुआ मान सकता है। ऐसी अवस्था में दूसरा पक्षकार (पीड़ित पक्षकार) अपने भाग के निष्पादन के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है।
ii. **उचित पारिश्रमिक पाने का अधिकार** – इस सिद्धांत के अनुसार जब कोई व्यक्ति दुसरे व्यक्ति के लिए उसकी प्रार्थना पर कोई कार्य करता है और यदि उस कार्य के लिए पहले से कोई पारिश्रमिक नियत न किया गया है, तो इस प्रकार से कार्य करने वाला व्यक्ति न्याय की दृष्टि से उचित पारिश्रमिक पाने का अधिकारी होता है।

उचित पारिश्रमिक सिद्धांत के लागु होने की शर्तें

उचित पारिश्रमिक सिद्धांत के लागु होने की शर्तें निम्नलिखित है :

i. **अनुबंध के खंडन पर** – अनुबंध के खंडन होने पर पीड़ित पक्षकार ने जितना काम किया है उसके लिए वह उचित पारिश्रमिक की मांग करने का अधिकारी होता है।

ii. **किसी तकनीकी त्रुटि के कारण कोई अनुबंध अप्रवर्तनीय होने पर** – यदि किसी तकनीकी त्रुटि के कारण कोई अनुबंध अप्रवर्तनीय हो जाता है तो वह व्यक्ति जिसने अनुबंध के अधीन कार्य किया है, किये गए कार्य के लिए उचित पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकारी होता है।

उचित पारिश्रमिक सिद्धांत न लागु होने की दशाएं

निम्नलिखित दशाओं में उचित पारिश्रमिक सिद्धांत लागु नहीं होता है :

i. **जब अनुबंध अविभाज्य हो** – जब अनुबंध अविभाज्य हो और पूर्ण कार्य के निष्पादन पर ही प्रतिफल के भुगतान का वचन दिया गया हो ऐसी परिस्थिति में आंशिक निष्पादन के आधार पर किसी भी पक्षकार को कोई भी पारिश्रमिक मांगने का अधिकार नहीं होगा।

ii. **स्पष्ट या गर्भित अनुबंध के आभाव में आंशिक कार्य के लिए पारिश्रमिक की मांग का अधिकार न होना** – किसी भी पक्षकार द्वारा पारिश्रमिक की मांग तब तक नहीं की जा सकती है जब तक कि किये गए कार्य के लिए पारिश्रमिक देने का कोई स्पष्ट या गर्भित अनुबंध न हो।

iii. **दोषी पक्षकार को क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार न होना** – यदि अनुबंध की शर्त के अनुसार, कार्य के पूर्ण हो जाने पर पारिश्रमिक देने का प्रावधान हो तो दोषी पक्षकार को उचित पारिश्रमिक अथवा क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार नहीं होता है।

iv. **निर्दिष्ट निष्पादन का अधिकार** – अनुबंध खंडन की दशा में पीड़ित पक्षकार को निर्दिष्ट निष्पादन का अधिकार केवल तभी प्राप्त हो सकता है जबकि क्षतिपूर्ति का पर्याप्त उपचार न हो। व्यक्तिगत सेवा-संबंधी अनुबंधों में निर्दिष्ट निष्पादन का सिद्धांत लागु नहीं हो सकता है।

क्षतिपूर्ति या हर्जाना

हर्जाना का अर्थ मुद्रा क्षतिपूर्ति से है जिसे कि पीड़ित पक्षकार अनुबंध के खंडन की अवस्था में पाने का अधिकारी है। इस प्रकार अनुबंध का खंडन होने पर हर्जाना क्षतिपूर्ति के रूप में आता है।

क्षतिपूर्ति की राशि निर्धारण करने से संबंधित नियम

भारतीय अनुबंध अधिनियम की धाराओं 73 तथा 74 के आधार पर अनुबंध के खंडन की दशा में निम्नलिखित नियम हैं :

i. अनुबंध के खंडन होने की दशा में पीड़ित पक्षकार अनुबंध का खंडन करने वाले पक्षकार से निम्नलिखित हानियों के प्रति क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकारी है :
   - यदि क्षति अनुबंध खंडन के स्वाभाविक परिणाम स्वरूप हुई है।
   - यदि अनुबंध करते समय दोनों पक्षकारों को यह ज्ञान था कि खंडन की दशा में इस प्रकार की हानि होगी, अथवा पक्षकारों को खंडन के परिणामों का ज्ञान था।

ii. यदि अनुबंध खंडन से होने वाली हानि दूर की तथा अप्रत्यक्ष हो, तो हर्जाना नहीं मिलेगा।

iii. अनुबंध खंडन से होने वाली हानि अथवा क्षति का अनुमान लगते समय उन साधनों को, जोकि अनुबंध के निष्पादन न होने से उत्पन्न हुई असुविधा को दूर करने के लिए विद्यमान थे, ध्यान रखना चाहिए।

iv. यदि अनुबंध करते समय दोनों पक्षकार सहमत हो गया हो कि अनुबंध खंडन की दशा में दोषी पक्षकार एक निश्चित धनराशि देगा तो ऐसी दशा में खंडन का अभियोग चलने वाला पक्षकार, भले ही वास्तविक हानि प्रमाणित हुई हो अथवा नहीं, उचित हर्जाना पाने का अधिकारी है। यह हर्जाना निर्धारित धन से अथवा दंड की राशि से अधिक नहीं होना चाहिए।

1.6 सारांश

अनुबंध अधिनियम का व्यापारिक सन्नियम में विशिष्ट स्थान है क्योंकि इसका संबंध प्रत्येक व्यक्ति से है चाहे वह इंजीनियर हो या चिकित्सक, प्रशासनिक अधिकारी हो या शिक्षक, व्यापारी हो या वेतनभोगी कर्मचारी, कलाकार हो या सामान्य नागरिक। व्यापारी वर्ग के लिए अनुबंध अधिनियम का अत्यधिक महत्व है क्योंकि व्यापार का कार्य अनुबंधों पर ही आधारित होता है। प्रत्येक ऐसा ठहराव जो पक्षकारों के बीच वैधानिक दायित्व एवं अधिकार की उत्पत्ति करता हो, अनुबंध कहलाता है। एक वैध अनुबंध के आवश्यक तत्वं हैं : कानूनी संबंध बनाने के लिए सही इरादे के साथ प्रस्ताव और स्वीकृति, दो या दो से अधिक पक्षकारों का होना, वैध प्रतिफल का होना, पक्षकारों में अनुबंध करने की क्षमता होना, स्वतंत्र सहमति होना, अनुबंध शुन्य धोषित नही होना तथा अनुबंध का लिखित एवं पंजीकृत होना । वैध अनुबंध का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण पक्षकारों के मध्य ठहराव का होना है। प्रत्येक ठहराव की उत्पत्ति प्रस्ताव तथा स्वीकृति से होती है, किन्तु प्रस्ताव अथवा स्वीकृति तभी प्रभावी होती है जबकि उसका संवहन हो जाय।

वैध अनुबंध का दूसरा प्राथमिक लक्षण पक्षकारों में अनुबंध करने की क्षमता का होना है। अनुबंध अधिनियम की धारा 10 के अनुसार केवल वे ही पक्षकार अनुबंध कर सकते हैं जिनमें अनुबंध करने की क्षमता हो। प्रत्येक ऐसा व्यक्ति अनुबंध करने की क्षमता रखता है जो संबंधित राजनियम के अनुसार, वयस्क आयु का है, स्वस्थ मस्तिष्क का है तथा किसी भी राजनियम द्वारा अनुबंध करने के लिए योग्य घोषित नहीं किया गया है। भारतीय राजनियम अवयस्कों को संरक्षण प्रदान करता है ताकि कोई अन्य व्यक्ति उनकी अवयस्कता का लाभ उठाकर उन्हें क्षति न पहुंचा सके। अवयस्क के साथ किया गया प्रत्येक अनुबंध व्यर्थ होता है, परन्तु उसके लाभ के लिए किया गया अनुबंध वैध हो सकता है। प्रत्येक स्वस्थ मस्तिष्क वाला व्यक्ति अनुबंध करने की क्षमता रखता है। वे व्यक्ति जो किसी राजनियम द्वारा अनुबंध करने के योग्य घोषित किये गए हैं, अनुबंध करने की क्षमता नहीं रखते हैं। एक वैध अनुबंध का तृतीय महत्वपूर्ण लक्षण संबंधित पक्षकारों की स्वतंत्र सहमति का होना है। सहमति केवल उसी समय स्वतंत्र कही जा सकती है जब वह उत्पीड़न, अनुचित प्रभाव, कपट, मिथ्या वर्णन या गलती के कारण प्रदान न की गई हो। एक वैध अनुबंध का चतुर्थ आवश्यक लक्षण न्यायोचित प्रतिफल एवं उद्देश्य का होना है। बिना न्यायोचित प्रतिफल एवं उद्देश्य के वैध अनुबंध का निर्माण नहीं होता है। कुछ अपवादों को छोड़कर वह बाजी अथवा जुए का ठहराव कहलाता है। सामान्यतः प्रतिफल रहित ठहराव व्यर्थ होते हैं।

1.7 बोध प्रश्न

1. भारतीय अनुबंध अधिनियम से क्या आशय है ? अनुबंध की विभिन्न विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. अनुबंध किसे कहते हैं ? संक्षेप में एक वैध अनुबंध के आवश्यक तत्वों को समझाइए।
3. 'समस्त अनुबंध ठहराव होते हैं परन्तु समस्त ठहराव अनुबंध नहीं होते।' इस कथन की विवेचना कीजिए।
4. 'एक ठहराव जो सन्नियम द्वारा प्रवर्तनीय होता है, अनुबंध कहलाता है।' इस कथन को समझाइए और एक वैध अनुबंध की आवश्यक बातों की संक्षेप में विवेचना कीजिए।
5. स्वीकृति से क्या आशय है ? स्वीकृति संबंधी वैधानिक नियमों की व्याख्या कीजिए।
6. प्रस्ताव और स्वीकृति शब्दों को परिभाषित कीजिए। वैध प्रस्ताव संबंधी नियमों की उदाहरण सहित विवेचना कीजिए।
7. अनुबंध करने की क्षमता से आपका क्या आशय है ? भारतीय अनुबंध अधिनियम के अनुसार कौन-कौन से व्यक्ति अनुबंध में सम्मिलित होने के लिए योग्य समझे गए हैं ?
8. अनुबंध करने के योग्य पक्षकारों से आपका क्या आशय है ? वे विभिन्न व्यक्ति कौन हैं जो कानून के द्वारा अनुबंध करने के योग्य समझे जाते हैं ?

9. अनुबंध करने की क्षमता के संबंध में अवयस्क की स्थिति की विवेचना कीजिए।
10. 'अवयस्क के साथ किये गए ठहराव व्यर्थ होते हैं, वैध होते हैं तथा व्यर्थनीय होते हैं।' स्पष्ट कीजिए।
11. सहमति से आप क्या समझते हैं ? उन दशाओं को बताइए जिनमें सहमति स्वतंत्र नहीं मानी जाती है ?
12. बल प्रयोग तथा अनुचित प्रभाव की परिभाषा दीजिये। अनुबंध की वैधानिकता पर इनका क्या प्रभाव पड़ता है ?
13. 'दो या दो से अधिक व्यक्ति सहमत तब कहे जाते हैं जब वे एक ही बात पर एक ही भाव से सहमत हों।' इस कथन का अर्थ उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
14. राजनियम में आप कपट से क्या समझते हैं। यह मिथ्या वर्णन से किस प्रकार भिन्न है ? कपट के प्रभावों का वर्णन कीजिए।
15. उत्पीड़न क्या है ? अनुबंध की वैधता पर उत्पीड़न का क्या प्रभाव पड़ता है ?
16. वैध अनुबंध के तत्व के रूप में प्रतिफल की व्याख्या कीजिए। 'बिना प्रतिफल के ठहराव व्यर्थ होता है' इस नियम के अपवाद बताइए।
17. भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 26 के अंतर्गत "विवाह में रुकावट डालने वाला ठहराव व्यर्थ होता है।" समझाइए।
18. व्यर्थ ठहराव किसे कहते हैं ? उन विभिन्न ठहरावों का संक्षेप में उल्लेख कीजिए जो भारतीय अनुबंध अधिनियम द्वारा स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित किये गए हैं।
19. सांयोगिक अनुबंध से आप क्या समझते हैं ? सांयोगिक अनुबंधों को लागू करने संबंधी नियमों की चर्चा कीजिए।
20. अनुबंध का निष्पादन कितने तरीके से किया जा सकता है ? स्पष्ट कीजिए। भुगतानों के नियोजन से संबंध में नियमों का विवेचन कीजिए।
21. अनुबंध के निष्पादन की परिभाषा दीजिए। अनुबंधों के निष्पादन से संबंधित नियमों की विवेचना कीजिए।

1.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- अग्रवाल, आर. सी. एवं अग्रवाल, संजय (2017), व्यापारिक सन्नियम, एस बी पी डी पब्लिकेशन्स, आगरा
- पाण्डेय एवं सिंह (2006), व्यापारिक नियम,एपसाइलन पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., कानपुर
- शुक्ला एवं सहाय (2001), व्यापारिक सन्नियम, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा

- Kuchhal, M. C. & Kuchhal, Vivek (2012), Mercantile Law, Vikas Publishing House, New Delhi.

इकाई – I I: वस्तु विक्रय अधिनियम, 1930

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 वस्तु विक्रय अधिनियम: एक परिचय
2.3 शर्त एवं आश्वासन
2.4 माल सुपुर्दगी संबंधी नियम
2.5 स्वामित्व तथा स्वत्व का हस्तांतरण
2.6 अदत्त विक्रेता के अधिकार तथा नीलामी द्वारा विक्रय
2.7 सारांश
2.8 बोध प्रश्न
2.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- वस्तु विक्रय संबंधी जानकारी।
- माल विक्रय अनुबंध एवं इसके आवश्यक लक्षण की जानकारी।
- शर्त एवं आश्वासन की जानकारी।
- अनुबंध के निषपादन की विस्तृत जानकारी।
- अदत्त विक्रेताओं के अधिकार की जानकारी।
- स्वामित्व हस्तांतरण संबंधी जानकारी।

2.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने अनुबंध को विस्तार से समझने का प्रयास किया। इन अनुबंधों के माध्यम से ही व्यापारिक गतिविधियों का संचालन होता है। किसी भी व्यापार का केन्द्र माल का विक्रय होता है जो आम नागरिक के दिन-प्रतिदिन के जरूरतों से संबंधित होता है। कानून में इसे विशिष्ट अनुबंध के नाम से संबोधित किया जाता है और इसे 'वस्तु बिक्रय अधिनियम' कहा जाता है।

वस्तु विक्रय से संबंधित अधिनियम आरंभ में भारतीय अनुबंध अधिनियम 1872 की 76-123 धाराओं में सम्मिलित थे। इस अधिनियम की व्यवस्थाओं में अनेक दोष थे। इनमें कई चीजें अस्पष्ट और परस्पर विरोधी थे। समय के साथ कारोबार और वाणिज्य के विकास के कारण व्यापारिक परिस्थितियाँ बदल रही थी। इन परिवर्तित परिस्थितियों के कारण तत्कालीन अधिनियम में व्यापक परिवर्तन करने की आवश्यकता अनुभव हुई। भारतीय संसद ने 15 मार्च 1930 में व्यापार संबंधी व्यवस्थाओं को मूल अनुबंध अधिनियम से निरस्थ कर उसके स्थान पर एक पृथक अधिनियम बनाया जिसे 'भारतीय वस्तु विक्रय अधिनियम 1930' कहते हैं। इसे 1 जुलाई 1930 से कार्यान्वित किया गया। भारतीय वस्तु विक्रय अधिनियम मूल रूप से अंग्रेजी वस्तु विक्रय अधिनियम, 1930 पर आधारित है। इसमें 1 से 65 तक धाराओं का वर्णन किया गया है। 1963 में इसके नाम से 'भारतीय' शब्द निकाल दिया गया। इस अधिनियम में माल विक्रय से संबंधित विभिन्न अनुबंधों एवं प्रावधानों का वर्णन किया गया है।

विक्रय अनुबंध के निष्पादन में यह आवश्यक है कि क्रेताऔर विक्रेता दोनों अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करें। दोनों में से कोई भी ऐसा कार्य न करे जो उनके अधिकार सीमा में न हो। इस अध्याय के अंतर्गत हम दोनों पक्षकारों के कर्त्तव्यों तथा अधिकारों पर प्रकाश डालेंगे।

2.2 वस्तु विक्रय अधिनियम: एक परिचय

विक्रय एवं बिक्री का ठहराव

वस्तु विक्रय अधिनियम, 1930 की आधारभूत परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं :-

क्रेता :- क्रेता से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो माल खरीदता है अथवा खरीदने के लिए सहमत होता है। (धारा 1 (1))

विक्रेता :- विक्रेता से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो माल बेचता है अथवा बेचने के लिए सहमत होता है। (धारा 2 (13))

सुपुर्दगी :- सुपुर्दगी से तात्पर्य उस व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को स्वेच्छापूर्वक माल के अधिकार का हस्तान्तरण करने से है। (धारा 2 (2))

सुपुर्दगी मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है।

1. वास्तविक सुपुर्दगी
2. रचनात्मक सुपुर्दगी

1. **वास्तविक सुपुर्दगी :-** जब विक्रेता क्रेता की वास्तविक रूप से माल सुपूर्द कर देता है तो यह वास्तविक सुपुर्दगी कहलाता है।
2. **रचनात्मक सुपूर्दगी :-** जब विक्रेता क्रेता की वास्तविक रूप से माल सुपुर्द न कर, कोई अधिकार पत्र क्रेता को दे देता है तो ऐसी सुपुर्दगी को रचनात्मक सुपुर्दगी कहते हैं।

सुपुर्दगी योग्य स्थिति :- माल उस समय सुपुर्दगी योग्य स्थिति में कहा जाता है जब कि वह ऐसी स्थिति में हो कि अनुबंध के अधीन क्रेता उसकी सुपुर्दगी लेने के लिए बाध्य हो। (धारा 2 (3))

माल :- माल से आशय प्रत्येक प्रकार की चल सम्पत्ति से है जैसे स्कंध, अंग, खड़ी फसले, घास एवं अन्य वस्तुएँ जो भूमि में लगी हो या भूमि के रूप में हो या जिन्हें विक्रय से पहले या विक्रय अनुबंध के अंतर्गत भूमि से अलग कर अनुबंध किया गया हो।

माल के प्रकार :-

1. **भावी माल :-** भावी माल से आशय ऐसे माल से है जो विक्रय अनुबंध होने के प्रश्चात् विक्रेता द्वारा निर्मित अथवा उत्पन्न अथवा प्राप्त किया जाना है। (धारा 2 (6))
2. **विशिष्ट माल :-** विशिष्ट माल से आशय ऐसे माल से है जो विक्रय अनुबंध करते समय पहचान लिया गया हो और जिस पर पक्षकारों की सहमति प्राप्त हो गई हो। (धारा 2 (14))
3. **निश्चित माल :-** यह एक प्रकार का विद्यमान माल होता है। यह माल खरीददार एवं विक्रय अनुबंध के उपरांत अलग करके निश्चित किया जाता है। यदि बेचने वाला विद्यमान माल में से अपनी पसंद का माल छॉटकर अलग कर लेता है जो यह माल निश्चित माल कहा जायेगा।
4. **अनिश्चित माल :-** अनिश्चित माल से आशय ऐसे माल से है जो विक्रय अनुबंध करते समय पहचाना न गया हो, वरन् किंवल विवरण द्वारा परिभाषित किया गया हो, अथवा प्रलेख हो।

दोष :- दोष का आशय गलत कार्य अथवा त्रुटि से है। (धारा 2 (6))

मूल्य :- मूल्य से आशय किसी माल की बिक्री के प्रतिफल से है जो कि सदैव मुद्रा में ही होना चाहिए।
(धारा 2 (10))

दिवालिया : दिवालिया से आशय उस व्यक्ति से है जिसने व्यापार की साधारण प्रगति में या तो अपने ऋणों की चुकाना बंद कर दिया हो अथवा अपना ऋणों की चुकाना बन्द कर दिया हो अथवा ऋण चुकाने में वह असमर्थ हो गया हो, चाहे उसने दिवालिया होने का कार्य किया हो अथवा नहीं। (धारा 2 (8))

सम्पत्ति :- सम्पत्ति से आशय केवल विशिष्ट सम्पत्ति से न होकर माल की सामान्य सम्पत्ति से है।

(धारा 2 (11))

व्यापारिक प्रतिनिधि :- व्यापारिक प्रतिनिधि ऐसे व्यक्ति को कहते हैं, जिसे कारोबार की साधारण प्रगति में प्रतिनिधि की हैसियत से माल बेचने या विक्रय हेतु माल भेजने या खरीदने अथवा माल की प्रत्याभूमि पर रूपया उधार लेने का अधिकार प्राप्त हो। (धारा 2 (9))

माल की किस्म : - माल की किस्म से आशय उसकी दशा अथवा स्थिति से है।

(धारा 2 (12))

निश्चित माल एवं अनिश्चित माल में अंतर

क्र. सं.	आधार	निश्चित माल	अनिश्चित माल
1.	तात्पर्य	निश्चित माल से तात्पर्य ऐसे माल से है जिसे अनुबंध करते समय पहचान कर स्वीकृत किया जाता है।	अनिश्चित माल से तात्पर्य ऐसे माल से है जिसे अनुबंध करते समय पहचान नहीं जा सकता है।
2.	विक्रय रूप	इसका विक्रय केवल वर्णन द्वारा संभव नहीं होता है क्योंकि माल उपलब्ध होता है।	इसका विक्रय केवल वर्णन द्वारा ही संभव होता है क्योंकि माल उपलब्ध नहीं होता है।
3.	मूल्य	यह पूर्व से निश्चित रहता है।	यह पूर्व से निश्चित नही रहता है।

विक्रय एवं विक्रय के ठहराव में अंतर

क्र. सं.	आधार	विक्रय	विक्रय का ठहराव
1)	समय	विक्रय का अनुबंध एक निष्पादित अनुबंध है। अत: यह वर्तमानका अनुबंध कहलाता है।	यह भविष्य अनुबंध है। विक्रय ठहराव एक निष्पादनीय अनुबंध है।
2)	माल के स्वामित्व का हस्तांतरण	विक्रय में माल का स्वामित्व तत्काल ही क्रेता की हस्तांतरित हो जाता है।	इसमें माल का स्वामित्व तब तक हस्तांतरित नहीं होता है जब तक नियम समय पूरा न हो जाय अथवा शर्त पूरी न हो जाय।
3)	निष्पादन	इसमें निष्पादन तत्काल पूरा हो जाता है, इसलिए यह निष्पादन अनुबंध कहलाता है।	इसमें क्रिया का निष्पादन भविष्य में होता है, अर्थात विक्रय का किया जाना अपेक्षित रहता है।

4)	अधिकार की प्रकृति	यह विश्वव्यापी अधिकारों की उत्पत्ति करता है। इसमें क्रेता मनमाने ढंग से समस्त विश्व के विरूद्ध वस्तु का प्रयोगकर सकता है।	यह पारस्परिक अधिकारों की उत्पत्ति करता है। इसमें केवल क्रेता एवं विक्रेता की ही एक-दूसरे के विरूद्ध बाद प्रस्तुत करने का अधिकार होता है।
5)	शर्त	बिक्री में कोई शर्त नहीं होती।	विक्रय का ठहराव शर्त-रहित अथवा शर्त-सहित दोनों का होता है।
6)	क्षति की जोखिम	विक्रय समाप्त हो जाने पर माल की क्षति की जोखिम क्रेता की होती है।	इसमें जोखिम विक्रेता पर ही रहती है।
7)	मूल्य न चुकाने पर	विक्रय में यदि क्रेता मूल्य का भुगतान नहीं करता है तो विक्रेतामूल्य के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।	इसमें यदि क्रेता मूल्य का भुगतान नहीं करा है तो विक्रेता क्रेता पर केवल हर्जाने का बाद प्रस्तुत कर सकता है।
8)	माल न देने पर	यदि विक्रेता माल नहीं देता है तो विक्रेता के उपर माल देने के लिए मुकदमा किया जा सकता है।	इसमें क्रेता की केवल विक्रेता के खिलाफ नुकसान का दावा करने का अधिकार होता है।
9)	पुन: विक्रय का अधिकार	विक्रय में माल का विक्रेता पुन: विक्रय कर सकता है।	इसमें पुन: विक्रय विशेष परिस्थितियों की छोड़कर सामान्यत: नही किया जा सकता है।
10)	क्रेता के दिवालिया होने पर	इसमें क्रेता के दिवालिया होने पर विक्रेता को क्रेता का खरीदा हुआ माल सरकारी रिसीवर के हवाले करना होगा।	इसमें ऐसी परिस्थितियों में विक्रेता क्रेता की माल देने से इन्कार कर सकता है।
11)	विक्रेता के दिवालिया होने पर	यदि माल को क्रेता के सुपुर्द करने से पहले दिवालिया हो जाता है तो क्रेता सरकारी रिसीवर से माल की सुपुर्दगी ले सकता है।	इसमें किसी परिस्थिति में क्रेता माल पाने का अधिकारी नहीं हो सकता। वह केवल अपने अंश के लिए बाद प्रस्तुत कर सकता है।

माल विक्रय अनुबंध एवं इसके आवश्यक लक्षण :

माल विक्रय अनुबंध पक्षकारों की इच्छानुसार बिना शर्त या सशर्त किया जा सकता है। इस प्रकार माल विक्रय अनुबंध में वास्तविक विक्रय और विक्रय के लिए ठहराव दोनों ही सम्मिलित किया जाता है। विक्रय अनुबंध के अंतर्गत जिस समय माल का स्वामित्व विक्रेता से क्रेता के पास हस्तांतरित होता है, विक्रय कहलाता है तथा जब माल के स्वामित्व का हस्तांतरण किसी आगामी तिथि पर होना निश्चित होता है विक्रय के लिए ठहराव कहा जाता है।

उदाहरण के लिए, मोहन 500 किलो चावल 25,000 रूपये में सोहन से क्रय करने का अनुबंध करता है। यदि सोहन, मोहन की अधिकार देता है कि वह जब भी चाहे आकर चावल ले जाये तो यह विक्रय की श्रेणी में रखा जायेगा।

वस्तु विक्रय अनुबंध की परिभाषा :-

वस्तु-विक्रय अनुबंध की धारा 4(1) के अनुसार, “वस्तु विक्रय का अनुबंध एक ऐसा अनुबंध है जिसके द्वारा विक्रेता एक निश्चित मूल्य के बदले माल का स्वामित्व हस्तांतरित करता है अथवा हस्तांतरित करने का ठहराव करता है।”

विक्रय की परिभाषा :-

वस्तु –विक्रय अनुबंध की धारा 4(3) के अनुसार, “जब किसी विक्रय अनुबंध के अंतर्गत माल का स्वामित्व विक्रेता से क्रेता की हस्तांतरित हो जाता है तो उस अनुबंध को विक्रय कहते हैं।”

विक्रय के ठहराव की परिभाषा:-

वस्तु-विक्रय अनुबंध की धारा 4(3) के अनुसार, “जहाँ माल के स्वामित्व का हस्तांतरण भविष्य में किसी समय होने वाला हो अथवा भविष्य में किसी शर्त के पूरा करने पर निर्भर हो, तो ऐसे अनुबंध को विक्रय के लिए ठहराव कहते हैं।”

वस्तु –विक्रय अनुबंध के लक्षण:-

एक वस्तु-विक्रय अनुबंध में निम्नलिखित लक्षण होते हैं –

1. **क्रेता तथा विक्रेता का होना :-** वस्तु-विक्रय अनुबंध के लिए दो पक्षकारों का होना आवश्यक है इनमें एक क्रेता तथा दूसरा विक्रेता होना चाहिए। बिना इन दोनों के विक्रयअनुबंध का निर्माण नहीं हो सकता।

2. **माल का होना :-** वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा (7) में माल को परिभाषित किया गया है। विक्रय अनुबंध में माल का विशेष महत्व है, क्योंकि माल के बिना अनुबंध नही हो सकता है। माल का आशय चल सम्पत्ति से है।
3. **मूल्य का होना :-** माल का विक्रय सदैव मूल्य के बदले में होना चाहिए मूल्य का अभिप्राय प्रतिफल से है और वह सदैव मुद्रा के रूप में ही होना चाहिए। यदि मुद्रा के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु के रूप में प्रतिफल चुकाया जाये, तो इसे विक्रय नहीं वरन् वस्तु विनियम कहेंगे।
4. **स्वामित्व का हस्तांतरण :-** वस्तु विक्रय के अनुबंध में स्वामित्व का हस्तांतरण एक निश्चित प्रक्रिया द्वारा होना आवश्यक है। जिसने माल बेचा है, उसे मूल्य के बदले खरीददार के उस माल का मालिकाना हक भी प्रदान करना चाहिए। माल के स्वामित्व के हस्तांतरण के लिए, की भौतिक सुपुर्दगी आवश्यक नहीं होती है।
5. **चल संपत्ति :-** माल के विक्रय में सदैव चल संपत्ति का ही विक्रय होता है, अतएव इस अधिनियम के अंतर्गत अचल संपत्ति का विक्रय नहीं किया जा सकता है।
6. **वैध अनुबंध के गुण :-** विक्रय का अनुबंध एक अनुबंध होने के कारण ऐसी सभी लक्षणों की शर्त पूरी करता है जो एक वैध अनुबंध के होते हैं।
7. **शर्त-सहित अथवा शर्त-रहित :-** वस्तु –विक्रय अनुबंध शर्त-रहित अथवा शर्त –सहित दोनों में से किसी भी प्रकार का हो सकता है।
8. **स्पष्ट अथवा गर्भित :-** वस्तु-विक्रय अनुबंध स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकता है। स्पष्टत: अनुबंध मौखिक अथवा लिखित हो सकता है।

   इस प्रकार इनमें से किसी एक या अन्य लक्षण के अभाव में विक्रय का अनुबंध पूर्ण नहीं हो सकता है। अत: एक वैध वस्तु-विक्रय अनुबंध के लिए इन सभी तत्वों का होना आवश्यक होता है।

2.3 शर्त एवं आश्वासन

समाज का प्रत्येक प्राणी उपभोक्ता है जो अपने दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वस्तुएँ खरीदते है या किसी अन्य वस्तु का उत्पादन करने का प्रयास करते हैं। कभी-कभी विक्रेता द्वारा किये गये संवर्धन प्रयासों के कारण उपभोक्ता नियमित रूप से खरीद रहे वस्तु की बजाय विशेष ब्रांड के नाम का माल क्रय करना ही पसंद करते हैं। संवर्धन द्वारा किये गये प्रयासों के अंतर्गत बंधन की उपस्थिति प्राय: होती है जो शर्ततथा आश्वासन के रूप में होती है।

बंधन

विक्रय अनुबंध की धारा 12(1) के अनुसार किसी विक्रय अनुबंध के माल से संबंधित बंधन शर्त या आश्वासन के रूप में हो सकता है।

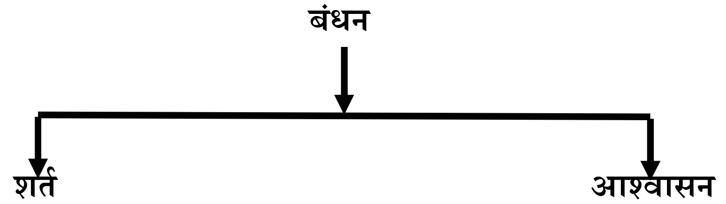

शर्त :- विक्रय अनुबंध की धारा 12(2) के अनुसार, "'शर्त एक ऐसा बंधन है, जो अनुबंध के क्रियान्वयन के लिए परम आवश्यक है और जिसका खंडन होन पर अनुबंध को परित्याग करने का अधिकार उत्पन्न हो जाता है।"

विवेचना : -

1. शर्त एक बंधन है।
2. यह अनुबंध के मुख्य उद्देश्य के लिए आवश्यक है।
3. इस बंधन के भंग होने पर अनुबंध के भंग हुआ माना जा सकता है।

उदाहरण :-

'क' अपनी हिरो बाइक 'ख' को 25,000 रूपये में बेचने को प्रस्ताव करता है। ख कहता है कि यदि बाईक 2008 अथवा उकसे बाद का निर्मित है तो मैं खरीद लूँगा। बाइक देखने पर पता चला कि वह 2005 का निर्मित था यहाँ पर 'ख' बाइक खरीदने से इन्कार कर सकता है।

आश्वासन :-

वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 12(3) के अनुसार, "आश्वासन एक ऐसा बंधन है जो अनुबंध के मुख्य आशय की पूर्ति के लिए अधिक आवश्यक नहीं होता है। इसके भंग होने से केवल क्षतिपूर्ति का दावा किया जा सकता है, किन्तु माल को अस्वीकार करने तथा अनुबंध को भंग करने का अधिकार उत्पन्न नहीं होता है।"

विवेचना :-

1. आश्वासन एक बंधन है।
2. यह अनुबंध के मुख्य उद्देश्य के लिए आवश्यक नहीं है।
3. आश्वासनके भंग होने पर अनुबंध को भंग करने का अधिकार नहीं है।
4. आश्वासन के भंग होने पर केवल क्षतिपूर्ति का दावा किया जा सकता है।

उदाहरण :-

'क', 'ख' से अनुबंध करता है कि यदि तुम्हारी बाइक अच्छी हालत में है तो मैं उसे 27,000 रूपये में खरीद लूँगा। अनुबंध के निष्पादन के समय पाया गया कि बाइक का रंग खराब हो रहा है। यहाँ 'क' उस अनुबंध को व्यर्थ घोषित नहीं कर सकता क्योकि बाइक का रंग ठीक होना अनुबंध की आवश्यक शर्त नहीं थी। 'क' ऐसी स्थिति में केवल क्षतिपूर्ति का दावा कर सकता है।

शर्त तथा आश्वासन की कसौटी :-

वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 12(4) के अनुसार, 'विक्रय अनुबंध में कोई बंधन शर्त है अथवा आश्वासन यह प्रत्येक अनुबंध की बनावट पर निर्भर करता है। कोई बंधन शर्त भी हो सकता है, यद्यपि अनुबंध में आश्वासन कहा गया है।

शर्त तथा आश्वासन में अंतर

देखने –सुनने में शर्त एवं आश्वासन एक जैसी प्रकृति के प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तव में वस्तु विक्रय अनुबंध के व्यवहार के दौरान उनमें अंतर दृष्टिगत होता है। कोई कथन शर्त है अथवा आश्वासन इस बात पर निर्भरकरेगा कि वह कथन अनुबंध के लिए मूलभूत आधार है यह केवल समपार्श्विक वचन मात्र है।

शर्त उन मुख्य स्तंभों की भ्रांति है जिन पर सम्पूर्ण अनुबंध टिका हुआ होता है और मुख्य स्तंभों में से किसी एक के टूट जाने पर संपूर्ण भवन धराशायी हो जाता है, जबकि आश्वासन उन सहायक स्तंभों की श्रृंखला भी भ्रांति है जो किसी मुख्य स्तंभ के श्रृंखला के समानांतर खड़ी है जिनमें किसी एक के टूटन पर मुख्य स्तंभ को कुछ भी हानि नहीं होती है, केवल कुछ हानि उठानी पड़ती है।

शर्त एवं आश्वासन में अंतर निम्नलिखित है :-

शर्त एवं आश्वासन के ठहराव में अंतर

क्र. सं.	आधार	शर्त	आश्वासन
1)	तात्पर्य	यदि अनुबंध शर्तयुक्त है तो इसे 'शर्त' कहकर संबोधित करेंगे।	यदि अनुबंध शर्तयुक्त नहीं है तो इसे आश्वासन कहकर संबोधित करेंगे।
2)	अनुबंध के लिए आवश्यकता	शर्त अनुबंध के मुख्य आशय की पूर्ति के लिए परम आवश्यक है।	शर्त अनुबंध के मुख्य आशय की पूर्ति की पूर्ति के लिए समपार्श्विक है।
3)	खंडित होने पर	शर्त खंडित होने की दशा में पीडित	आश्वसन खंडित होने की दशा

		पक्षकार अनुबंध खंडित हुआ मान सकता है।	में पीडित पक्षकार अनुबंध खंडित हुआ नहीं मान सकता है।
4)	अनुबंध के निष्पादन से मुक्ति	प्राय: शर्त खंडत होने की दशा में पीडित पक्षकार अनुबंध का खंडत हुआ मान लेता है। अत: अनुबंध के निष्पादन का प्रश्न ही नहीं उठता है।	आश्वासन खंडन होने की दशा में अनुबंध का खंडन नहीं होता है, अत: क्रेता व विक्रेता दोनों ही अपने-अपने वचनों का निष्पादन करने के लिए बाध्य होते हैं।
5)	उपचार	शर्त खंडन को आश्वासन का खंडन मानकर पीडित पक्षकार को क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार होता है। तथा अनुबंध को समाप्त करने का अधिकार होता है।	पीडित पक्षकार को केवल क्षतिपूर्ति का अधिकार होता है।
6)	स्वत्व का हस्तांतरण	शर्त का पालन किये बिना स्वत्व का हस्तांतरण नहीं हो सकता है।	आश्वासन के पालन के बिना स्वत्व का हस्तांतरण हो सकता है।
7)	शर्त खंडन व आश्वासन खंडन	कुछ परिस्थितियों में दोषी पक्षकार शर्त खंडन को आश्वासन खंडन मान सकता है।	आश्वासन का खंडन किसी भी परिस्थिति में शर्त का खंडन नही माना जा सकता है।
8)	प्रतिफल पर प्रभाव	शर्त का प्रभाव संपूर्ण प्रतिफल पर होता है।	आश्वासन का प्रभाव प्रतिफल के किसी एक भाग पर ही होता है।
9)	संख्या	गर्भिय आश्वासनों की तुलना में गठित शर्तों की संख्या अधिक होती है।	गर्भित शर्तों की तुलना में गर्भित आश्वासनों की संख्या कम है।

शर्त एवं आश्वासन के प्रकार

भारतीय अनुबंध अधिनियम के अनुसार, शर्त एवं आश्वासन दो प्रकार के हो सकते हैं।

1. **स्पष्ट शर्त एवं आश्वासन :-** शर्त एवं आश्वासन को स्पष्ट तब कहा जाता है जब अनुबंध में इनके लिए स्पष्ट रूप से व्यवस्था की गई हो। उदाहरण के लिए स्पष्ट रूप से व्यवस्था की गई हो। उदाहरण के लिए जब कोई क्रेता सफेद रंग की टाटा नेनो खरीदना चाहता है, तो टाटा नेनो का रंग एक स्पष्ट शर्त माना जाता है। अनुबंध करने वाले पक्षकार अनुबंध की विषयवस्तु के बारे में जैसा चाहें, उस कथन या वचन को स्पष्ट रूप से लिख सकते हैं, तब इसे स्पष्ट शर्त के रूप में स्वीकार किया जायेगा।

विक्रय अनुबंध में स्पष्ट करार के द्वारा पक्षकार अपनी इच्छानुसार स्पष्ट शर्त एवं आश्वासन रखने के लिए पुर्णत: स्वतंत्र है। जब कोई भी कंपनी अपने उत्पादों का विज्ञापन करती है तो वह एक निश्चित अवजिके लिए गारंटी देती है। उदाहरण के लिए इन्टेक्स (Index) अपने मोबाइल पर बिक्री की तारीख से 1 साल की वारंटी देता है। यह स्पष्ट आश्वासन का एक उदाहरण है।

2. **गर्भित शर्त एवं आश्वासन :-** गर्भित शर्त तथा आश्वासन वे होते हैं जिनका लिखित या मौखिक रूप से वर्णन किया जाना अनिवार्य नहीं होता, क्योंकि वे स्वयं अनुबंध पर लागु होते हैं, अर्थात राजनियम स्वयं उनका होना मान लेता है।

गर्भित शर्तें

माल के विक्रय के अनुबंध में निम्नलिखित गर्भित शर्तें होती है :

1. **माल के अधिकार संबंधी शर्ते :-** वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 14 (2) के अनुसार प्रत्येक विक्रय अनुबंध में जब तक कि अनुबंध की परिस्थितियों से कोई विपरीत आशय न प्रकट होता हो, यह गर्भिय शर्त रहती है कि विक्रेता की –
   अ) विक्रय की दशाम में माल बेचने का अधिकार प्राप्त है तथा
   आ) विक्रय के ठहराव की दशा में, स्वामित्व के हस्तांतरण के समय माल के बेचने का अधिकार प्राप्त है।
2. **वर्णन द्वारा विक्रय के संबंध में :-** वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा15 के अनुसार जहाँ वर्णन द्वारा विक्रय अनुबंध हुआ हो, वहाँ पर गर्भिय शर्त है कि
   अ) माल वर्णन से मेल खायेगा तथा
   आ) यदि माल का विक्रय नमूने तथा वर्णन दोनों के द्वारा किया गया हो, तो केवल यह पर्याप्त नहीं है कि अधिकांश माल नमूने से मेल खाता है अर्थात माल का नमूने तथा वर्णन दोनों से मेल खाना परम आवश्यक है।
3. **माल की किस्म अथवा उपयुक्ता के संबंध में :-** वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 16 के अनुसार, सामान्यत: किसी भी विक्रय अनुबंध में ऐसी कोई भी गर्भित शर्त अथवा आश्वासन नहीं रहता कि माल किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयुक्त होगा जिसके लिए वह खरीदा जा रहा है। इसमें क्रेता की सावधानी का नियम लागु होता है।
4. **माल की व्यापार योग्यता के संबंध में** – वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 16(2) के अनुसार जहाँ माल के वर्णन के अधार पर ऐसे विक्रेता से क्रय-किया जाय जो उसी प्रकार के माल को बेचता है तो ऐसी दशा में यह गर्भित शर्त है कि माल व्यापार योग्य होगा, किन्तु यदि विक्रेता ने माल की

जाँच की ये तो ऐसे दोषी के लिए भी गर्भित शर्त नहीं होगी जो साधारण जाँच से पता लग जाने लायक हो।

5. **व्यापार की रीति के संबंध में :-** वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 16(3) के अनुसार व्यापार की रीति के अनुसार भी माल के गुण, उपयुक्तता अथवा किसी विशेष आशय के लिए गर्भित शर्त हो सकती है।
6. **नमूने द्वारा विक्रय के संबंध में :-** वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 17 के अनुसार

   अ) अधिकांश माल नमूने के समान होगा;

   आ)क्रेता को नमूने के साथ तुलना करने का उचित अवसर प्राप्त होगा;

   इ) माल में ऐसा कोई दोष नहीं होगा जिससे वह व्यापार –योग्य न रहे और जो नमूने की उचित जाँच के बाद भी ज्ञान न थे सके।

गर्भित आश्वासन

माल के विक्रय के अनुबंध में निम्नलिखित गर्भित आश्वासन होते हैं :

1. माल के शान्तिपूर्ण अधिकार एवं उपयोग का गर्भित आश्वासन वस्तु-विक्रय अधिनियम की धारा 14(2) के अनुसार, किसी विपरीत अनुबंध के अभाव में खरीददार को इस प्रकार का गर्भित आश्वासन होगा कि वह खरीदे गये माल पर शान्तिपूर्ण स्वामित्व रखे और वस्तु के उपयोग का पूर्ण अधिकार रखे।
2. **माल के भार मुक्त होने का आश्वासन** – वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 14(2) के अनुसार, किसी विपरीत संविदान के न होने पर यह निहित आश्वासन खरीददार को दिया गया माना जायेगा कि बिक्री का माल किसी तीसरे पक्षकार को किसी प्रकार के भार से मुक्त होना चाहिए।
3. **व्यापार की रीति के अनुसार माल के गुण अथवा उपयुक्तता संबंधी गर्भित आश्वासन** – वस्तु विक्रय अधिनिमय की धारा 16(3) के अनुसार, क्रेता की यह निहित आश्वासन प्राप्त होता है कि माल जिस उपयोग के लिए खरीदा जा रहा है। वह उस गुण संयुक्त और उपयोग के लिए पूर्ण रूप से उपयुक्त हो।
4. **वस्तु की मुद्रता अथवा वास्तविकता संबंधी गर्भित आश्वासन** – विक्रय की जाने वाली वस्तुएँ शुद्ध एवं वास्तविक होनी चहिए नकली नहीं। यदि किसी वस्तु पर कोई व्यापारिक चिन्ह लगा है तो वस्तु के विक्रेता की ओर से यह गर्भित आश्वासन होगा कि उक्त वस्तु पर लगा व्यापारिक चिन्ह असली है।

5. **माल की खतरनाक प्रकृति को प्रकट करने के संबंध में गर्भित आश्वासन -** खतरनाक माल के विक्रय के संबंध में विक्रेता का यह कर्तव्य है कि क्रेता को इस संबंध में सचेत कर दे और यह भी बता दे कि ऐसे वस्तुओं के लिए विशेष सावधानी बरतने की आवश्यकता है।

क्रेता की सावधानी का सिद्धांत

क्रेता की सावधानी का सिद्धांत लैटिन भाषा में 'Caveat Emptor' शब्द का हिन्दी अनुवाद है। Caveat शब्द का अंग्रेजी अर्थ है 'Beware' जिसे हिन्दी में सावधानी रहो तथा Emptor शब्द का अंग्रेजी अर्थ है Boyer जिसे हिन्दी में क्रेता कहते हैं। इस प्रकार 'Caveat Emptor' शब्द का अर्थ है, 'क्रेता सावधान रहों।

यह सामान्य सिद्धांत की बात है कि क्रेता माल खरीदते समय सावधान रहे अर्थात वह अपने हितों की स्वयं ही रक्षा करें। इस प्रकार क्रेता की सावधानी पूर्वक क्रय करता चाहिए। वह माल की गुणवता, उपयोगिता आदि की पूर्ण जाँच करके खरीदे, वह पूर्ण जाँच करने के बाद माल खरीदता है और बाद में माल में कोई दोष निकलताहै तो उसके लिए विक्रेता उत्तरदायी नहीं होगा।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि क्रेता की सावधानी के सिद्धांत के अनुसार क्रेता का यह कर्तव्य है कि वह सावधानी पूर्वक अपने विवेक को काम में लेते हुए पर्याप्त जाँच करके यथोचित गुण, किस्म व उद्देश्य के लिए ही माल खरीदे।

अपवाद

सामान्यत: क्रेता की सावधानी का नियम लागु होता है किन्तु निम्नलिखित परिस्थितियों में क्रेता की सावधानी का नियम लागु नहीं होता है और माल के दोष के संबंध में विक्रेता की उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

1. **विक्रेता को उद्देश्य प्रकट करने की दशा में** – यदि माल खरीदने समय क्रेता द्वारा अपना उद्देश्य स्पष्ट कर दिया जाये जिसके लिए माल खरीदना है तो विक्रेता का यह कर्त्तव्य है कि उस निश्चित उद्देश्य के अनुसार वस्तु है।
2. **वर्णन द्वारा विक्रय की दशा में :-** यदि माल का विक्रय वर्णन द्वारा हुआ तो गर्भिय शर्त है कि माल वर्णन के अनुसार होगा। ऐसी स्थिति में माल में 'व्यापार योग्यता' होना आवश्यक है। यहाँ पर क्रेता की सावधानी का नियम लागु नहीं होगा।
3. **नमूने द्वारा विक्रय की दशा में :-** यदि विक्रेता द्वारा माल का विक्रया नमूने द्वारा किया जाता है तो ऐसी स्थिति में यह गर्भित शर्त है कि माल नमूने के अनुसार ही होगा।

4. **विक्रेता द्वारा मिथ्या वर्णन की दशा में** – यदि विक्रेता माल के संबंध में मिथ्या वर्णन करता है और क्रेता उसपर विश्वास करता है तो क्रेता की सावधानों का नियम लागु नहीं होगा।
5. **छल-कपट की दशा में** – यदि विक्रेता से किसी वस्तु बेचने की सहमति छल-कपट से प्राप्त की है तो विक्रेता उत्तरदायी होगा क्रेता नहीं।
6. **व्यापार की रीति अथवा परंपरा की दशा में** – कुछ अनुबंधों में व्यापार की रीति अथवा परंपरा के अनुसार माल की किस्म अथवा उपयुक्तता की शर्त हो सकती है। ऐसी स्थिति में क्रेता की सावधानी का नियम लागु नहीं होगा।

2.4 विक्रय अनुबंध का निष्पादन

विक्रय अनुबंध के निष्पादन में यह नितांत आवश्यक है कि क्रेता तथा विक्रेता दोनों अपने-अपने कर्तव्यों का पूर्ण रूप से पालन करे। क्रेता तथा विक्रेता ऐसा कोई कार्य न करे जो कि उनके अधिकार की सीमा के परे हो। इन दोनों पक्षकारों के कर्तव्यों एवं अधिकारों का उल्लेख आगे है।

विक्रेता के कर्तव्य एवं अधिकार

विक्रेता के कर्तव्य

वस्तु विक्रय अधिनियम के अनुसार एक विक्रेता के निम्नलिखित कर्तव्य हैं-

1. **माल की सुपुर्दगी देना** – विक्रेता का यह कर्तव्य है कि वह विक्रय अनुबंध की शर्तों के अनुसार माल सुपुर्दगी दे।
2. **माल के संबंध में वाहक से अनुबंध करना** – क्रेता के किसी विपरीत आदेश के अभाव में, यदि विक्रेता माल को क्रेता के पास पहुँचाने के लिए किसी वाहक का सुपुर्द करता है, तो उसका यह कर्तव्य है कि माल के स्वभाव तथा अन्य परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए वाहक के साथ उचित अनुबंध करें।
3. **समुद्धवाहक से अनुबंध करना** – क्रेता के साथ किसी विपरीत अनुबंध के अभाव में यदि माल को क्रेता तक पहुँचाने के लिए समुद्र मार्ग से गुजरना हो तथा परिस्थितियों ऐसी हो जिनमें माल का साधारण तया बीमा करवाया जाता हो, तो विक्रेता का यह कर्तव्य है कि क्रेता को ऐसी सूचना दे।
4. **माल की परीक्षा करने का उचित अवसर देना** – यदि क्रेता ऐसा माल खरीद रहा हो जिसकी उसने पहले परीक्षा नहीं की है तो विक्रेता का यह कर्तव्य है कि वह क्रेता को माल की परीक्षा करने के लिए उचित अवसर दे।

विक्रेता के अधिकार

वस्तु विक्रय अधिनियम के अनुसार एक विक्रेता के निम्नालिखित अधिकार है –

1. **मूल्य प्राप्त करने का अधिकार** –विक्रेता को किसी भी बेचे गये माल का मूल्य प्राप्त करने का अधिकार है। यह मूल्य उसे क्रेता से प्राप्त होगा।
2. **मूल्य के लिए वाद प्रस्तुत करने का अधिकार** – यदि विक्रय अनुबंध के अंतर्गत विक्रेता ने क्रेता को माल का स्वामित्व हस्तांतरित कर दिया है अथवा क्रेता दोषपूर्ण ढंग से अनुबंध की शर्तो के अनुसार माल का मूल्य चुकाने से इन्कार करता है। तो विक्रेता माल के मूल्य के लिए वाद प्रस्तुत करने का अधिकारी है।
3. **अस्वीकृति के लिए क्षतिपूर्ति** – यदि क्रेता दोषपूर्ण ढ़ंग से माल को स्वीकार करने या मूल्य चुकाने में उपेक्षा एवं इन्कार करता है, तो विक्रेता माल की अस्वीकृति के लिए क्षतिपूर्ति का वाद प्रस्तुत करने का अधिकारी है।
4. **विशिष्ट निष्पादन** – विक्रेता को माल के विक्रय अनुबंध के विशिष्ट निष्पादन का अधिकार है।
5. **विशिष्ट क्षतिपूर्ति के रूप में ब्याज प्राप्त करने का अधिकार** – विक्रेता विशिष्ट क्षतिपूर्ति के रूप में माल के मूल्य पर ब्याज पाने का उस समय से अधिकारी है जिस तारीख को माल सुपूर्द किया गया था अथवा भुगतान देया था।

क्रेता के कर्तव्य एवं अधिकार

क्रेता के कर्तव्य

वस्तु विक्रय अधिनियम के अनुसार क्रेता के निम्नलिखित कर्तव्य है –

1. **मूल्य का भुगतान करना** – क्रेता का यह कर्तव्य है कि वह माल की पूर्ण कीमत अदा करे। किसी विपरीत अनुबंध के अभाव में माल की सुपुर्दगीऔर भुगतान ये दोनों पारस्पारिक वचन होते है जिनका निष्पादन एक साथ होता है।
2. **सुपुर्दगी की माँग करना -** यदि कोई स्पष्ट अनुबंधन हो तो क्रेता का यह कर्तव्य है कि वह माल की सुपुर्दगी की माँग करें।
3. **गलत मात्रा में सुपुर्दगी की स्थिति** – यदि क्रेता को गलत मात्रा में माल सुपुर्द किया जाता है तो वह माल लेने से मना कर सकता है। परन्तु यदि वह गलत मात्रा स्वीकार कर लेता है तो वह भुगतान हेतु उत्तरदायी होगा ।
4. **मार्ग की जोखिम सहना -** धारा 40 के अनुसार किसी विपरीत अनुबंध के अभाव में क्रेता का यह कर्तव्य होता है कि वह मार्ग की जोखिम को सहन करें।

5. **माल की सुपुर्दगी लेने में अपेक्षा अथवा इन्कार करने का दायित्व -** जब विक्रेता माल की सुपुर्दगी देने के लिए इच्छुक है और क्रेता उचित समय में माल की सुपुर्दगी नहीं लेता है तो क्रेता सुपुर्दगी लेने से उपेक्षा अथवा इन्कार के कारण होने वाली हानि के लिए उत्तरदायी होता है।

क्रेता के अधिकार :

वस्तु विक्रय अधिनियम के अनुसार क्रेता के निम्नलिखित अधिकार है-

1. **माल की सुपुर्दगी प्राप्त करना** – क्रेता को अधिकार होता है कि वह माल की सुपुर्दगी प्राप्त करें।
2. **गलत मात्रा में सुपुर्दगी की दशा में** – यदि विक्रेता द्वारा क्रेता को गलत मात्रा में माल की सुपुर्दगी दी जाती है तो क्रेता माल को अस्वीकार कर सकता है।
3. **माल की परीक्षा करने का अधिकार** – जब क्रेता को ऐसा माल सुपुर्द किया जाता है जिसकी उसने पहले परीक्षा नहीं की है तो माल क्रेता के द्वारा स्वीकार किया हुआ तब तक नहीं समझा जा सकता है जब तक कि उसे माल की परीक्षाकरने का उचित अवसर प्राप्त नहीं हो जाता।
4. **अस्वीकृत माल को वापस करने के लिए बाध्य नहीं** – जब कोई विपरित अनुबंध न हो तो क्रेता का यह दायित्व नहीं है कि अस्वीकृत माल वापस लोटाये। उसे द्वाराअस्वीकृत माल की सूचना देना ही पर्याप्त समझा जायेगा।
5. **सुपुर्दगी प्राप्त न होने पर क्षतिपूर्ति का अधिकार** – यदि क्रेता को गलत तरीके से माल सुपुर्द किया जाता है तो क्रेता क्षतिपूर्ति हेतु वाद प्रस्तुत कर सकता है।
6. **आश्वासन भंग होने पर उपचार** – यदि विक्रेता ने किसी आश्वासन को भंग किया थे अथवा किसी शर्त के भंग को आश्वासन का भंग माना गया हो तो क्रेता इसके लिए क्षतिपूर्ति करने का अधिकार है।

सुपुर्दगी की परिभाषा

वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 12(2) के अनुसार, "सुपुर्दगी से तात्पर्य एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को स्वेच्छापूर्वक माल के अधिकार हस्तांतरण करना है।"

सुपुर्दगी के लिए यह आवश्यक है कि माल के अधिकार का हस्तांतरण स्वेच्छा पूर्वक होना चाहिए। यदि हमाल के अधिकार का हस्तांतरण बल प्रयोग द्वारा अथवा किसी अन्य तरीके से किया जाता है तो यह स्वेच्छापूर्वक माल का अधिकार प्राप्त नहीं किया, अत: इसे सुपुर्दगी नहीं किया जायेगा। वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 33 के अनुसार विक्रय किये गए माल की सुपुर्दगी कोई भी ऐसा काम करके किया जा

सकता है जिसमें दोनों पक्षकार यह मान लें कि सुपुर्दगी हो गई है या जिसका यह प्रभाव हो कि माल क्रेश या उसके प्रतिनिधी के अधिकार में आ जाये।

सुपुर्दगी के प्रकार

माल की सुपुर्दगी निम्नलिखित तीन प्रकार की हो सकती है-

1. **वास्तविक सुपुर्दगी -** जब माल वास्तविक रूप में अनुबंध की शर्तों के अंतर्गत क्रेता या अधिकृत प्रतिनिधि के पास पहुँच जाता है तो उसे वास्तविक सुपुर्दगी कहते हैं। उदाहरण के लिए सचिन, सोहन, से मोटर साइकिल खरीदकर तथा उस पर सवार होकर अपने ऑफिस जाता है। यह वास्तविक सुपुर्दगी कहलायेगी।
2. **रचनात्मक सुपुर्दगी-** यह बनावटी अथवा कल्पित सुपुर्दगी की भ्रांति होता है। इस सुपुर्दगी में माल विक्रेता अथवा किसी अन्य पक्षकार के अधिकार में रहाता है, किन्तु क्रेता को माल संबंधी अधिकार – पत्र दे दिया जाता है। इस प्रकार की सुपुर्दगी को रचनात्मक सुपुर्दगी कहते हैं। उदाहरण के लिए, राजु, सुजीत को 100 कुलर बेचने का अनुबंध करता है। अनुबंध के समय वह सुजीत को 100 कुलर की ट्रांसपोर्ट रसीद दे देता है। यहाँ पर यह कूलरों की रचनात्मक सुपुर्दगी कहलायेगी।
3. **सांकेतिक सुपुर्दगी** – जब माल भारी रहता है तथा उसे एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाना अथवा भौतिक रूप से हस्तांतरण करना लगभग असंभव रहता है तो विक्रेता माल का अधिकार पत्र जैसे रेलवे, रसीद, जहाजी बिल्टी आदि क्रेता को सौंप देता है तो इसे सांकेतिक सुपुर्दगी कहते हैं। उदाहरण के लिए, सुरेश ने रमेश से 100 बोरे गेहूँ के खरीदे तथा माल लाने के लिए ट्रक भेजी। जैसे ही गेहूँ के ब्योरे ट्रक पर लादे जाते हैं माल की सुपुर्दगी रमेश को मान ली जायेगी। इस प्रकार के सुपुर्दगी की सांकेतिक सुपुर्दगी करते हैं।

सुपुर्दगी संबंधी नियम

सुपुर्दगी के संबंध में क्रेता तथा विक्रेता दोनों अपनी इच्छानुसार नियम बनाने के लिए स्वतंत्र होते हैं। यदि इस संबंध में दोनों कोई भी नियम न बनायें तो निम्नालिखित नियम लागु होते है।

1. **सुपुर्दगी एवं भुगतान साथ-साथ होना-** किसी विपरीत अनुबंध के अभाव में सुपुर्दगी तथा भुगतान दोनों साथ-साथ होता है।
2. **सुपुर्दगी वास्तविक, रचनात्मक या सांकेतिक ये सकती है -** सुपुर्दगी का उद्देश्य माल का स्वामित्व विक्रेता से क्रेता को हस्तांतरित करना होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए माल की सुपुर्दगी वास्तविक, रचनात्मक अथवा सांकेतिक हो सकती है।

3. **क्रेता द्वारा सुपुर्दगी के लिए आवेदन किया जाना** – क्रेता द्वारा सुपुर्दगी के लिए आवेदन किय जाने पर विक्रेता माल की सुपुर्दगी देने के लिए बाध्य हो जाता है।
4. **सुपुर्दगी की विधि -** माल विक्रेता के पास पहुँचाना विक्रेता का दायित्व होता है। यह बात दोनों पक्षों के बीच किय गये स्पष्ट या गार्भिय अनुबंध की प्रकृति पर आधारित होती है।
5. **सुपुर्दगी का स्थान** – माल की सुपुर्दगी किस स्थान पर की जायेगी यह विक्रय अनुबंध में लिखित होता है। ऐसे किसी अनुबंध के अभाव में सुपुर्दगी उस स्थान पर की जायेगी जहाँ पर माल की बिक्री का ठहराव किया गया हो। यदि बिक्री के समय वहाँ माल न हो तो सुपुर्दगी उस स्थान पर की जायेगी जहाँ माल का निर्माण होता है।
6. **सुपुर्दगी का समय -** यदि विक्रय अनुबंध के अंतर्गत विक्रेता माल को क्रेता के पास भेजने के लिए बाध्य हो, किन्तु सुपुर्दगी के लिए कोई समय निश्चित नहीं हुआ हो तो माल की सुपुर्दगी उचित समय में होना चाहिए।
7. **जब माल तृतीय पक्षकार के पास हो -** यदि माल तीसरे पक्षकार के पास हो तो सुपुर्दगी उसी दशा में मानी जायेगी यदि तीसरा पक्षकार यह स्वीकार कर ले उसके पास क्रेता का माल है।
8. **सुपुर्दगी की मांग करना और प्रस्तुत करना** – सुपुर्दगी की मांग उस समय तक निष्फल समझा जायेगा जब तक वह उचित समय पर न किया गया हो। अत: माल की सुपुर्दगी की मांग उचित समय में करनी चाहिए।
9. **सुपुर्दगी व्यय -** किसी विपरीत अनुबंध के अभाव में माल की सुपुर्दगी की स्थिति में लाने तथा इससे संबंधित अन्य सभी व्यय विक्रेता की सहन करने होंगे।

गलत मात्रा में सुपुर्दगी की दशा में –

यदि अनुबंध में तय की गई मात्रा से कम-अधिक या अन्य माल के साथ मिलाकर माल को भेजा जाता है तो उससे संबंधित निम्नलिखित व्यवस्थाएँ वस्तु विक्रय अधिनियम मे दी गई है-

1. **कम मात्रा की दशा में -** यदि विक्रेता क्रेता को निश्चित मात्रा से कम माल सुपुर्दगी हेतु भेजता है तो क्रेता को यह अधिकार है कि वह माल की सुपुर्दगी लेने से इन्कार कर दे किंतु वह स्वीकार कर लेता है तो उसे पूर्व में निश्चित की गई दर से भुगतान सुनिश्चित करना होगा। उदाहरण के लिए सोहन, मोहन की 50 वाशिंग मशीन बेचने का अनुबंध करता है। परन्तु केवल 25 वाशिंग मशीन सुपुर्दगी के लिए भेजता है। यहाँ पर मोहन यदि चाहे तो वाशिंग मशीन लेने से इन्कार कर सकता है। परंतु यदि वह उन्हें स्वीकार कर लेता है तो उसे अनुबंध की दर के अनुसार उनका मूल्य चुकाना होगा।
2. **अधिक मात्रा की दशा में** – यदि विक्रेता क्रेता को निश्चित मात्रा से अधिक माल सुपुर्दगी हेतु भेजता है तो क्रेता को यह अधिकार होता है कि वह अनुबंध के अनुसार माल स्वीकार कर शेष माल लेने से

इन्कार कर सकता है अथवा यदि वह सम्पूर्णमाल स्वीकार कर लेता है तो उसे संपूर्ण माल का मूल्य अनुबंध की दर के अनुसार चुकाना होगा।

3. **विभिन्न विवरण के माल के साथ मिलाने पर** – यदि विक्रेता क्रेता को अनुबंध किय गये माल साथ भिन्न विवरण के माल का मिश्रित कर सुपुर्द करता है तो क्रेता अनुबंध के अनुसार माल स्वीकार कर सकता है। तथा शेष माल लेने से इन्कार कर सकता है अथवा वह संपूर्ण माल को लेने से इन्कार कर सकता है।

2.5 स्वामित्व तथा स्वत्व का हस्तांतरण

स्वामित्व का हस्तांतरण

विक्रय अनुबंध के अंतर्गत जब तक विक्रेता से क्रेता की माल के स्वामित्व का हस्तांतरण न हो तब तक क्रेता को माल का स्वामित्व प्राप्त नहीं हो सकता है। माल के विक्रय का अनुबंध एक ऐसा अनुबंध है जिसके द्वाराविक्रेता एक नियम मूल्य के बदले माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तांतरित करता है अथवा करने का ठरहाव करता है।

"माल के स्वामित्व के साथ-साथ जोखिम भी जाती है।"

विक्रय अनुबंध अधिनियम धारा 26 के अनुसार, "''जब कोई विपरीत ठहराव न हुआ हो, माल उस समय तक विक्रेता की जोखिम पर रखा है जब तक कि उसका स्वामित्व क्रेता को हस्तांतरित नहीं हो जाता किंतु जब माल के स्वामित्व का हस्तांतरण क्रेता को हो जाता है तब माल की जोखिम क्रेता के ऊपर रहती है, चाहे माल की सुपुर्दगी हुई हो अथवा नहीं।"

अत: यदि माल का स्वामित्व क्रेताके पास चला गया है तो ऐसी दशा में विक्रय हुए माल की हानि तथा विनाश की जोखिम क्रेता पर पड़ती है, विक्रेता पहर नहीं, भले ही माल अभी विक्रेता के अधिकार में है।

माल के स्वामित्व का हस्तांतरण के उद्देश्य से माल का वर्गीकरण तथा स्वामित्व के हस्तांतरण संबंधी नियम :

सामान्यत: विक्रेता तथा क्रेता जब चाहे आपस में मिलकर यह तय कर सकते हैं कि माल के स्वामित्व का हस्तांतरण कब और किस समय होगा। इस प्रकार के अनुबंध के अभाव में निर्णय भारतीय अनुबंध अधिनियम के अनुसार होगा। स्वामित्व के हस्तांतरण के उद्देश्य से माल को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है:

1. निश्चित अथवा विशिष्ट माल

2. अनिश्चित अथवा साधारण माल
3. अनुमोदन के लिए भेजा हुआ माल
4. व्यवस्थापन के अधिकार को सुरक्षित करने की दशा में स्वामित्व का हस्तांतरण

1. निश्चित अथवा विशिष्ट माल की दशा में स्वामित्व का हस्तांतरण -

ऐसा माल जो विक्रय अनुबंध करते समय तय और पहचान लिया गया हो, उसे निश्चित अथवा विशिष्ट माल कहते है।

स्वामित्व के हस्तांतरण का समय :- विक्रय अनुबंध अधिनियम की धारा 19(1) के अनुसार, "जहाँ निश्चित अथवा विशिष्ट माल के विक्रय के लिए अनुबंध होता है, वहाँ माल के स्वामित्व का हस्तांतरण क्रेता को उस समय होता है जबकि अनुबंध के पक्षकारों ने हस्तांतरण का आशय अथवा अभिप्राय प्रकट किया हो।"

जब कोई विपदीत आशय प्रकट न होता ये तो क्रेता को माल के स्वामित्व के हस्तांतरण के समय संबंध में पक्षकारों के अभिप्राय को जानने के लिए निम्नलिखित नियमों की सहायता लेनी होगी –

I. **निश्चित अथवा विशिष्ट माल की सुपुर्दगी की दशा में -** यदि निश्चित अथवा विशिष्ट माल की बिक्री के लिए कोई बिना शर्त अनुबंध किया गया हो, तो क्रेता को माल का स्वामित्व अनुबंध के समय ही प्राप्त हो जाता है चाहे भुगतान का समय अथवा माल की सुपुर्दगी का समय अथवा दोनों स्थगित कर दिया गया हो।

II. **निश्चित अथवा विशिष्ट माल को सुपुर्दगी योग्य दशा में किया जाना हो -** यदि निश्चित अथवा विशिष्ट माल के विक्रय के लिए अनुबंध हुआ हो और विक्रेता माल सुपुर्दगी योग्य दशा में लाने के लिए कुछ कार्यकरने के लिए बाध्य हो, तो स्वामित्व का हस्तांतरण उस समय तक नहीं होगा जब तक कि इस प्रकार का कार्य न कर दिया गया हो और इसकी सूचना क्रेता को दे दी हो।

III. **निश्चित अथवा विशिष्ट माल जो जो सुपुर्दगी योग्य है किन्तु विक्रेता को मूल्य निश्चित करने के लिए कुछ कार्य करना है-** यदि ऐसे निश्चित अथवा विशिष्ट माल के विक्रय का अनुबंध किया गया है जो सुपुर्दगी योग्य है परन्तु विक्रेता मूल्य निर्धारण के लिए माल को तोलने, नापने परीक्षण अथवा कोई अन्य कार्य करने के लिए बाध्य है। ऐसी स्थिति में स्वामित्व का हस्तांतरण तब तक नहीं होगा जब तक कि वह कार्य नहीं कर दिया जाता और इसकी सूचना क्रेता को नहीं दी जाती।

2. अनिश्चित माल की दशा में स्वामित्व का हस्तांतरण -

अनिश्चित माल वह माल है जो विक्रय अनुबंध के समय निश्चित न किया गया है, परन्तु केवल वर्णन द्वारा ही परिभाषित किया गया है।

अनिश्चित माल के स्वामित्व के हस्तांतरण के संबंध में निम्नलिखित नियम लागु होते हैं –

I. **माल का निश्चित किया जाना -** यदि अनिश्चित माल के विक्रय का अनुबंध किया गया हो तो क्रेता को माल के स्वामित्व का हस्तांतरण तब तक नहीं थे सकता है जब तक कि माल निश्चित न हो जाये।

II. **माल का विनियोजन-** यदि अनिश्चित माल के विक्रय का अनुबंध वर्णन के आधार पर हुआ हो तथा उक्त वर्णन का माल सुपुर्दगी योग्य दशा में क्रेता द्वारा विक्रेता की सम्मति से अथवा विक्रेता द्वारा क्रेता की सम्मति के बिना किसी शर्त के अनुबंध के लिये विनियोजन कर दिया गया हो तो ऐसी दशा में माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तांतरित हो जायेगा।

III. वाहक को सुपुर्दगी - जहाँ अनुबंध के अनुसार माल का विक्रेता क्रेता को अथवा किसी वाहक को अथवा अन्य निक्षेप- गृहित को माल इस उद्देश्य से सुपुर्द करता है कि वह उसे क्रेता तक पहुँचा दे और उसकी व्यवस्था का अधिकार सुरक्षित नही रखता, तो यह माना जायेगा कि उसके बिना किसी शर्त के अनुबंध के लिये माल का विनियोजन कर दिया।

3. अनुमोदन के लिए अथवा वापसी की शर्त पर भेजे गये माल के संबंध में स्वामित्व का हस्तांतरण

जब अनुमोदन अथवा विक्रय वापसी की शर्त पर क्रेता की माल सुपुर्दगी ही जाये, तो माल पर स्थानित्व का हस्तांतरण क्रेता को निम्नलिखित दशाओं में होता हैं :

I. **विक्रेता को सूचना देना-** यहि क्रेता अपना अनुमोदन अथवा स्वीकृति विक्रेता को प्रकट कर दे अथवा उस व्यवहार को ग्रहण करने का अन्य कोई कार्य करे तो यह मान लिया जायेगा कि माल के स्वामित्व का हस्तांतरण हो गया।

II. **विक्रेता को सूचना नहीं देने पर -** यदि क्रेता अपनी स्वीकृति विक्रेता को प्रकट नही करता, किन्तु अस्वीकृति की सूचना दिये बिना ही माल को अपने पास रोककर रख लेता है, तो ऐसी दशाओं यदि माल को वापस करने का समय निश्चित कर दिया गया हो तो उस समय की समय पर और यदि कोई समय निश्चित नहीं हुआ हो तो उचित समय के समाप्त हो जाने पर माल के स्वामित्व का हस्तांतरण क्रेता को ही जाता हैं।

III. **क्रेता के किसी कार्य या त्रुटि द्वारा -** जब क्रेता की अपनी त्रुटि अथवा लापरवाही के कारण वस्तु की वापसी असंभव हो जाती है तो विक्रेता से क्रेता को स्थामित्व का हस्तांतरण हो जाता है।

4. व्यवस्थापन के अधिकार को सुरक्षित करने की दशा में स्वामित्व का हस्तांतरण –

I. **विक्रय अनुबंध अधिनियम की धार 25(1)** के अनुसार, “जहाँ निश्चित अथवा विशिष्ट माल के विक्रय का अनुबंध होता है अथवा जब माल अनुबंध के लिय बाद मं नियोजित कर दिया गया ये, तो विक्रय अनुबंध की शर्तों के द्वारा माल की व्यवस्था के अधिकार को उस

अवधि तक के लिये सुरक्षित रख सकता है जब तक कि शर्तें पूरी न कर दी जाय। ऐसी दशा में माल का स्वामित्व क्रेता के पास उस समय तक हस्तांतरित नही होगा जब तक विक्रेता द्वारा लगाई गई शर्तों को पूरा न किया जाय।"

II. **विक्रय अनुबंध अधिनियम की धार 25(2)** के अनुसार, "यदि माल जहाज द्वारा भेजा जा रहा थे और जहाज बिल्टी के द्वारा माल विक्रेता अथवा उसके एजेन्ट के आदेश पर सुपुर्द किया जाना है, तो यह माना जायेगा कि विक्रेता ने व्यवस्था का अधिकार अपने पास सुरक्षित रखा है।"

III. **विक्रय अनुबंध अधिनियम की धार 25(4)** के अनुसार, "यदि विक्रेता मूल्य के लिये क्रेता को एक बिल लिखता है और विनियम –पत्र तथा जहाजी बिल्टी क्रेता के पास स्वीकृति अथवा भुगतान प्राप्त करने के लिये एक साथ भेजता है, तो क्रेता विनियम –पत्र को अस्वीकार करने पर जहाजी बिल्टी वापस करने के लिए बाध्य है अन्यथा माल का स्वामित्व उसे हस्तांतरित नहीं होगा।"

स्वत्व का हस्तांतरण

माल के अधिकार के हस्तांतरण से अभिप्राय 'माल का अधिकार अथवा स्वत्व' के हस्तांतरण से है, माल के हस्तांतरण से नहीं। सामान्यत: माल नहीं व्यक्ति बेचता है जिसके पास बेचने का अधिकार होता है, परंतु कभी-कभी ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जबकि माल का विक्रय किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाता है जो उसका वास्तविक स्वामी न हो जैसे- चोरी किये गये माल का विक्रय। ऐसी स्थिति में बेचने वाला माल का वास्तविक स्वामी नहीं है। ऐसी दशा में कौन हानि सहे, माल का वास्ववविक स्वामी था खरीदने वाला जबकि दोनों निर्दोष है।

स्वत्व के हस्तांतरण संबंधी नियम

विक्रय अनुबंध अधिनियम की धारा 27 के अनुसार, "कोई भी क्रेता अपने माल के विक्रेता से श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता।" अर्थातयदि विक्रेता का अधिकार श्रेष्ठ है तो क्रेता का अधिकार भी श्रेष्ठ होगा तथा यदि विक्रेता का अधिकार दूषित है तो क्रेता को उससे श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता।

उपर्युक्त नियम लैटिन भाषा से इस सामान्य नियम पर आधारित है कि "कोई भी व्यक्ति किसी को वह नहीं दे सकता जो उसके अधिकार में नहीं है।" यह नियम माल के वास्तविक स्वामी की रक्षा करता है।

उपरोक्त नियम के अपवाद

निम्नलिखित परिस्थितियों में क्रेता का अधिकार विक्रेता से श्रेष्ठ होगा :

I. **गलारोध द्वारा अधिकार की दशा में :-** यदि माल का वास्तविक स्वामी अपने आचरण द्वारा क्रेता को यह विश्वास दिलाता है कि विक्रेता ही माल का वास्तविक स्वामी है, अथवा माल को बेचने के लिए स्वामी से उसे अधिकार प्राप्त है और क्रेता को इस विश्वास पर माल खरीदने के लिए प्रेरित करता है, तो बाद में वह यह नहीं कह सकता है कि विक्रेता को माल बेचने का अधिकार नहीं था। ऐसी परिस्थिति में क्रेता को अच्छा अधिकार प्राप्त हो जाता है।

II. **व्यापारिक एजेण्ट द्वारा विक्रय की दशा में** – यदि किसी व्यापारिक एजेण्ट के अधिकार में स्वामी की सहमति से माल अथवा माल के अधिकार संबंधी प्रलेख हों, तो व्यापार की साधारण प्रगति में उसके द्वारा की गई बिक्री उतनी ही मान्य होगी जैसे उसे माल के स्वामी द्वारा माल के विक्रय करने का स्पष्ट अधिकार प्राप्त हो, बरार्ते क्रेता ने सद्विश्वास के साथ कार्य किया हो एवं विक्रय अनुबंध के समय उसे सूचना प्राप्त न हो कि विक्रेता को माल बेचने का अधिकार प्राप्त नहीं है।

III. **संयुक्त स्वामियों में से किसी एक के द्वारा विक्रय** – जहाँ माल के अनेक सामियों में से किसी एक स्वामी को सहस्वामियों की सहमति से माल पर एकाकी अधिकार प्राप्त हो और माल का स्वामित्व ऐसे व्यक्ति को हस्तांतरित हो जाता है, जो उसको सदविश्वास के साथ खरीद लेता है तथा जिसे विक्रय का अनुबंध करतेसमय यह सूचना प्राप्त नहीं है कि विक्रेता को माल बेचने का अधिकार नहीं है तो ऐसे क्रेता का अधिकार श्रेष्ठ होता है।

IV. **व्यर्थनीय अनुबंध के अंतर्गत माल पर अधिकार रखने वाले व्यक्ति द्वारा विक्रय -** यदि विक्रेता ने माल पर अधिकार भारतयी अनुबंध अधिनियम की धारा 19 (अ) के अधीन व्यर्थनीय अनुबंध माल विक्रय के समय तक निरस्त किया गया हो, तो क्रेता को ऐसे माल का श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त होगा बशर्तें उसे सहविश्वास के साथ खरीदा हो तथा उसे विक्रेता के दोषपूर्ण अधिकार की जानकारी न हो।

V. **विक्रय के बाद माल पर अधिकार रखने वाले विक्रेता द्वारा किया** – जब विक्रेता माल को बेच देने के पश्चात भी माल के अधिकार संबंधी प्रलेख अपने पास रखता है तथा बाद में वह स्वयं तथा उसका व्यापारिक एजेण्ट उस माल को किसी तृतीय पक्षकार के हाथ बेच देता है तो क्रेता का अधिकार श्रेष्ठ रहेगा,बशर्तें उसने सदविश्वास के साथ माल खरीदा हो तथा उसे पहले के विक्रय की जानकारी न हो।

VI. **माल पर अधिकार रखनेवाले क्रेता द्वारा विक्रय** – यदि कोई क्रेता विक्रेता की सहमति से माल का स्वामित्व हस्तांतरित होने से पूर्व माल अथवा माल के अधिकार संबंधी प्रलेख प्राप्त कर लेता है और इसके पश्चात किसी तीसरे व्यक्ति को बेच देता है, तो क्रेता का अधिकार श्रेष्ठ रहेगा।

VII. **अदत्त विक्रेता द्वारा पुन: विक्रय की दशा में** – विक्रय अनुबंध अधिनियम की धारा 54(c) के अनुसार, "एक अदत्त विक्रेता अपने ग्रहणाजिकार अथवा माल की मार्ग में रोकने के अपने अधिकार को प्रयोग करने के पश्चात उस माल की पुन: बेच सकता है। ऐसी स्थिति में माल के क्रेता अधिकार श्रेष्ठ रहता है।"

VIII. **खाये हुए माल के पाने वाले द्वारा विक्रय** – खोये हुए माल के पानेवाले को कुछ परिस्थितियों में माल बेचने का अधिकार होता है। ऐसी दशा में भी क्रेता को श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त होता है।

IX. **बंधक गृहिता द्वारा विक्रय** – बंधनगृहित को भी कुछ परिस्थितियों में बंधक में रखे गये माल की बेचने का अधिकार होता है। ऐसी दशा में भी क्रेता को श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त होता है।

X. **न्यायालय की आज्ञा के अंतर्गत विक्रय** – न्यायालय की आज्ञा के अंतर्गत विक्रय की दशा में भी क्रेता का अधिकार श्रेष्ठ रहता है।

2.6 अदत्त विक्रेता के अधिकार तथा नीलामी द्वारा विक्रय

अदत्त विक्रेता

वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 45 के अनुसार, निम्न परिस्थितियों में विक्रेता को अदत्त विक्रेता माना जाता है –

1. माल की सुपुर्दगी के बाद जिसे पूरा मूल्य न चुकाया गया हो अथवा जिसके समक्ष मूल्य न प्रस्तुत किया गया हो।
2. विक्रेता को किसी शर्तयुक्त भुगतान के रूप में कोई विनियम पत्र अथवा विनियम साध्य प्रलेख प्राप्त हुआ हो।
3. अदत्त विक्रेता में स्वयं विक्रेता के अलावा वे व्यक्ति भी शामिल हैं जो उसके एजेण्ट, प्रेषक अथवा प्रतिनिधि हो और अन्य विक्रेता की स्थिति में आ गये हैं।

अदत्त विक्रेता के अधिकार

अदत्त विक्रेता को प्राप्त अधिकारों को मोटे रूप में निम्नलिखित दो भागों में बाँटा जा सकता है:

1) क्रेता के विरूद्ध अधिकार
2) माल के विरूद्ध अधिकार

1) क्रेता के विरूद्ध अधिकार –

I. **मूल्य के लिए बाद प्रस्तुत करना** – विक्रय अनुबंध के अनुसार यदि क्रेता को माल का स्वामित्व हस्तांतरित हो चुका हो और क्रेता अनुबंध की शर्तों के अनुसार मूल्य चुकाने में उपेक्षा करता है अथवा इन्कार करता है, तो विक्रेता क्रेतापर माल के मूल्य के भुगतान के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

यदि विक्रय अनुबंध के अनुसार माल की सुपुर्दगी को ध्यान दिये बिना मूल्य का भुगतान होना तय हुआ है और क्रेता उस दिन मूल्य का भुगतान करने में असमर्थ रहता है, तो विक्रेता क्रेता पर मूल्य के भुगतान के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

II. **क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत करना** – वस्तु विक्रय अधिनियमकी धारा 56 के अनुसार, यदि क्रेता दोषपूर्ण ढ़ंग से माल स्वीकार करने तथा मूल्य का भुगतान करने की उपेक्षा करता है अथवा इन्कार करता है तो ऐसी अस्वीकृतिसे उत्पन्न हानि की पूर्ति के लिए विक्रेता क्रेता पर बाद प्रस्तुत कर सकता है।

III. **निश्चित तिथि से पूर्व अनुबंध का खंडन करने का अधिकार** – वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 60 के अनुसार, यदि सुपुर्दगी की तिथि से पूर्व ही क्रेता अनुबंध का खंडन कर देता है तो विक्रेता अपनी इच्छानुसार अनुबंध को चालु समझकर सुपुर्दगी की तिथि तक प्रतीक्षा कर सकता है। अथवा उस दिन अनुबंध का खंडन हुआ मानकर क्रेता पर क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

IV. **ब्याज के लिए वाद प्रस्तुत करना-** वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 61(1) के अनुसार, यदि विक्रेता तथा क्रेता के बीच माल के मूल्य के भुगतान की तिथि निश्चित है तो उस तिथि के बाद भुगतान नहीं करने की दशा में क्रेता द्वारा ब्याज चुकाने का प्रावधान है, तो विक्रेता क्रेता के विरूद्ध ब्याज प्राप्त करने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

माल के विरूद्ध अधिकार –

1. माल के स्वामित्व के हस्तांतरण होने की स्थितिमें
2. यदि माल के स्वामित्व का हस्तांतरण न हुआ हो तो माल को अपने पास रोकने का अधिकार।

माल का स्वामित्व हस्तांतरण होने की स्थिति में

I. **माल पर ग्रहणाधिकार अथवा विशेषाधिकार** – ग्रहणाधिकार से आशय माल का मूल्य प्राप्त करने तक उसे अपने पास रोके रखने से है। अदत्त विक्रेता जिसके अधिकार में माल हो, उस समय तक माल को अपने पास रख सकता है जब तक कि उसे मूल्य चुकाया न जाय अथवा प्रस्तुत न किया जाय। अदत्त विक्रेता अपने ग्रहणाधिकार का प्रयोग उस समय भी कर सकता है जब कि उसके पास माल पर अधिकार क्रेता के प्रतिनिधि अथवा निक्षेपगृहीता के रूप में हो।

II. **माल की रास्ते में रोकने का अधिकार** – वस्तु विक्रय अधिनियम की धारा 50 के अनुसार, "यदि माल का क्रेता दिवालिया हो गया हो तो अदत्त विक्रेता जिसके अधिकार से माल निकल गया हो, माल को मार्ग में रोक सकता है और जब तक माल मार्ग में है, वह माल को अपने अधिकार में ले सकता है और जब तक उसे मूल्य न चुकाया जाय अथवा मूल्य प्रस्तुत न किया जाय तब तक उसे रोके रख सकता है।" अदत्त विक्रेता को यह अधिकार उस समय प्राप्त होता है जब कि क्रेता दिवालिया हो गया हो और क्रेता अथवा उसके प्रतिनिधि ने माल की सुपुर्दगी प्राप्त न की हो अर्थात माल मार्ग में ही हो।

माल तभी रोका जा सकता है जबकि वह मार्ग में हो। माल के मार्ग में रहने की अवधि के संबंध में निम्नलिखित नियम लागु होते हैं :-

- वाहक या निक्षेपगृहित की माल सौंपने पर।
- नियत स्थान पर पहूँचने से पूर्व क्रेता द्वारा सूपूर्दगी लेना।
- क्रेता की ओर से वाहक द्वारा माल रखना।
- क्रेता द्वारा माल अस्वीकार करना।
- जहाज को सुपूर्दगी।
- वाहक की त्रुटि होने पर।
- क्रेता द्वारा आंशिक सुपुर्दगी लेना।

III. **माल को पुन:विक्रय करने का अधिकार** – ग्रहणाधिकार तथा मार्ग में रोकने के अधिकार के अतिरिक्त अदत्त विक्रेता को माल को पुन: बेचने का अधिकार प्राप्त है। इस अधिकार का प्रयोग वह निम्नालिखित परिस्थितियों में कर सकता है।

- यदि माल शीघ्र नष्ट होने वाली प्रकृति का हो।
- नये क्रेता के अच्छा अधिकार
- मूल अनुबंध का परित्याग।

- पुन: विक्रय अदत्त विक्रेता की इच्छा पर।

नीलामी द्वारा विक्रय

माल विक्रय के विभिन्न तरीकों में से एक तरीका नीलामी द्वारा माल बेचना है। नीलामी से तात्पर्य एक सार्वजनिक विक्रय है जिसमें इच्छुक क्रेता एक स्थान पर एकत्रित होकर बोली लगाते हैं जिसपर वह माल खरीदने के लिए तैयार हैं। मूल्य के लिए प्रस्ताव करने की 'बोली लगाना' और जो व्यक्ति यह प्रस्ताव करता है उेस 'बोली लगानेवाला'कहते हैं। माल का स्वामी जिस व्यक्ति को अपना माल बेचने के लिए नियुक्त करता है उसे 'निलामीकर्ता' कहते हैं। माल के स्वामी तथा नीलामीकर्ता में परस्पर प्रधान एवं एजेन्ट का संबंध होता है। नीलामी में सामान्यत: यह नियम है कि सबसे ऊँची बोली लगाने वाले को माल बेचा जाता है।

अत: 'नीलामी द्वारा विक्रय' सार्वजनिक विक्रय का वह स्वरूप है। जिसके अंतर्गत सबसे ऊँसी बोली लगानेवाले को माल का विक्रय किया जाता है।

नीलामी द्वारा विक्रय संबंधी नियम

नीलामी द्वारा विक्रय संबंधी नियम निम्नालिखित प्रकार से स्पष्ट किये गये है-

1. **माल का अनेक भागों में विक्रय** – यदि माल विक्रय के लिए अलग-अलग रखा जाता है तो प्रत्येक भाग का विक्रय एक अलग अनुबंध की विषय-वस्तु समझी जायेगी।
2. **विक्रय अनुबंध को पूरा करना-** नीलामी द्वारा विक्रय उस समय पूरा हो जाता है जब नीलामीकर्ता हथौड़े की चोट से अथवा किसी अन्य प्रचलित तरीके से उसका पूरा होना घोषित करता है और जब तक ऐसी घोषणा न कर दी जाय तब तक बोली लगाने वाला अपनी बोली वापस ले सकता है।
3. **विक्रेता द्वारा बोली** – बोली बोलने का अधिकार विक्रेता अथवा रखा जा सकता है। यदि ऐसा अधिकार सुरक्षित रखा गया हो, तो विक्रेता अथवा उसकी ओर से अन्य कोई व्यक्ति दी गई व्यवस्थाओं के अनुसार बोली बोल सकता है।
4. **विक्रेता द्वारा बोली बोलने की सूचना न देने पर-** यदि विक्रेता द्वारा बोली बोलने के अधिकार की सूचना नहीं दी गई हो, तो विक्रेता द्वारा स्वयं बोली बोलता अथवा उसके द्वारा इस कार्य के लिए किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त किया जाना अवैध होगा।
5. **आरक्षित मूल्य-** विक्रय किसी आरक्षित अथवा नियत मूल्य के अंतर्गत सूचित किया जा सकता है।
6. **बनावटी बोली-** नीलामी द्वारा विक्रयके दोड़ान यदि विक्रेता मूल्य की बढ़ाने के लिए बनावटी मूल्य का प्रयोग करता है, तो विक्रय क्रेता की इच्छा पर व्यर्थनीय होता है।

नीलामी द्वारा विक्रय में गर्भित आश्वासन –

निलामी द्वारा विक्रय में निम्नलिखित गर्भित आश्वासन होते हैं –

1. नीलामीकर्ता वस्तु के विक्रय का वैधानिक अधिकार रखता है।
2. नीलामीकर्ता वास्तविक स्वामी के अधिकार में दोष के प्रति अनभिज्ञ है।
3. क्रेता मूल्य के बदले में माल पर अधिकार प्राप्त कर लेगा।

नॉक आऊट (Knock Out) समझौता

बोली बोलने वाले व्यक्तियों के बीच ऐसा पारस्परिक समझौता जिसके द्वारा वे एक दूसरे के विरूद्ध बोली बोलने से अपने आपको विरत रखते हैं तथा इस प्रकार क्रय की गई वस्तु को परस्पर बाँटने का समझौता करते हैं, नॉक आऊट समझौता कहलाता है।

नीलामी द्वारा विक्रय में अन्य महत्वपूर्ण नियम

नीलामी द्वारा विक्रय में अन्य महत्वपूर्ण नियम निम्नलिखित हैं:

- **i.** **गलती से आरक्षित मूल्य से कम पर माल का विक्रय करने पर** – नीलामीकर्ता यदि गलती से आरक्षित या निर्धारित मूल्य से कम मूल्य पर नीलामी समाप्त कर देता है तो वह अधिकतम बोली लगाने वाले क्रेता को माल की सुपुर्दगी देने के लिए बाध्य नहीं है।
- **ii.** **क्रेताओं द्वारा मिलकर बोली लगाने पर** – यदि विक्रेता को क्षति पहुँचाने के उद्देश्य से कई क्रेता एक साथ मिलकर बोली लगाते हैं तो विक्रेता विक्रय को निरस्त कर सकता है।
- **iii.** **विक्रेता द्वारा अधिकार सुरक्षित रखा जाना** – विक्रेता यदि चाहे तो पहले से ही बोली लगाने का अधिकार सुरक्षित रख सकता है, लेकिन शर्त यह है कि उसने एक बोली लगायी हो। यदि वह एक से अधिक बोली लगाता है तो उसका मन्तव्य अपने हित की सुरक्षा करना नहीं हैं, बल्कि मूल्य बढ़ाना है और यह कपट है।

2.8 बोध प्रश्न

1. विक्रय अनुबंध के अंतर्गत 'माल' शब्द की परिभाषा किस प्रकार दी गई है ? माल के नष्ट होने का विक्रय अनुबंध पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
2. माल के विक्रय अनुबंध से आप क्या समझते हैं ? विक्रय तथा विक्रय के ठहराव में क्या अंतर है ?
3. विक्रय तथा विक्रय के ठहराव में अंतर बताइए। माल विक्रय का ठहराव विक्रय में कैसे परिणित हो जाता है ?

4. विक्रय अनुबंध क्या है ? विक्रय अनुबंध के लक्षणों का वर्णन कीजिए।
5. शर्त क्या है ? भारतीय वस्तु-विक्रय अधिनियम के अनुसार गर्भित शर्तों का उपयुक्त उदाहरणों सहित वर्णन कीजिए।
6. शर्त तथा आश्वासन में अंतर बताइए। एक वस्तु विक्रय अनुबंध में कौन-कौन सी गर्भित शर्तें हैं ?
7. 'क्रेता की सावधानी' से आप क्या समझते हैं ? इस नियम के अपवादों को स्पष्ट कीजिए।
8. निश्चित तथा अनिश्चित माल से क्या आशय है ? माल के विक्रय के अनुबंध में विक्रेता से क्रेता के पास माल का स्वामित्व व जोखिम कब हस्तांतरित होते हैं ?
9. निश्चित अथवा विशिष्ट माल के विक्रय की दशा में माल के स्वामित्व के हस्तांतरण के संबंध में नियमों की व्याख्या कीजिए।
10. अनिश्चित माल की दशा में क्रेता को संपत्ति का हस्तांतरण कैसे होता है ?
11. विक्रय अनुबंध के निष्पादन के संबंध में क्रेता तथा विक्रेता दोनों के अधिकारों एवं कर्तव्यों का वर्णन कीजिए।
12. वस्तु विक्रय अनुबंध में सुपुर्दगी की परिभाषा दीजिए तथा सुपुर्दगी से संबंधित नियमों की व्याख्या कीजिए।
13. 'माल की सुपुर्दगी' से आप क्या समझते हैं ? सुपुर्दगी के विभिन्न ढंग क्या हैं ? माल की गलत सुपुर्दगी की दशा में उत्पन्न होने वाले वैधानिक परिणामों की विवेचना कीजिए।
14. अदत्त विक्रेता की परिभाषा दीजिए । अदत्त विक्रेता के माल के प्रति क्या अधिकार होते हैं ? समझाइए।
15. अदत्त विक्रेता कौन होता है ? उसके द्वारा विक्रय किये गये माल के संबंध में उसके क्या अधिकार हैं ?
16. अदत्त विक्रेता से क्या आशय है ? क्या अदत्त विक्रेता उस माल को जोकि उसके अधिकार में है रोक सकता है ? यदि हाँ, तो किन परिस्थितियों में ? वह अपना विशेषाधिकार कब खो देता है ?
17. अदत्त विक्रेता कौन है ? क्रेता के प्रति व्यक्तिगत रूप से और माल के प्रति उसके क्या अधिकार हैं ?
18. किन दशाओं में माल को मार्ग में रोकने के अधिकार का उपयोग किया जा सकता है ? स्पष्ट कीजिए।
19. नीलामी द्वारा विक्रय से आप क्या समझते हैं ? नीलामी विक्रय से संबंधित नियमों की विवेचना कीजिए।

2.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- अग्रवाल, आर. सी. एवं अग्रवाल, संजय (2017), व्यापारिक सन्नियम, एस बी पी डी पब्लिकेशन्स, आगरा
- पाण्डेय एवं सिंह (2006), व्यापारिक नियम,एपसाइलन पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., कानपुर
- शुक्ला एवं सहाय (2001), व्यापारिक सन्नियम, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
- Kuchhal, M. C. & Kuchhal, Vivek (2012), Mercantile Law, Vikas Publishing House, New Delhi.

इकाई – I I I: भारतीय साझेदारी अधिनियम, 1932

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 भारतीय साझेदारी अधिनियम: एक परिचय
3.3 अवयस्क साझेदार
3.4 साझेदारों के आपसी संबंध
3.5 साझेदारी फर्म का समापन
3.6 सारांश
3.7 बोध प्रश्न
3.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- भारतीय साझेदारी अधिनियम को समझ सकेंगे।
- अवयस्क साझेदारों के अधिकारों एवं कर्तव्यों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- साझेदारी फर्म में साझेदारों के आपसी संबंध तथा साझेदारी फर्म का समापन की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

भारत में 1932 में साझेदारी अधिनियम पारित हुआ था। साझेदारी की गठन ऐसे समझौते का परिणाम है, जो दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच किसी ऐसे व्यापार के लाभ को परस्पर बांटने के लिये किया जाता है जो उन सभी के द्वारा या उनमें से किसी के द्वारा सभी की ओर संचालित हो। भारतीय साझेदारी अधिनियम, 1932 मूलरूप से अंग्रेजी साझेदारी अधिनियम 1890 पर आधारित हैं इस अधिनियम के लागू होने से पूर्व यह भारतीय अनुबंध अधिनियम 1872 का ही एक भाग माना जाता था। सन 1932 में जनवरी माह के सत्र में भारती संसद में भारतीय साझेदारी विधेयक प्रस्तुत किया गया था और यह अप्रैल, 1932 में अधिनियम बन गया जो। अक्टूबर, 1932 से क्रियाशील हुआ। वर्तमान भारतीय साझेदारी अधिनियम, 1932

में कुल 74 धाराएँ, 8 अध्याय तथा 1 अनुसूची हैं। भारतीय, यदि वे इस अधिनियम, 1872के समस्त प्रावधान, यदि वे इस अधिनियम के प्रतिकूल नहीं है, साझेदारी अधिनय, 1932 पर लागू होंगे।

साझेदारी अधिनियम में मुख्यत: साझेदारी के गठन, साझेदारी के अधिकार, कर्तव्य एवं दायित्वों तथा इसके समापन की प्रक्रिया आदि के संबंध में नियम दिये गये है।

अधिनियम का क्षेत्र – यह अधिनियम जम्मू व कश्मीर को छोड़कर शेष समस्त भारत में लागू होता है।

3.2 भारतीय साझेदारी अधिनियम: एक परिचय

साझेदारी की अवधारणा एवं निर्माण

अंग्रेजी साझेदारी अधिनियम, 1890 के अनुसार, साझेदारी लाभ की दृष्टि से मिलजुलकर व्यापार करने के लिए व्यक्तियों के मध्य पाया जानेवाला संबंध है।

भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 की धारा 4 के अनुसार,'' साझेदारी उन व्यक्तियों का पारस्परिक संबंध है जिन्होंने किसी ऐसे कारोबार के लाभ को आपस में बाँटने का ठहराव किया हो जिसे वह सब अथवा उन सबकी ओर से कार्यकरते हुए उनमें से कोई एक व्यक्ति द्वारा चलाया जाता हो।''

वे व्यक्ति जो एक-दूसरे के साथ साझेदारी कारोबार में सम्मिलित हुए है, व्यक्तिगत रूप से साझेदार तथा सामूहिक रूप से फर्म कहलाते हैं और जिस नाम से उनका कारोबार चलाया जाता है वह फर्म का नाम कहलाता है।

साझेदारी की विशेषताएँ

साझेदारी की निम्नलिखित विशेषताएँ है:

i. **दो या दो से अधिक व्यक्तियों का होना -** साझेदारी के लिए दो या दो से अधिक व्यक्तियों का हो परम आवश्यक हैं क्योंकि कोई भी अकेला व्यक्ति स्वयं का साझेदार नहीं हो सकता है यदि किसी संस्था में किसी साझेदार की मृत्यु अथवा दिवालिया होने के कारण साझेदारी की संख्या एक ही रह जाती हैं, तो साझेदारी का अनिवार्य रूप से समापन हो जायेगा।

ii. **ठहराव का होना -** अनुबंध के द्वारा ही साझेदारी का जन्म होता है अत: यह आवश्यक है कि साझेदारी के बीच ठहराव हो, क्योंकि साझेदारों का अनुबंध से संबंध है, स्थिति से नहीं।

iii. **कारोबार का होना -** साझेदारी के लिए किसी भी कारोगार का होना आवश्यक है। यदि बिना किसी कारोबार की दृष्टि से दो या दो से अधिक व्यक्ति आपस में समझौता करे तो उसे साझेदारी का समझौता नहीं कहेंगे।

iv. **लाभ कमाना तथा उसे आपस में बाँटना -** कोई भी कारोबार जो कल्याणकरने अथवास परोपकार की दृष्टि से किया जाता है, साझेदारों के वास्ते लाभ कमाने के लिए नहीं, साझेदारी नहीं हो सकती, क्योंकि साझेदारी का मूल उद्देश्य लाभ कमाना तथा उसे आपस में बाँटना होना चाहिए।

v. **संचालन सबके द्वार अथवा सबकी सहमति से किसी एक के द्वारा -** साझेदारी कारोबार का संचालन सबके द्वारा अथवा सभी साझेदारों की सहमति से किसी एक साझेदार के द्वारा किया जा सकता है। इस प्रकार सभी साझेदारों का सक्रिय रूप से साझेदारी कारोबार में भाग लेना आवश्यक नहीं होता है।

vi. **प्रत्येक साझेदार अपनी फर्म का एजेन्ट एवं स्वामी दोनों -** साझेदारी में प्रत्येक साझेदार अपनी फर्म का एजेन्ट होता है क्योंकि वह अपने कार्यो के द्वारा फार्म को बद्ध कर सकता है। किस भी साझेदार के द्वार किया गया कार्य फर्म द्वारा किया गया कार्य माना जाता है। साथ ही प्रत्येक साझेदार फर्म का स्वामी होता है, क्योंकि वह फर्म के दूसरे साझेदार के कार्य के प्रति स्वयं बद्ध होता है।

vii. **साझेदारों की अधिकतम संख्या -** भारतीय साझेदारी अधिनियम में साझेदारों की न्यूनतम संख्या का उल्लेख किया गया है परन्तु अधिकतम संख्या का कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया है।

viii. **असीमित दायित्व का होना -** साझेदारी में प्रत्येक साझेदार का दायित्व असीमित होता है। यह दायित्व व्यक्तिगत तथा समूहिक दोनों ही स्थितियों में होता है।

ix. **फर्म का निश्चित नाम -** साझेदार जिस नाम से कारोबार करते हैं वह फर्म का नाम कहलाता है। किसी भी साझेदारी फर्म का निश्चित नाम होना अनिवार्य है।

x. **केवल व्यक्ति ही साझेदार -** किसी भी साझेदारी फर्म में केवल व्यक्ति ही साझेदार बन सकते हैं। कोई भी समामेलित संस्था जैसे- कम्पनी, निगम, फर्म आदि साझेदार नहीं बन सकते है।

xi. **पूँजी लगाना अनिवार्य नहीं -** साझेदारी के कारोबार में प्रत्येक साझेदार द्वारा पूँजी लगाना अनिवार्य नहीं होता है। साधारणतया प्रत्येक कुछ व्यक्ति अपनी व्यावसायिक कुशलता के कारण साझेदार बन जाते है।

xii. **हानि में भी भाग लेना आवश्यक -** जिस अनुपात में साझेदार फर्म के लाभों में भाग लेते हैं किसी विपरीत अनुबंध के अभावमें उसी अनुपात में फर्म के हानियों में भी सभी साझेदारों को भाग लेना आवश्यक हाता है।

साझेदारोंकी विद्यमानता का निर्णय

कभी-कभी दो या दो से अधिक व्यक्तियों द्वारा सामूहिक कारोबार होते देखकर यह निर्णय करना अत्यन्त कठिन हो जाता है कि उनके बीच साझेदारी विद्यमान है या नहीं। किसी साझेदारी की विद्यमानता का निर्णय निम्न बातों के आधार पर किया जा सकता है:-

1. किसी संपत्ति से होने वाले लाभ अथवा सकल आय में तथा उस संपत्ति में संयुक्त अथवा सामान्य हित रखनेवाले व्यक्तियों को साझेदार नहीं बना देता है।
2. किसी व्यक्ति द्वारा केवल किसी कारोबार के लाभ में से एक भाग की प्राप्ति अथवा ऐसे भुगतान की प्राप्ति जो लाभ कमाने पर संभावित हो अथवा जो कारोबार से पैदा किये हुए लाभ के अनुसार बदलता हो, उसे कारोबार चलाने वाले व्यक्तियों के साथ साझेदारनहीं बना देता।

   निम्नलिखित परिस्थितियों में एक व्यक्ति जो कि कारोबार के लाभ में हिस्सा पाता है, साझेदार नहीं बन सकता:

   i) ऋणदाता द्वारा लाभ लेना।

   ii) कर्मचारी अथवा एजेन्ट द्वारा लाभ में हिस्सा पाना।

   iii) मृतक साझेदार की विधवा अथवा बच्चों द्वारा लाभों में से हिस्सा प्राप्त करना।

   iv) ख्याति के विक्रता द्वारा लाभों में हिस्सा पाना।

   v) संयुक्त हिन्दू परिवार की दशा में।
3. **साझेदार को सहस्वामित्व से भिन्न समझना चाहिए -** सह-स्वामित्व का अर्थ किसी वस्तु के एक से अधिक स्वामियों से है, जबकि साझेदारी का अर्थ किसी कारोबार के लाभ को एक निश्चित अनुपात में बाँटने के लिए एक से अधिक व्यक्तियों का मिलान है।
4. **फर्म के प्रबंधन एवं संचान में भाग लेना -** साझेदारी में प्रत्येक साझेदार फर्म के प्रबंधन एवं संचालन में भाग ले सकता है।
5. प्रत्येक साझेदार फर्म का स्वामी व एजेन्ट होता है साझेदारी की सबसे प्रमुख विशेषता है कि प्रत्येक साझेदार फर्म का एजेन्ट व स्वामी दोनों ही होता है । एजेन्ट के रूप में वह अपने कार्यों से सभी शेष साझेदारों को बद्धकरता है तथा स्वामी के रूप में अन्य साझेदारों के द्वारा किये गये किसी भी कार्य से स्वयं बद्ध होता है।
6. **साझेदारी का निर्माण अनुबंध से होना, स्थिति से नहीं -** साझेदारी का निर्माण अनुबंधसे होता है, स्थिति से नहीं ।
7. **साझेदारी अनुबंध में समस्त आवश्यक लक्षणों का समावेश होना -** साझेदारी अनुबंध में एक वैधानिक अनुबंध के सभी आवश्यक लक्षण होना चाहिए। जैसे साझेदारों की स्वतंत्र सहमति,अनुबंध करने की क्षमता वैधानिक प्रतिफल, आदि।
8. **फर्म की पुस्तकों एवं खातों तक पहूँच -** साझेदारी में प्रत्येक साझेदार को यह अधिकार होता है कि वह फर्म की कोई भी पुस्तक एवं खाताबही देख सके, जाँच कर सके अथवा उसकी प्रतिलिपि ले सके।
9. **वैधानिक कारोबार -** साझेदारी का अनुबंध किसी वैधानिक कारोबार के लिए होना चाहिएजो राजनियम के विरूद्ध न हो।

10. **साझेदारों की संख्या -** साझेदारों में साझेदारों की संख्या कम से कम दो तथा अधिकतम बैंकिंग व्यवसाय की दशा में 10 और दूसरे प्रकार के व्यवसाय की दशा में 20 से अधिक नहीं होना चाहिए।

साझेदारी के प्रकार

साझेदारी मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रकार की होती है:-

1. **ऐच्छिक साझेदारी -** साझेदारी के अनुबंध में यदि साझेदारी की अवधि संबंधी कोई जानकारी नहीं दी गई हो तो ऐसी साझेदारी को ऐच्छिक साझेदारी कहा जाता है। इस प्रकार की साझेदारी साझेदारों की इच्छा के अनुसारी किसी भी व्यवसाय को अनिश्चित समय तक करने के लिए प्रारंभ की जा सकती है तथा उस सबकी अथवा किसी एक साझेदार की इच्छा पर कभी भी समाप्त की जा सकती है।
2. **विशिष्ट साझेदारी -** किसी भी विशेष काय्र अथवा व्यवसा के लिए किसी अन्य व्यक्ति के साथ साझेदारी हो सकती है और ऐसी साझेदारी को विशिष्ट साझेदारी कहा जाता है।
3. **निश्चित समय के लिए साझेदारी -** ऐसी साझेदारी किसी निश्चित समय के लिए होती है तथा समय की समाप्ति के उपरांत साझेदारी समाप्त हो जाती है।
4. **सीमित साझेदारी -** जिस साझेदारी संस्था में कुछ साझेदारों का दायित्व उनके द्वारा दी गई पूँजी की सीमा तक ही सीमित होता है, उसे सीमित साझेदारी कहते हैं। इस प्रकार की साझेदारी का उद्गम उन व्यक्तियों को प्रोत्साहन देने के लिए हुआ है जो असीमित दायित्व स्वीकार करना नहीं चाहते हैं।
5. **अवैध साझेदारी -** भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 23 के अनुसार कोई भी साझेदारी जो किसी अवैधानिक व्यवसाय के लिए की गई हो अथवा जिसका उद्देश्य गैर-कानूनी हो, व्यर्थ होती है।

इस प्रकार की कोई भी साझेदारी निम्नलिखित परिस्थितियों में अवैध होती है:

i) जिसके निर्माण का उद्देश्य अवैधानिक हो,
ii) जिसका व्यवसाय जन-नीति अथवा अंतरराष्ट्रीय नीति के विरूद्ध हो,
iii) जिस साझेदारी में शत्रु-राष्ट्र का व्यक्ति साझेदार हो,
iv) बैंकिंग व्यवसाय की दशा में 10 तथा साधारण व्यवसाय में 10 से अधिक साझेदारों की संख्या हो।

विद्यमानता के अनुसार साझेदारों के प्रकार

विद्यमानता के अनुसार प्रत्येक साझेदार के समान अधिकार तथा दायित्व होते हैं, किन्तु व्यवहार में इस प्र कार की स्थिति बहुत कम देखने का मिलती है। प्रत्येक मनुष्य की योग्यता, अनुभव तथा उपयोगिता

अलग-अलग होती है। साझेदारी संस्था में कार्य का विभाजन साझेदारों की योग्यता, अनुबंध तथा उपयोगिता के अनुसार होने के कारण उनके अधिकारों कर्तव्यों तथा दायित्वों में विभिन्नता का आना स्वाभाविक ही है।

सामान्य रूप से साझेदारों के प्रकार निम्नलिखित होते है:

1. **सामान्य या सक्रिय साझेदार -** यह वह व्यक्ति होता है जो साझेदारी के समस्त कार्यों में पूर्ण रूप से भाग लेता है। यह व्यवसाय के प्रबंधन एवं संचालन में सक्रिय भाग लेता है तथा अपने कार्यों से फर्म को बांध सकता है।
2. **सीमित सोझेदार -** यह वह व्यक्ति होता है जिसका दायित्व सीमित होता है। यह दायित्व उसके द्वारा व्यवसाय में लगाई गई पूँजी तक ही सीमित होती हैं। ऐसी साझेदारी में कम से कम एक समान्य साझेदार होना परम आवश्यक होता है। सीमित साझेदार संस्था के एजेन्ट के रूप में कार्य नहीं करते हैं क्योंकिवे व्यापार के संचालन में सक्रिय भाग नहीं ले सकते।
3. **निष्क्रिय साझेदार -** यह वह व्यक्ति होता है जो व्यापार में पूँजी लगाता है, लाभ-हानि में भागी होता है, परन्तु व्यापार के प्रबंधन एवं संचालन में कोई सक्रिय भाग नहीं लेता। इस संबंधन में यह महत्वपूर्ण है कि निष्क्रिय साझेदार भी अन्य पक्षों के प्रति अपने तथा अपने साथियों के कार्य के लिए उत्तरदायी होगा।
4. **नाममात्र का साझेदार -** यह वह व्यक्ति होता है जो साझेदारी के व्यवसाय में न तो कोई पूँजी लगाता है और न कोई काम ही करता है, परन्तु अपने नाम और साख का फर्म को प्रत्येक करने देता है। ऐसा व्यक्ति भी अन्य पक्षों के प्रति साझेदार की तरह उत्तरदायी होगा।
5. **अवयस्क साझेदार -** कोई भी व्यक्ति जिसकी आयु 18 वर्ष से कम हो अथवा कोर्ट ऑफ वार्ड्स अधिनियम के अनुसार यदि किसी का संरक्षक न्यायालय द्वारा नियुक्त किया जाता है तो उसकी उम्र 21 वर्ष से कम होने पर वह अवयस्क कहलाता है। साझेदारी अधिनियमके अनुसार एक अवयस्क को पूर्ण रूप से साझेदार नहीं बनाया जा सकताहै परन्तु सभी साझेदारों की सहमति से उसको व्यवसाय के लाभ में सम्मिलित किया जा सकता है।
6. **केवल लाभ में भागीदार -** ऐसा साझेदार जो अन्य साझेदारों की स्वीकृति से फर्म के लिए थोड़ी पूँजी देते हैं ओर केवल लाभों में सम्मिलित होते है, हानि में नहीं केवल लाभ में भागीदार साझेदार कहलाते है।
7. **आगुन्तुक साझेदार -** ऐसा साझेदार जो अन्य साझेदारों की सहमति से स्थायी रूप से साझेदारी में प्रवेश करता है, उसे आगन्तुक साझेदार कहते है। वह व्यक्ति साधारणतथा पुराने साझेदारों को उनकी बनायी हुई प्रतिष्ठा तथा पुरानी सेवाओं के लिए प्रब्याजि के रूप में धनराशि देता है और समझौते के अनुसार पूँजी लगाता है, एवं लाभ-हानि में हिस्सेदार होता है।

8. **बाहर जानेवाला साझेदार -** सक्रिय अथवा निष्क्रिय दोनों ही प्रकार के साझेदार जिस समय व्यापार से अपने संबंधोंका विच्छेदन करके चला जाता है तो उसे बाहर जानेवाला साझेदार कहा जाता है। भावी दायित्वों से मुक्त होने के लिए उसको अपने अलग होने की उचित सार्वजनिक घोषणा करनी पड़ती है।

3.3 अवयस्क साझेदार

भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 30 (1) के अंतर्गतअवयस्क की स्थिति निम्न शब्दों में स्पष्ट की गई है- ‘‘ कोई व्यक्ति जो संबंधित राजनियम के अनुसार अवयस्क है, किसी भी फर्म में साझेदार नहीं बन सकता है, किन्तु वह समस्त साझेदारों की सहमति से साझेदारी के लोभों में सम्मिलित किया जा सकता है।’’

अवयस्क साझेदार के अधिकार (अवयस्कता की स्थिति में)

i. **प्रवेश पाना -** एक अवयस्क फर्म के सभी साझेदारों की सहमति से फर्म में प्रवेश पाने का अधिकारी है। यदि सभी साझेदार उसे फर्म में प्रवेश देने के एिल सहमत से जाते हैं तो भी उसे यह अधिकार है कि वह साझेदारी फर्म में सम्मिलित होना स्वीकार करे अथवा न करे।

ii. **लाभो में हिस्सा प्राप्त करना -** एक अवयस्क फर्म के केवल लाभों में से पूर्व निश्चित हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार है।

iii. **संपत्ति में से हिस्सा प्राप्त करना -** एक अवयस्क साझेदार संपत्ति में से उतना हिस्सा प्राप्त करने का अधिकारी है जितना अनुबंधन के अनुसार पहले निश्चित किया गया हो।

iv. **लेख-पुस्तकों को देखना, निरीक्षण करना एवं प्रतिलिपि लेना -** अवयस्क फर्म की लेख पुस्तकोंको देखने निरीक्षण करने एवं उनकी प्रतिलिपि लेने का अधिकारी है, परन्तु यह अधिकार गोपनीय पुस्तकों के संबंधन में प्राप्त नहीं है।

v. **अन्य साझेदारों पर वाद प्रस्तुत करना -** एक अवयस्क फर्म से अपना संबंधन विच्छेद करने पर फर्म व अन्य साझेदारोंके विरूद्ध फर्म के लाभों एवं संपत्ति में से अपना हिस्सा प्राप्त करने के लिए वाद प्रस्तुत करने का अधिकारी है।

vi. **फर्म से अलग होना -** एक अवयस्क साझेदार फर्म से कभी भी अलग हो सकता है और फर्म में अपनी संपत्ति एवं लाभों में हिस्से के लिए फर्म एवं साझेदारों के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है।

vii. **हानियों में भागिता नहीं -** एक अवयस्क साझेदार केवल लाभों में हिस्सा पाने का अधिकारी है, हानियों में नहीं।

viii. **वयस्क होने पर अधिकार -** ऐसे अवयस्क साझेदार के वयस्क होने से अथवा इस बात की जानकारी होने से कि उसे साझेदारी के लाभों में शामिल किया जा चुका था, इसमें से जो भी तिथि बाद में पड़े

उसके छः महीने के भीतर ही किसी भी समय इस बात की सार्वजनिक सूचना देना आवश्यक है कि उसने साझेदार बनना अथवा न बनना निश्चित कर लिया है।

अवयस्क साझेदार के कर्तव्य (अवयस्कता की स्थिति में)

i. **लाभ एवं संपत्ति तक सीमित दायित्व -** अवयस्क साझेदार का दायित्व फर्म में उसके लाभ तथा संपत्ति में हिस्से तक ही सीमित रहता है।

ii. **व्यक्तिगत दायित्व नहीं -** एक अवयस्क साझेदार का कोई व्यक्तिगत दायित्व नहीं होता है। उसे फर्म के ऋणें एवं दायित्वों के प्रति भी उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकताहै।

iii. **दिवालिया घोषित नहीं -** एक अवयस्क साझेदार को दिवालिया घोषित नहीं किया जा सकता है। यदि फर्म को दिवालिया घोषित नहीं किया जा सकता है। यदि फर्म को दिवालिया घोषित किया जाता है तो फर्म में लगी उसकी संपत्ति एवं लाभ का हिस्सा राजकीय प्रापक को हस्तांतरित हो जाता है।

iv. **वयस्क होने पर सार्वजनिक सूचना देनो का दायित्व -** एक वयस्क अपनी वयस्कता प्राप्त करने अथवा साझेदारी के लाभों में सम्मिलित होने के 6 महीनों मे पश्चात्, इन दोनों में से जो भी तिथि बाद में हो, फर्म में साझेदार बनने अथवा न बनने के संबंध में सार्वजनिक सूचना देनेके लिए उत्तरदायी है।

अवयस्क के वयस्क होने के बाद की स्थिति

एक अवयस्क साझेदार के वयस्क होने पर निम्नलिखित दो में से एक स्थितिबन सकती है:

1. **यदि वह फर्ममें साझेदार बनना स्वीकार कर लेता है।**

अ) **अधिकार -** यदि एक अवयस्क साझेदार वयस्क होने पर फर्म में साझेदार बनना स्वीकार कर लेता हे तो उनके निम्नलिखित अधिकार होते है:

i. **लाभों में हिस्सा -** वह फर्म के लाभों में पूर्ववत् हिस्सा प्राप्त करता रहेगा।

ii. **संपत्ति में हिस्सा -** उसका फर्म की संपत्ति में हिस्सा वहीं रहेगा जो उसकी अवयस्कता की स्थिति में था।

iii. **फर्म की गोपनीय पुस्तकों तक पहूँच -** वह अन्य साझेदारों की भांति फर्म की गोपनीय पुस्तकों को देखने का अधिकारी हो जायेगा।

iv. **अन्य सभी अधिकार -** उसे वह समस्त अधिकार प्राप्त हो जायेंगे जो एक सामान्य साझेदार को प्राप्त होते हैं।

ब) दायित्व - यदि अवयस्क साझेदार वयस्क होन पर फर्म में साझेदार बनना स्वीकार कर लेता है, तो उसके निम्नलिखित दायित्व होंगे:

i. **समस्त पूर्व कार्यों के लिए दायित्वों -** यदि अवयस्क साझेदार वयस्क होनेपर साझेदार बनना स्वीकार करता है तो फमै के समस्त कार्यों व व्यवहारों के लिए अन्य पक्षोंकारों के प्रति उस तिथि से उत्तरदायी माना जायेगा जिस तिथि से वह साझेदारी के लाभो में शामिल किया गया था।

ii. **बाद के कार्योंके लिए दायित्व -** यदि एक अवयस्क साझेदार वयस्क होने पर फर्म का साझेदार बनता है तो फर्म का साझेदार बनने के पश्चात वह सभी कार्यों के लिए सामान्य साझेदार की भांति उत्तरदायी होगा।

iii. **व्यक्तिगत रूप में दायित्व -** यदि वह वयस्क होने पर साझेदार बनना स्वीकार करता है तो वह फर्म के समस्त कार्यों व व्यवहारों के लिए व्यक्तिगत रूप में अन्य पक्षकारों के प्रति उस तिथि से उत्तरदायी हो जाता है जिस तिथि से वह साझेदारी के लाभों में सम्मिलित किया गया था।

iv. **अन्य दायित्व -** एसे साझेदार के उपरोक्त दायित्वों के अतिरिक्त सामान्य साझेदार की भाँति शेष सभी दायित्व भी होते है।

2. यदि वह फर्म में साझेदार बनना स्वीकार नहीं करता है।

यदि अवयस्क साझेदार वयस्क होने पर साझेदार बनना स्वीकार नहीं करता है तो उसके अधिकार और दायित्व निम्नलिखित होंगे।

i. उसके अधिकार और दायित्व उसकी सार्वजनिक सूचना देने की तिथि तक वे ही रहेंगे जो कि अवयस्क के होते हैं।

ii. वह फर्म के उन कार्यो के लिए उत्तरदायी नहीं होगा, जो सूचना देने के बाद किये गये हों।

iii. उसे साझेदारों पर संपत्ति तथा लाभो में अपने भाग को प्राप्त करने के लिए वाद प्रस्तुत करने का अधिकर मिल जायेगा।

नये साझेदार का प्रवेश (आगंतुक साझेदार)

साझेदारों के अनुबंध के अनुसार तथा अधिनियम की धारी 30 के अनुबंध के अनुसार समस्त विद्यमान साझेदारों की सहमति के कोई भी नया व्यक्ति फर्म में साझेदार नहीं बनाया जा सकता है।

अधिकार एवं दायित्व

i. एक नया साझेदार, साझेदार बनने के बाद किये गये समस्त कार्यो के लिए उत्तरदायी होगा।

ii. साझेदारी समझौते के अभाव में नये साझेदार के वही अधिकार और कर्तव्य होंगे जो अन्य सामान्य साझेदार के हैं।

iii. यदि नये साझेदार के साथ कोई नया समझौता कर लिया गया है तो उसके अधिका, कर्तव्य एवं दायित्व नये समझौते के अनुसार निश्चित होंगे।

3.4 साझेदारों के आपसी संबंध

साझेदारी संलेख अथवा साझेदारी के आपसी संबंध

साझेदारी संलेख से आशय एवं आवश्यकता

साझेदारी संलेख से आशय ऐसे दस्तावेज से है जिसमें साझेदारों के परस्पर के अधिकारों एवं कर्तव्यों का स्पष्ट रूप में उल्लेख होता है। ऐसी दशा में उनके अधिकार एवं कर्तव्य ऐसे समझौते द्वारा ही नियंत्रित होते हैं। जगत मित्ता यहगल बनाम कैलाश चन्द्र सहगल के विवाद में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया था कि साझेदारों के अधिकार एवं कर्तव्य उनके द्वारा किये गए संलेख के द्वारा निर्धारित होते है। यिद साझेदारी संलेख में उनके अधिकारों एवं कर्तव्यों का उल्लेख न हो, तो इसकेक अभाव में लागू हाने वाले कानून लागू होते हैं।

साझेदारी अनुबंधपर आधारित होती है, इसलिए साझेदारों के अधिकार, कर्तव्य एवं दायित्व उनके परस्पर के अनुबंध पर निर्भर रहते हैं। यह लिखित अथवा मौखिकहो सकता है। परन्तु मौखिक समझौते को आपस में मतभेद होने पर सिद्ध करना मुश्किल होता है। शुरू में जब साझेदारी की स्थापना होती है तब साझेदारों में ऊँची भावनाएं होती है। समय बीतने पर वह प्रेम एवं अच्छी भावनाएं धीर-धीर लोप होने लगती है। इसलिए यह वाछनीय है कि व्यापार प्रारंभ करने से पहले एक लिखित समझौता कर लिया जाय। इसमें वे समस्त शर्ते व नियम लिखे रहने चाहिए जो व्यवसाय को सफलतापूर्वक चलाने के लिए साझेदार निश्चित करते हैं। इस पर सभी साझेदारों के हस्ताक्षर होने के साथ-साथ मुद्रांक लगाना अत्यंत आवश्यक है।

साझेदारी संलेख में दी जानेवाली बातें

i. **फर्म का नाम तथा पता -** साझेदारी संलेख में साझेदारी फर्म का पूरा नाम एवं पता लिखा जाना चाहिए।

ii. **साझेदारों के नाम व पते -** साझेदारी संलेख में सभी साझेदारों के पूरे नाम व पते लिखे रहने चाहिए।

iii. **व्यापार का क्षेत्र व प्रकृति -** साझेदारी समझौते में यह लिख होना चहिए कि व्यापार क्षेत्र स्थानीय, राज्यीय, राष्ट्रीय अथवा अंतरराष्ट्रीय है। यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि व्यापार किस प्रका का होगा किस वस्तु में किया जायेगा तथा उसकी क्या-क्या सीमाएं होंगी।

iv. **साझेदारी की अवधि -** साझेदारी समझौते में यह उल्लेख होना चाहिए कि साझेदारी की स्थापना किसी निश्चित समय अथवा किसी कार्य को पूरा करनेके लिए कि गई है या ऐच्छिक साझेदारी है।

v. **साझेदारों द्वारा दी जानेवाली पूँजी -** कौन साझेदार कितनी पूँजी लगायेगा, उनकी पूँजी का क्या अनुपात होगा, इसका भी स्पष्ट उल्लेख साझेदारी समझौते में होना चाहिए।

vi. **लाभ बांटने का अनुपात -** साझेदारों के बीच लाभ के विभाजन के अनुपात का उल्लेख भी साझेदारी संलेख में होना चाहिए। यह आवश्यक नहीं कि जिस अनुपात में साझेदारों ने पूँजी लगाई हो उसी अनुपात में लाभों का विभाजन हो। इसका अनुपात उनकी योग्यता, अनुभव पूँजी लगाने की शक्ति आदि के अनुसार किया जाना चाहिए।

vii. **साझेदारों द्वारा ऋण देना व लेना -** साझेदारी संलेख में यह भी उल्लेख होना चाहिए कि क्या आवश्यक पड़ने पर साझेदार ऋण दे सकता है या ले सकता है? यदि हाँ तो किस सीमा तक तथा उस पर ब्याज की दर क्या होगी।

viii. **साझेदारों का कमीशन एवं वेतन -** सभी साझेदार कारोबार में समान रूप में समय नहीं दे सकते, अत: जो साझेदार उसमें अपना सारा समय दे सकते है, क्या उनको अतिरिक्त परिश्रमिक दिया जायेगा?

ix. **आहरण तथा उसपर ब्याज -** क्या निजी आवश्यकता के लिए साझेदार फर्म से धन ले सकते है? यदि हाँ तो आहरण की मात्रा, अवधि तथा ग्याज की दर का उल्लेख साझेदारी संलेख में होना चाहिए।

x. **खातों का नियमन व उनका अंकेक्षण -** लेखा पुस्तकों को रखने का ढ़ंग, उसकी समयिक जाँज तथा अंतिम खातों को बनाने का ढ़ंग, आदि का पूर्ण विवरण साझेदारी संलेख में होना चाहिए।

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित विवरणें का भी साझेदारी संलेख में होना आवश्यक है:

xi. अधिकार तथा नियंत्रण

xii. साझेदारों के कर्तव्य

xiii. व्यावसायिक ख्याति

xiv. व्यावसायिक ख्याति

xv. साझेदारी का अंत होना

xvi. साझेदार की मृत्यु तथा उसके वैद्य उत्तराधिकारी

xvii. साझेदारी से संबंधर विच्छेद

xviii. बीमा व उसका विभाजन

xix. मध्यस्थ वाक्य

साझेदारों के आपसी संबंध

साझेदारों के आपसी संबंध समझौते द्वारा तय किये जाते हैं। यह समझौते लिखित अथवा मौखिक हो सकता है, किन्तु हर दशा में यह भारतीय अनुबंधन अधिनियम की धारा 23 के अनुसार होना चाहिए। यदि साझेदारों के बीच कोई स्पष्ट समझौता न हो तो उनके कर्तव्य, अधिकार, दायित्व तथा झगड़े आदि साझेदारी

अधिनियम की धारएँ 9-17 के अंतर्गत दिए हुए नियमों के अनुसार तय किये जायेंगे। वे नियम निम्नलिखित हैं:

i. **कारोबार के संचालन में भाग लेने का अधिकार -**

ii. **अपने कर्तव्यों को श्रमपूर्वक करना -** प्रत्येक साझेदार को कारोबार के संचालन में अपने कर्तव्यों को श्रमपूर्वक करना चाहिए।

iii. **सम्मति प्रकट करने का अधिकार -** कारोबारसे संबंधित किसी साधारण विषय पर मतभेद होने की दशा में फैसला साझेदारों के बहुतमतसे तय किया जा सकता है और फैसला तय होने से पहले प्रत्येक साझेदार का यह अधिकार होता है कि वह अपनी सम्मति प्रकट कर सके।

iv. **बाहियों का निरीक्षण करने का अधिकार -** प्रत्येक साझेदार को फर्म की बहियों तक पहूँचने तथा उसके निरीक्षण्पा करने एवं उसका प्रतिलिपि लेने का अधिकार है।

v. **बिना पारिश्रमिक के कार्य -** किसी भी साझेदार को कारोबार के संचालन में भाग लेने के लिए पारिश्रमिक पाने का अधिकार नहीं है।

vi. **लाभ-हानि का समान विभाजन -** साझेदारों के बीच व्यवसाय के संचालन से होनेवाले लाभ एवं हानि का विभाजन समान अनुपात में किया जाता है।

vii. **पूँजी पर ब्याज नहीं -** किसी भी साझेदार को पूँजी पर ब्याज पाने का अधिकार नहीं होता है। यदि साझेदारी संलेख में पूँजी पर ब्याज पाने का समझौता हुआ हो तो यह ब्याज केवल फर्म के लाभों में से दिया जा सकता है।

viii. **अग्रिम धन पर ब्याज -** यदि कोई साझेदार कारोबार के कार्य में अपनी पूँजी से अतिरिक्त धन लगाता है तो वह इस अतिरिक्त धन पर ब्याज पाने का अधिकारी होता है।

ix. **क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार -** यदि किसी साझेदार को फर्म के उचित संचालनमें तथा फर्म को किसी अकस्मात संकट से बचाने के लिए कुछ भुगतान करना पड़ा हो अथवा उसने कुछ दायित्व स्वीकार किया हो, तो फर्म उसकी क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी है।

x. **जानबूझकर की गई लापरवाही के लिए क्षतिपूर्ति का दायित्व -** यदि कोई साझेदार जानबूझकर कोई लापरवाही करता है जिसके फलस्वरूप फर्म को कोई हानि उठानी पड़ती है, तो वह साझेदार ऐसी हानि की क्षतिपूर्ति करने के लिए बाध्य है।

xi. **फर्म की संपत्ति -** निम्नलिखित संपत्ति को फर्म की संपत्ति समझा जाता है:

- ऐसी सभी संपत्ति जो व्यापार के प्रारंभ में प्राप्त की गई थी।
- फर्म के धन से प्राप्त की गई संपत्ति।
- करोबार की ख्याति।

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित भी सामझौते के अभाव में लागू होने वाले नियम है:

xii. फर्म की संपत्ति का उपयोग।
xiii. निजी लाभ के प्रति हिसाब देना।
xiv. प्रतिस्पर्धात्मक कारोबार से प्राप्त लाभ का हिसब देना।
xv. फर्म की बनावट में परिवर्तन होन पर।
xvi. निश्चित अवधि के समाप्त होने पर भी कारोबार चालू रखने की दशा में।
xvii. अतिरिक्त कार्य करने की दशा में।
xviii. किसी साझेदार की मृत्यु हो जाने पर।
xix. एक-दूसरे के प्रति न्यायोंचित व्यवहार तथा वफादारी।

साझेदारी का पंजीयन (रजिस्ट्रेशन)

क्या साझेदारी का पंजीयन कराना अनिवार्य है?

भारतीय साझेदारी अधिनियसम, 1932 के अनुसार, साझेदारी का पंजीयन कराना अनिवार्य न होकर एच्छिक है, लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से साझेदारी का पंजीयन करान आवश्यक है क्योंकि पंजीयन न कराने से साझेदारी को कुछ गंभीर असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। साझेदारी के पंजीयन संबंधी नियम 1 अक्टूबर 1933 से भारत में लागू किये गये हैं। इस कार्य हेतु प्रत्येक राज्य में एक-एक राजिस्ट्रार की नियुक्ति की गई हैं जिसे रजिस्ट्रार ऑफ फर्म्स कहते हैं।

पंजीयन कराने की विधि

जब कोई साझेदारी फर्म अपना रजिस्ट्रेशन कराना चाहती है तो उसे अपने राज्य के रजिस्ट्रार ऑफ फर्म्स के पास निर्धारित शुल्क सहित निम्नलिखित विवरण कार्यालय में उपलब्ध निश्चित फॉर्म पर लिखकर भेजना चाहिए:

1. फर्म का नाम
2. फर्म का स्थान
3. अन्य स्थान जहाँ पर फर्म कारोबार करती है।
4. वह तिथि जब प्रत्येक साझेदार फर्म में सम्मिलित हुआ
5. सभी साझेदारों के पूरे नाम व स्थायी पते
6. फर्म की अवधि सभी साझेदारों अथवा उनके अधिकृत एजेन्टों के हस्ताक्षर।

फर्म के रजिस्टर में प्रविष्टि एवं प्रमाण-पत्रका निर्गमन:-

जब रजिस्ट्रार पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो जाता है कि आवश्यक व्यवस्थाओं का पूर्ण रूप से पालन किया गया है, तो वह उस विवरण को फर्मों के रजिस्टर में लिख लेगा और इस प्रकार विवरण को फाइल कर देगा बाद में इसके लिए एक प्रमाण-पत्र निर्गमित किया जाता है। इस प्रकार, साझेदारी (फर्म) का पंजीयन किया जाता है।

रजिस्ट्रेशन के पश्चात परिवर्तनों की सूचना

एक रजिस्टर्ड फर्म को निम्नलिखित परिवर्तनों की सूचना नियत शुल्क के साथ रजिस्ट्रार के पास अवश्यक भेजनी चाहिए:

1. रजिस्टर्ड किये गये फर्म के नाम या मुख्य स्थान में परिवर्तन हो।
2. जब फर्म किसी स्थान पर अपना कारोबार बंद करे अथवा किसी नये स्थान पर कारोबार आरंभ करे।
3. जब फर्म के कारोबार के नाम व स्थायी पते में परिवर्तन हो।
4. जब फर्म की बनावट में कोई परिर्वतन हो।
5. जब अवयस्क साझेदार लाभ के लिए सम्मिलित किया गया हो, वयस्क होने पर उस फर्म का साझेदार होना निश्चित करे अथवा न करे।

गलतियों का सुधार

फर्म के सी रजिस्टर में गलती सुधारने का अधिकार रजिस्ट्रार को है और वह किसी भी साझेदार के अनुरोध पर गलती सुधार सकता है।

इसी प्रकार न्यायालय किसी भी रजिस्टर्ड फर्म के संबंध में अपना निर्णय देते समय रजिस्ट्रार को फर्मों के रजिस्ट्रार में अपने फैसले के आधार पर सुधार करने का आदेश दे सकता है तथा रजिस्ट्रार को इसी आदेश के अनुसार सुधर करना होगा।

पंजीयन न कराने का प्रभाव

फर्म का पंजीयन न कराने से निम्नलिखित असुविधाएँ अथवा अयोग्यताएँ होती है:

1. **कोई भी साझेदार अन्य साझेदारों के प्रति वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता -** जब तक फर्म का पंजीयन न हुआ हो और वाद प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति का नाम फर्मों के रजिस्टर में साझेदार के रूप में न लिखा हो तब तक वह व्यक्ति या उसका प्रतिनिधि फर्म के अन्य साझेदारों के प्रति वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है।
2. **फर्म भी किसी साझेदार के विरूद्ध वाद प्रस्तुत नहीं कर सकती -** जब तक फर्म का पंजीयन न हुआ हो तब तक फर्म किसी भी साझेदार के विरूद्ध वाद प्रस्तुत नहीं कर सकती।

3. **कोई भी साझेदार फर्म के विरूद्ध वाद प्रस्तुत नही कर सकता** – जब तक फर्म का पंजीयन न हुआ हो तब तक कोई भी साझेदार फर्म के विरूद्ध वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता
4. **फर्म अन्य पक्षकारों के विरूद्ध वाद प्रस्तुत नहीं कर सकती** – यदि फर्म का पंजीयन नहीं कराया गया है तो फर्म किसी अन्य पक्षकार के विरूद वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है।
5. **अन्य पक्षकार फर्म के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकते है -** फर्म के पंजीयन न होने से अन्य पक्षकारो के अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। अत: वे फर्म के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकते हैं।

पंजीयन के लाभ

फर्म के पंजीयन हो जाने से निम्नलिखित लाभ होते हैं:

1. **फर्म को लाभ -** फर्म का पंजीयन हो जाने से फर्म अदालत में किस अन्य पक्ष के विरूद वाद प्रस्तुत कर सकती है तथा उसका कोई साझेदार भी ऐसा कर सकता है। प्रस्तुत पंजीयन न होने से फर्म को या उसके साझेदारों को यह सुविधा नहीं रहती है।
2. **साझेदारों को लाभ** – फर्म का पंजीयन हो जाने से एक अथवा अधिक साझेदार अपने अधिकार के लिए न्यायालय में फर्म के विरूद्ध अथवा आपस में एक-दूसरे के विरूद्ध या किसी अन्य पक्ष के विरूद्ध प्रस्तुत कर सकते हैं।
3. **ऋणदाताओं को लाभ -** फर्म का पंजीयन होने से फर्म के ऋणदाताओंका हित सुरक्षित रहता है। कोई भी साझेदार जिसका नाम रजिस्टर ऑफ फर्म्स में लिखा हुआ है, यह कहकर अपने उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो सकता है कि वह अब साझेदार नहीं है। ऋणदाता किसी भी साझेदार के प्रति जिसका नाम उस रजिस्टर में लिखा हुआ हैं, वाद प्रस्तुत करके अपना धन वसूल कर सकता है।
4. **प्रवेश करनेवाले साझेदार को लाभ -** साझेदारी फर्म में प्रवेश करनेवाला साझेदार रजिस्टर्ड फर्म में अपने अधिकारों के लिए लड़ सकता है किंतु फर्म का पंजीयन न होने पर उसे दूसरे साझेदारोंकी ईमानदारी पर निर्भर रहना पड़ता है।
5. **पृथक होने वाले साझेदार को लाभ -** पृथक होनेवाला साझेदार अपने अलग होने की सूचना फर्म के रजिस्ट्रार को सार्वजनिक सूचना देकर अलग होने की तिथि से फर्म के किसी कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं होता।

अत: व्यावसायिक गतिविधियों को सफलतापूर्वक चलाने के लिए प्रत्येक फर्म के लिए यह परम आवश्यक है कि वह अपना पंजीयन करा ले।

साझेदारों के अधिकार, कर्तव्य एवं तीसरे पक्षकारों के साथ संबंध

साझेदारों के अधिकार

साझेदारों के अधिकारों को निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है:

- सामान्य अधिकार जो अनुबंध द्वारा बदले नहीं जा सकते है।
- अधिकार जो अनुबंध द्वारा बदले जा सकते है।

सामान्य अधिकार जो अनुबंध द्वारा बदले नहीं जा सकते हैं

प्रत्येक साझेदार के सामान्य अधिकार जो अनुबंध के द्वारा बदले नहीं जा सकते है निम्नलिखित है:

1. **न्यायपूर्ण और विश्वासयुक्त व्यवहार -** प्रत्येक साझेदार अन्य साझेदारों से न्यायपूर्ण और विश्वासयुकृत व्यवहार पानेकी दशा रखने का अधिकार रखता है।
2. **साझेदारी संबंधी तथ्य जानता -** प्रत्येक साझेदार का यह अधिकार है कि वह अपने साथी साझेदारों से साझेदारी संबंधी प्रत्येक तथ्य जाने और पूछे जो वो स्वयं नहीं जानता।
3. **कपटपूर्ण व्यवहार से क्षतिपूर्ति करना -** प्रत्येक साझेदार को अपने क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार है जो उसे अन्य साझेदार अथवा साझेदारों के कपटपूर्ण व्यवहार को कारण हुआ हैं।
4. **बिना सर्वसम्मति के फर्म में परिवर्तन नहीं -** फर्म में किसी प्रकार का परिवर्तन सभी साझेदारों के सर्वसम्मति के बिना नहीं किया जा सकता है।
5. **आपत्तिकाल में अधिकार -** आपत्तिकाल में प्रत्येक साझेदार को वह सब करने का अधिकार होता है जिससे फर्म की हानि से रक्षा हो।

अधिकार जो अनुबंधर द्वारा बदले जा सकते हैं

साझेदारों के वे अधिकार जो अनुबंध द्वारा बदले जा सकते हैं निम्नलिखित हैं:

1. **व्यवसाय के संचालन में भाग लेने का अधिकार -** प्रत्येक साझेदार को व्यवसाय के संचालन में भाग लेने का अधिकार होता है चाहे उसने फर्म में कितनी भी पूँजी क्यो न लगाई हो।
2. **सम्मति प्रकट करने का अधिकार -** प्रत्येक साझेदार को व्यवसाय से संबंधित प्रत्येक विवादयुक्त विषय को समझने एवं उसके संबंध में अपनी सम्मति प्रकट करने का अधिकार है।
3. **बहियों के निरिक्षण का अधिकार -** प्रत्येक साझेदार को फर्म की बहियों तक पहूँचने , निरीक्षण करने तथा प्रतिलिपी प्राप्त करने का अधिकार है।
4. **लाभ और हानि में हिस्सा का अधिकार -** प्रत्येक साझेदार को फर्म के लाभ और हानि में हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार है।

5. **लाभों में से पूँजी पर ब्याज प्राप्त करने का अधिकार -** यदि कोई साझेदार अपने द्वारा लगाई गई पूँजी पर ब्याज पाने का अधिकारी है तो वह फर्म के लाभों में से ही देय होगा।
6. **पूँजी के अतिरिक्त धन पर ब्याज -** यदि कोई साझेदार फर्म के कारोबार में अतिरिक्त पूँजी ऋण के रूप में लगाता है तो वह उस अतिरिक्त पूँजी पर ब्याज पानेका अधिकारी होता है।
7. **क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार -** यदि किसी साझेदार को कारोबार के उचित संचालन में एवं फर्म को किसी अकस्मात संकट से बचाने में कोई हानि होती है, तो फर्म उस क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी होगा।
8. **फर्म की संपत्ति पर अधिकार -** यदि कोई विपरीत अनुबंधन हो तो फर्म की संपत्ति पर सभी साझेदारों का सम्मिलित अधिकार होता है।
9. **साझेदारी से अलग होने का अधिकार -** प्रत्येक साझेदार को अन्य साझेदारों की सहमति से साझेदारी से अलग होने का अधिकार होता है। इसके अलावा ऐच्छिक साझेदारी की दशा में कोई भी साझेदार दूसरे साझेदारों को सूचना देकर अलग हो सकता है।
10. **साझेदारी से न निकाले जाने का अधिकार -** किसी भी साझेदार को बहुमत से साझेदारी से नहीं निकाला जा सकता है। यह तभी संभव है जबकि अन्य साझेदारों न सद्भावना में व्यवहार करके उसे निकालने का निर्णय लिया हो।
11. **साझेदारी से अलग हुए साझेदार को प्रतिस्पर्धात्म करोबार करने का अधिकार -** यदि कोई विपरीत अनुबंध न हो तो प्रत्येक साझेदार को जो फर्म से अलग हो चुका है, प्रतिस्पर्धात्मक कारोबार करनेका अधिकार है।
12. **अलग होने पर साझेदार का नाम और ब्याज पाने का अधिकार -** यदि किसी साझेदार की मृत्यु हो गई है यह अन्य किसी कारण से अलग हो गया हो और शेष साझेदार बिना हिसाब चुकाये हुए फर्म की अविभाजित संपत्ति से कारोबार चला रहे हैं तथा अलग हुए साझेदार था उसका उत्तराधिकारी वह लाभ या 6% वार्षिक दर से ब्याज पाने का अधिकारी है जो उसके हिस्से की संपत्ति से फर्म को प्राप्त होती है।

साझेदारों के कर्तव्य

अधिकारों की तरह साझेदारों के कर्तव्य भी समझौते द्वारा निर्धारित होते हैं। साझेदारों के बीच आपस में प्रतिद्वन्द्विता के स्थान पर सहयोग की भावना होनी चाहिए। साझेदारों के कर्तव्यों को निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है:

- सामान्य कर्तव्य जो अनुबंध द्वारा बदले नहीं जा सकते है।
- कर्तव्य जो अनुबंध द्वारा बदले जा सकते हैं।

सामान्य कर्तव्य जो अनुबंध द्वारा बदले नहीं जा सकते है:

साझेदारी अधिनियम के अनुसार साझेदारों के सामान्य कर्तव्य जो अनुबंध द्वारा बदले नहीं जा सकते है, निम्नलिखित है:

1. **अधिकतम सामान्य लाभ के लिए कार्य करना -** साझेदारों का सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह है कि वे फर्म के कारोबार का संचालन सभी साझेदारों के अधिक से अधिक लाभ के लिए करे।
2. **एक-दूसरे के प्रति न्यायनिष्ठ तथा सद्दय होना -** साझेदारों को चाहिए कि वे अन्य साझेदारों पर विश्वास रखे तथा न्यायपूर्ण कार्य करें।
3. **सही हिसाब देना -** प्रत्येक साझेदार का यह कर्तव्य है कि वह सच्चा, सही और उचित रीति से साझेदारी का हिसाब रखे।
4. **फर्म को अथवा किसी साझेदार को अथवा उसके वैधानिक प्रतिनिधि को प्रभावित करनेवाली सभी बातों की पूर्ण सूचना देना -** प्रत्येक साझेदार एक-दूसरे का एजेन्ट होता है, अत: उसे व्यापार के संबंध में पूरी सूचना, जो कि फर्म अथवा साझेदार अथवा उसके वैधानिक प्रतिनिधि को प्रभावित करने वाली हो, देनी चाहिए।
5. **कपटपूर्ण व्यवहार से हानि की पूर्ति करना -** यदि कोई साझेदारअपने कपटपूर्ण व्यवहार से फर्म को क्षति पहूँचाता है तो वह साझेदार उसकी क्षतिपूर्ति करनेका उत्तरदायी हो जाता है।

साझेदारो के कर्तव्य जो अनुबंध द्वारा बदले जा सकते है:

साझेदारों के निम्नलिखित कर्तव्यों को आपसी अनुबंध द्वारा बदला जा सकता है, अर्थात् यदि इनके विपरीत कोई अन्य समझौते न हो तो साझेदारों के निम्नलिखित कर्तव्य होंगे:

1) प्रत्येक साझेदार बिना परिश्रमिक (अतिरिक्त) के कार्य करेगा।
2) जानबूझकर की गई लापरवाही के लिए क्षतिपूर्ति करने का कर्तव्य।
3) लाभ-हानि को बराबर-बराबर अनुपात में बाँटने का कर्तव्य।
4) फर्म की सम्पत्ति का प्रयोग निजी कार्य के लिए न करके केवल फर्म के कार्य के लिए ही करने का कर्तव्य।
5) निजी लाभ के प्रति हिसाब देने का कर्तव्य।
6) प्रतिस्पर्धात्मक करोबार से प्राप्त लाभ का हिसाब देने का कर्तव्य।
7) फर्म के बनावट में परिवर्तन होने पर साझेदारों के कर्तव्य पहले जैसे ही रहेंगे।
8) अपने अधिकार दूसरे को न देना।
9) अधिकार की सीमा के भीतर ही कार्य करने का कर्तव्य।
10) अधिकार की सीमा के लिए स्थापित फर्म के चालू करने पर साझेदारोंके कर्तव्य पूर्ववत ही रहेंगे।

3.5 साझेदारी फर्म का समापन

साझेदारों के आपस में किये गए समझौते के भंग होने की दशा में साझेदारी का अंत हो जाता है, परन्तु फर्म का अंत केवल उसी दशा में होता है जबकि समस्त साझेदार साझेदारी में कम करना अस्वीकार कर देते हैं। इस प्रकार साझेदारी के अंत एवं फर्म के अंत में अंतर होता है ।

फर्म की समाप्ति – भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 39 के अनुसार, "किसी फर्म के सभी साझेदारों के बीच साझेदारी की समाप्ति ही फर्म की समाप्ति कहलाती है।"

साझेदारी की समाप्ति – "जब किसी साझेदार के पृथक होने के पश्चात शेश साझेदार फर्म का कारोबार चलते रहते हैं तो इसे साझेदारी की समाप्ति कहते हैं।" इस प्रकार, साझेदारी की समाप्ति में केवल साझेदारों के संबंधों में परिवर्तन आता है तथा फर्म चालू रहती है।

अतः "साझेदारी के समापन पर फर्म का समापन हो जाना आवश्यक नहीं है किन्तु फर्म के समापन पर साझेदारी का भी अनिवार्य रूप में समापन हो जाता है।"

साझेदारी का समापन एवं फर्म का समापन में अंतर

क्र.सं.	साझेदारी का समापन	फर्म का समापन
1.	यदि किसी साझेदार के पृथक हो जाने पर शेश साझेदार फर्म का कारोबार चालू रखते हैं तो इसे साझेदारी का समापन कहते हैं ।	यदि सभी साझेदारों के मध्य अंतिम रूप से साझेदारी समाप्त हो जाती है तो इसे फर्म का समापन कहते हैं ।
2.	फर्म से अस्तित्व पर ही साझेदारी का अस्तित्व निर्भर करता है । फर्म की समाप्ति होते ही साझेदारी का भी अंत हो जाता है ।	साझेदारी की समाप्ति होने पर फर्म की समाप्ति होना आवश्यक नहीं है ।
3.	साझेदारी की समाप्ति पर व्यवसाय का संचालन बंद होना आवश्यक नहीं है ।	फर्म की समाप्ति पर व्यवसाय का संचालन भी समाप्त हो जाता है ।
4.	साझेदारी की समाप्ति के कारण समस्त साझेदारों के मध्य संबंध समाप्त नहीं होते हैं अपितु उन संबंधों में परिवर्तन हो जाता है ।	फर्म की समाप्ति के कारण सभी साझेदारों के बीच संबंधों की भी समाप्ति हो जाती है ।
5.	साझेदारी की समाप्ति पर संपत्ति का बंटवारा नहीं किया जाता है अपितु अलग होने वाले साझेदार को उसका संपत्ति में हिस्सा डे दिया जाता है ।	फर्म की समाप्ति की दशा में फर्म की संपत्ति का भी बंटवारा हो जाता है ।

फर्म के समापन की विधियाँ

फर्म की समाप्ति निम्नलिखित दशाओं में से किसी के द्वारा हो सकती है :

1. **ठहराव अथवा समझौते द्वारा समाप्ति** – किसी भी फर्म को सभी साझेदारों की सहमति से अथवा साझेदारों के बीच किसी अनुबंध के अनुसार समाप्त किया जा सकता है।
2. **अनिवार्य समाप्ति** – निम्नलिखित अवस्थाओं में से किसी एक के द्वारा फर्म की अनिवार्य रूप से समाप्ति हो जाती है:
   i. जब किसी घटना के घटित होने के कारण फर्म का व्यापार अवैधानिक हो जाय।
   ii. जब सभी साझेदार या एक को छोड़कर शेश साझेदार दिवालिया घोषित कर दिये जाय।
3. **कुछ संयोगों अथवा आकस्मिक घटनाओं के घटित होने की दशा में समाप्ति** – यदि साझेदारों के बीच इसके विपरीत कोई अनुबंध न हो, तो निम्नलिखित दशाओं में फर्म की समाप्ति हुई समझी जाएगी:
   i. यदि फर्म की किसी एक या अधिक कार्यों के लिए स्थापना की गई हो तो उसके पूरा होने पर;
   ii. यदि फर्म की किसी निश्चित अवधि के लिए स्थापना की गई हो तो उस अवधि के बीतने पर;
   iii. किसी एक साझेदार की मृत्यु होने पर; तथा
   iv. किसी साझेदार के दिवालिया घोषित होने पर।
4. **ऐच्छिक साझेदारी में सूचना द्वारा समाप्ति** – ऐच्छिक साझेदारी में कोई भिसझेदार दुसरे सभी साझेदारों को फर्म को समाप्त करने की अपनी इच्छा को लिखित सूचना देकर फर्म को समाप्त कर सकता है। फर्म सूचना में दी गई समाप्ति की तिथि से समाप्त हुई मानी जाएगी अथवा यदि कोई निश्चित तिथि न हो तो, सूचना के पहुँचने की तिथि से ही फर्म का अंत माना जायेगा।
5. **न्यायालय द्वारा समाप्ति** – किसी साझेदार द्वारा वाद प्रस्तुत किये जाने पर न्यायालय निम्नलिखित आधारों में से किसी भी आधार पर फर्म की समाप्ति का आदेश दे सकता है:
   i. **किसी साझेदार के अस्वस्थ मस्तिष्क का हो जाने पर** – यदि कोई साझेदार अस्वस्थ मस्तिष्क का हो जय तो फर्म का अंत स्वतः नहीं होता है। ऐसी स्थिति में वाद उसके किसी मित्र द्वारा अथवा किसी एनी साझेदार द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। वाद प्रस्तुत होने के पश्चात न्यायालय फर्म को समाप्त करने का आदेश दे सकता है।
   ii. **किसी साझेदार के स्थायी रूप से योग्य होने पर** – यदि कोई साझेदार, साझेदार के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन करने मने स्थायी रूप से असमर्थ हो जाता है, तो न्यायालय किसी भी दुसरे साझेदार द्वारा वाद प्रस्तुत करने पर फर्म को समाप्त करने का आदेश दे सकता है।
   iii. **किसी साझेदार के दुराचरण का दोषी होने पर** – यदि कोई साझेदार किसी ऐसे दुराचरण का दोषी हो जिससे कारोबार के संचालन में हानि होने की आशंका हो तो किसी दुसरे साझेदार द्वारा वाद प्रस्तुत किये जाने पर न्यायालय फर्म को समाप्त करने का आदेश दे सकता है।

iv. **किसी साझेदार द्वारा जान-बूझकर ठहराव भंग करने पर** – यदि कोई साझेदार जान-बूझकर फर्म के प्रबंधन से संबंधित मामलों में ठहराव भंग करता है तो न्यायालय किसी अन्य साझेदार द्वारा वाद प्रस्तुत किये जाने पर फर्म को समाप्त करने का आदेश दे सकता है।

v. **किसी साझेदार के भाग हस्तांतरण होने, कुर्की होने अथवा बिकने पर** – यदि किसी साझेदार ने किसी प्रकार से फर्म से अपना समस्त हित किसी तृतीय पक्षकार को हस्तांतरित कर दिया है अथवा अपने हिस्से पर प्रभार स्थापित करने की अनुमति दे दी है, तो न्यायालय किसी अन्य साझेदार द्वारा वाद प्रस्तुत किये जाने पर फर्म को समाप्त करने का आदेश दे सकता है।

vi. **निरंतर हानिप्रद कारोबार होने पर** – यदि फर्म के कारोबार में निरंतर हानि हो रही है तथा लाभ होने की संभावना नहीं है, तो न्यायालय फर्म को समाप्त करने का आदेश दे सकता है।

vii. **समाप्ति उचित एवं न्यायपूर्ण होने पर** – यदि किसी अन्य आधार पर फर्म की समाप्ति करना उचित एवं न्यायपूर्ण हो तो न्यायालय फर्म को समाप्त करने का आदेश दे सकता है।

3.7 बोध प्रश्न

1. साझेदारी की परिभाषा दीजिए तथा उसकी विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
2. साझेदारी की परिभाषा दीजिए और साझेदारी की सही विद्यमानता निर्धारित करने का ढंग स्पष्ट कीजिए।
3. साझेदारी संलेख किसे कहते हैं ? साझेदारी संलेख में दी जाने वाली बातों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
4. साझेदारी संलेख क्या है ? क्या साझेदारी संलेख का होना नेवारी है ? यदि नहीं, तो इसके आभाव में लागू होने वाले नियमों को बताइए।
5. साझेदारी संलेख में शामिल किन्ही सात बिन्दुओं को बताइए।
6. साझेदारी फर्म की परिभाषा दीजिए व एक साझेदार के अधिकारों, कर्तव्यों एवं दायित्वों का वर्णन कीजिए।
7. क्या अवयस्क साझेदारी में सम्मिलित किया जा सकता है ? यदि हाँ, तो अवयस्कता के दौरान व वयस्कता के बाद इसके अधिकार व दायित्व क्या होंगे ?
8. साझेदारी फर्म में अवयस्क की क्या स्थिति है ? अवयस्क के अधिकारों, उत्तरदायित्वों तथा अयोग्यताओं का वर्णन कीजिए।
9. "एक अवयस्क दूसरों को बंधन में डालता है परन्तु दूसरों द्वारा बंधन में नहीं डाला जा सकता।" उन अधिनियमों के आधार पर, जिन्हें आपने पढ़ा है, इस कथन की व्याख्या कीजिए। भारतीय साझेदारी अधिनियम के अंतर्गत उसकी क्या स्थिति है ?

10. "अवयस्क अनुबंध करने के लिए योग्य होता है लेकिन साझेदारी अधिनियम के अनुसार साझेदारी के लाभों में सम्मिलित किया जा सकता है।" व्याख्या कीजिए।

11. भारतीय साझेदारी अधिनियम में फर्म के विघटन के विभिन्न तरीके कौन-कौन से हैं ? विवेचना कीजिए।

12. फर्म की समाप्ति से आप क्या समझते हैं ? कैसे और किन परिस्थितियों में एक फर्म को समाप्त किया जा सकता है ?

13. फर्म के विघटन से क्या आशय है ? किन परिस्थितियों में न्यायालय एक फर्म का विघटन करने का आदेश डे सकता है ?

14. साझेदारी के विघटन और फर्म के विघटन में अंतर बताइए। फर्म के विघटन की विभिन्न विधियाँ बताइए।

15. "भारतीय साझेदारी अधिनियम में फर्म के पंजीयन को अनिवार्य घोषित किये जाने के बिना भी उसे आवश्यक बनाने की प्रभावशाली व्यवस्था है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

16. फर्म के पंजीयन के संबंध में भारतीय साझेदारी अधिनियम, 1932 के अधीन क्या व्यवस्थाएँ हैं ? फर्म का पंजीयन न कराने का क्या प्रभाव पड़ता है ?

17. एक साझेदारी संस्था के पंजीकरण की विधि का वर्णन कीजिए। फर्म का पंजीकरण कराने से क्या लाभ है।

3.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- अग्रवाल, आर. सी. एवं अग्रवाल, संजय (2017), व्यापारिक सन्नियम, एस बी पी डी पब्लिकेशन्स, आगरा
- पाण्डेय एवं सिंह (2006), व्यापारिक नियम,एपसाइलन पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., कानपुर
- शुक्ला एवं सहाय (2001), व्यापारिक सन्नियम, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
- Kuchhal, M. C. & Kuchhal, Vivek (2012), Mercantile Law, Vikas Publishing House, New Delhi.

इकाई – IV: उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 एवं कंपनी अधिनियम, 2013

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम: एक परिचय
4.3 जिला, राज्य एवं केन्द्रीय फोरम
4.4 उपभोक्ता संरक्षण परिषद
4.5 उपभोक्ता के अधिकार
4.6 कंपनी अधिनियम: एक परिचय
4.7 कंपनी निर्माण की प्रक्रिया
4.8 सारांश
4.9 बोध प्रश्न
4.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों को समझ सकेंगे।
- कंपनी अधिनियम की मूल अवधारणा तथा कंपनी निर्माण की प्रक्रिया को समझ सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

'उपभोक्ता संरक्षण' से संबंधित कानून उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 में हैं। भारत सरकार द्वारा आर्थिक साधनों के नियंत्रण क्रम में उपभोक्ता हितों को संरक्षण प्रदान किये जाने की दिशा में एवं एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिये उपभोक्ता के स्वाथ्य, सुरक्षा आदि मौलिक अधिकारों को सुनिश्चित करने की आवश्यकता का अनुभव किया गया। विक्रेताओं के द्वारा गलत सामानों एवं सेवाओं से उपभोक्ताओं को बचाने के लिए लंबे समय से महसूस किये जा रहे जरूरत को पूरा करने के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 को लागू किया गया। पहले से उपलब्ध अधिनियमों में शोषित उपभोक्ताओं को

खुद सिविल केस के द्वारा कार्यवाही करनी होती थी जो एक मंहगी और लम्बे समय वाली कानूनी प्रक्रिया थी । उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 एक प्रयास है जहाँ शोषित उपभोक्ता बिना किसी खर्च के, अशानी से तथा शीघ्रता से अपनी शिकायत दर्ज करवा सकते हैं तथा समुचित न्याय पा सकते हैं । यह अधिनियम अधिक पहूँच रखनेवाला एवं तीव्र कानूनी उपाय उपलब्ध करवाने वाला है । यह अधिनियम बिना शुल्क तथा बिना वकील के विधिक उपाय उपलब्ध कराता है । इसके अंतर्गत निर्णयों को 90 दिनों में किया जाता है । यह अधिनियम जम्मू एवं कश्मीर राज्य को छोड़कर संपूर्ण भारतवर्ष में प्रवर्तित होता है ।

कम्पनी अधिनियम, 1956 को प्रतिस्थापित कर 30 अगस्त, 2013 के कंपनी अधिनियम, 2013 को अधि सूचित किया गया। यह 1956 के अधिनियम की 650 धाराओं एवं 15 अनुसूचियों के सापेक्ष 470 धाराएँ 7 अनुसूचियां समाहित करता है। कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 1(3) केन्द्रीय सरकार को अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों को ऐसी तिथियों से लागु करने का अधिकार देती है। जो गजट में अधिसूचित की जायेगी तथा अधिनियम के पृथक-पृथक प्रावधानों हेतु भिन्न-भिन्न तिथियाँ अधिसूचित की जा सकती है।

कंपनी अधिनियम, 2013 में कई ऐसे प्रावधान किये गये हैं जो कॉरपोरेट क्षेत्र की संवृद्धि एवं विकास में योगदान देंगे। इस अधिनियम से कारपोरेट मानकों में सुधार होने, कॉरपोरेट एवं लेखा परीक्षकों की जवाबदेही बढ़ने पारदर्शिता के स्तर में सुधार होने तथा निवेशकों का हित संरक्षण होने की आशा की जाती है।

4.2 उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम: एक परिचय

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम,1986 एक ऐसा अधिनियम है जिसका लाक्ष्य देश के सभी उपभोक्ताओं को शोषण से बचाना है । यह सर्व विदित है कि अधिकांश उपभोक्ता निर्धन, बाजार व्यवस्था प्रणाली से अनभिज्ञ तथा गैर-जागरूक है । भारतीय बाजार विक्रेता बाजार है, जहाँ उपभोक्ता को सरलतापूर्वक धोखा दिया जा सकता है । शोषित उपभोक्ता न्यायालय तक जाने की स्थिति में नहीं होता है । अत: उसे शीघ्र एवं सस्ते न्याय की आवश्यकता होती है । यह अधिनियम उपभोक्ताओं के अधिकारों को मान्यता देता हैं तथा सुव्यवस्थित समाधान व्यवस्था स्थापित करता है । यह ऐसा अधिनियम है जिसमें यह प्रावधान रखा गया कि उपभोक्ताओं के अधिकारों को क्षति पहूँचाने वालों को दंडित किया जाना चाहिए तथा उपभोक्ताओं को जागरूक किया जाना चाहिए।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 को 1991, 1992 तथा 2002 में संशोधित कर इसे और अधिक असरदार एवं उद्देश्य पूर्ण बनाया गया ।

पूँजीवादी समाज में उपभोक्ता ही राजा होता है क्योंकि वह उधोगपतियों के उत्पादों के प्रति जो अनुक्रिया अपनाता है, उनसे ही उस समाज की पूरी अर्थव्यवस्था का स्वरूप निर्धारित होता है। दूसरे शब्दों में, बाजार नियंत्रित समाजों की मूलभूत प्रकृति यह है कि यहां उत्पादक एवं उपभोक्ता पूरी अर्थव्यवस्था को चलाने के लिए दो पहियों की तरह काम करते हैं मगर व्यवहारत: उपभोक्ता उत्पादक की तुलना में अधिक आधार प्रदान करता है। यह स्थति तब और स्पष्ट हुई जब विश्व के विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में उदारीकरण तथा वैश्वीकरण की संकल्पना को अपनाया गया तथा बाजार के विभिन्न कारोबारियों के बीच प्रतिस्पर्धा की शुरूआत हुई। इस परिस्थिति में कम से कम सिद्धान्तत: उपभोक्ताओं को अधिक से अधिक सुरक्षा की आवश्यकता हुई। हाल के वर्षों में सिद्धान्तहीन एवं अधिक मुनाफा कमाने की सोच वाले उत्पादक एवं व्यापारी द्वारा उपभोक्ताओं की भलाई के विपरीत काम किया गया है और वस्तुओं तथा सेवाओं के खरीद पर उपभोक्ताओं को असहाय एवं उपेक्षा का शिकार बनाया गया है। जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उपभोक्ता प्राय: व्यापारियों द्वारा बड़े पैमाने पर फैलाए गये झूठे वादे के झांसे में आ जाते हैं। इस दिशा में उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिए और उनके दावे के निराकरण हेतु तकनीक के विकास के लिए देश में उपभोक्ता संरक्षण कानून को 1986 में पारित किया गया। उपर्युक्त शीर्षक के तहत उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा से संबंधित विभिन्न मुश्किलों का आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है। इसके अलावा उपभोक्ताओं के अधिकार एवं दायित्व का भी विश्लेषण किया गया है। साथ ही देश में शिकायत निवारण तंत्र की स्थिति पर विशेष जोर देते हुए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के कार्यों की विश्लेषणात्मक व्याख्या पर भी जोर दिया गया है।

उपभोक्ता कौन है ?

उपभोक्ता उस व्यक्ति को कहते हैं, जो विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं का या तो उपभोग करता है अथवा उपयोग में लाता है। वस्तुओं में उपभोक्ता वस्तुएँ (जैसे गेहूँ, चावल, दाल, नमक, चीनी आदि) एवं स्थायी वस्तुएँ (जैसे साइकिल, रेफ्रीजरेटर, टेलीविजन आदि) सम्मिलित है। जिन सेवाओं का हम क्रय करते है उनमें बिजली, टेलीफोन, परिवहन सेवाएँ आदि सम्मिलित हैं।

उपभोक्ता वह व्यक्ति है, जो वस्तुओं अथवा सेवाओं को अपने अथवा अपनी ओर से अन्य के प्रयोग के लिए खरीदता है। वस्तुओं में दैनिक उपभोक्ता की तथा स्थायी वस्तुएँ सम्मिलित हैं। जबकि सेवाएँ जिनके लिए भुगतान किया जाता हैं, ये यातायात, बिजली फिल्म देखना इत्यादि शामिल है। ध्यान रखने योग्य बात हैं कि उपभोक्ता वह है, जो उपभोग के लिए वस्तुओं एवं सेवाओं का क्रय करता हैं। यदि कोई

फुटकर व्यापारी किसी थोक विक्रेता से वस्तुएँ (जैसे राशन का सामान) खरीदता है, तो वह उपभोक्ता नहीं है क्योंकि वह तो वस्तुओं का पुन: विक्रय के लिए खरीद रहा है।

वस्तुओं एवं सेवाओं के उपभोग करने में मुख्य अंतर यह है कि क्रय से पहले वस्तुओं की भौतिक रूप से जांच की जा सकती है जबकि सेवाओं की विश्वसनीयता एवं निरंतरता की पहले से जांच नहीं की जा सकती है। उदाहरण के लिए, यदि कोई उपभोक्ता टेलीविजन खरीदता है तो उसका प्रदर्शन करा सकता है और देख सकता है कि यह कैसे काम कर रहा है तथा इसकी तस्वीर, आवाज, गुणवत्ता आदि कैसी है। परन्तु कोई उपभोक्ता यह जांच नहीं कर सकता कि बिजली की वोल्टेज हर समय स्थित रहेगीं। उपभोक्ता खाने की वस्तु को पहले नमूने के तौर पर उसका स्वाद जानकर उसका क्रय कर सकता है परन्तु वह इसकी जाँच नहीं कर सकता कि एक टैक्सी का ड्राइवर चौकन्ना रहेगा कोई दुर्घटना नहीं होगी।

उपभोक्ता जिन वस्तुओं को क्रय करता है, वह उनका उपभोक्ता भी तुरंत कर सकता है अथवा कुछ समय पश्चात भी। वह अनाज का हफ्तो महीनों तक संग्रहण कर सकता है। एक कार की यदि समय-समय पर आवश्यक मरम्मत कराते रहें तो उनका कई वर्षो तक उपयोग कर सकते है। लेकिन कोई भी उपभोक्ता परिवहन सेवाओं, बिजली की आपूर्ति अथवा टेलीफोन सेवा के संबंध में ऐसा नहीं कर सकता है।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 व्यक्तिगत तथा किसी खास व्यक्ति विशेष के परिप्रेक्ष्य में उपभोक्ता के बारे में एक विशेष अवधारणा का स्पष्टीकरण करता है। इस अधिनियम के धारा 2(1)(घ) के अनुसार, उपभोक्ता वह व्यक्ति है जो वस्तु या सेवा को अपने लिए निर्धारित फायदे या उपभोग के लिए खरीदता है या किराए पर लेता है या प्राप्त करता है जिसका मूल्य या तो अदा कर दिया गया हो या अदा करने का वचन दिया हो या आंशिक भुगतान किया गया हो या किसी अन्य पद्धति के तहत भुगतान किया गया हो। यह अधिनियम उन लोगों को स्पष्टत: उपभोक्ता की श्रेणी में नहीं रखता है जो वस्तु या सेवाओं की प्राप्ति किसी वाणिजियक उद्देश्य के लिए करते हैं। वाणिजियक उद्देश्य के तहत उसे भी शामिल नहीं किया गया है, यदि कोई व्यक्ति वस्तु खरीदे और स्वरोजगार द्वारा जीविकोपार्जन हेतु उसकी सेवा खुद ले। उल्लेखनीय है कि भारत की जनसंख्या का एक बड़ा भाग छोटे-छोटे दुकानों जैसे खुदरा विक्रेता, विनिर्माण इकाई आदि द्वारा स्वरोजगार के तहत जीविकोपार्जन करते हैं इसके लिए वे बड़े-बड़े व्यापारियों या उत्पादकों से वस्तु या सेवाएं खरीदते हैं। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अंतर्गत इस तरह के व्यवसाय को शामिल नही करने से बड़ी

संख्या में लोगों को बाजार के सिद्धांतहीन एवं लालची बड़े-बड़े व्यवसायियों के सामने लाचार बना देते हैं और यह इस अधिनियम के सुचारू रूप से लागू होने के उद्देश्य में बाधा उत्पन्न करता है।

उपभोक्तावाद

उपभोक्तावाद से अभिप्राय उपभोक्ताओं के आन्दोलन से है जिसका उद्देश्य निर्माता , व्यापारी, विक्रेता एवं सेवा प्रदान करने वालों के उपभोक्ताओं के प्रति उचित एवं ईमानदारीपूर्ण व्यावहार को सुनिश्चित करना है। यह आन्दोलन बाजार में हो रहे दूराचार के संबंध में उपभोक्ता में जागरूकता पैदा करने एवं उनके हितों की रक्षा के लिए मार्ग खोजने की दिशा में किसी उपभोक्ता आन्दोलनकारी का प्रयल माना जा सकता है।

उपभोक्ता संरक्षण

उपभोक्ताओं को कुछ मूलभूत अधिकार प्राप्त है, जैसे- सुरक्षा का अधिकार, सूचना का अधिकार, चुनाव का अधिकार और उनकी बात सुने जाने का अधिकार। लेकिन क्या उपभोक्ता खरीदारी करते समय इन अधिकारों को याद रखते है ? शायद नहीं। यदि उपभोक्ता इन अधिकारों से परिचित हैं, तो भी विक्रेता प्राय: उनकी स्थिति का लाभ उठाकर उन्हें ऐसी वस्तुओं की आपूर्ति कर देते है जो दोषपूर्ण, हानिकारक और असुरक्षित हैं और जिनसे स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचता है।

यदि एक उपभोक्ता टेलीविजन सेट खरीदता है और उसमें कोई ऋुटि नजर आती है तो वारंटी के दौरान डीलर बिना शुल्क लिये इसे ठीक करता है लेकिन त्रुटि इसके बाद भी बनी रहती है तो अब उपभोक्ता क्या करेगा ? यदि टेलीविजन सेट की खराबी की वजह से कोई नुकसान होता है तो इसका क्या उपाय है ? उपभोक्ता विक्रेता के पास जा सकता है, हो सकता है कि विक्रेता , उपभोक्ता पर ही दोष मढ़ दे कि उपयोग के दौरान आवश्यक सावधानी नहीं बरती गई। ऐसे में उपभोक्ता यदि अपने अधिकारों से अवगत नहीं होता है तो उसे हानि की आशंका कहीं ज्यादा होती है।

उपभोक्ता के हित की रक्षा के लिए महसूस किया गया कि वस्तुओं और सेवाओं के विक्रेताओं की मनमानी से आमआदमी को बचाने तथा उसकी मदद के लिए कुछ उपाय आवश्यक है। उपभोक्ता संरक्षण का अर्थ, व्यापार से जुड़ी अनियमितताओं से आम उपभोक्ता के हित की रक्षा के लिए उठाये जाने वाले कदम या आवश्कक उपाय है। हर व्यापारी अधिक से अधिक लाभ कमाना चाहता है और यह अक्सर उपभोक्ताओं के खर्च की कीमत पर ही होता है।

उपभोक्ताओं के समस्याओं का स्वरूप

अनैतिक तथा बेईमान व्यापारी कई प्रकार से उपभोक्ताओं की धोखा दे सकते हैं। इनमें से कुछ अनुचित गतिविधियाँ निम्नलिखित हो सकती हैं :

i. **मिलावट** – व्यापारी द्वारा बेची जा रही वस्तु में उससे घटिया गुणवत्ता की चीज़ मिलकर उपभोक्ता को देना मिलावट कहलाता है। इस तरह की मिलावट अनाज, मसलों, चाय की पत्ती, खाद्य तेल इत्यादि में की जा सकती है। उदाहरण के लिए घी या मक्खन में वनस्पति तेल की मिलावट की जा सकती है।

ii. **नकली चीज़ों की बिक्री** – व्यापारी द्वारा असली उत्पाद के बदले उपभोक्ताओं को ऐसी चीज़ की बिक्री करना जिसकी कोई खास कीमत नहीं है। ऐसा अक्सर दवाओं और स्वास्थ्य रक्षक उत्पादों में होता है। ऐसी कई घटनाएँ सामने आई हैं जिनमें ग्लूकोज के पानी की बोतल में आसूत (डिस्टिल्ड) जल पाया जाता है।

iii. **नाप टोल के गलत पैमाने का इस्तेमाल** – नाप तोल के गलत पैमाने का इस्तेमाल व्यापारियों द्वारा अपनाया जानेवाला एक और अनुचित तरीका है। तोल का बिकने वाली चीज़ें जैसे सब्जी, अनाज. चीनी और दालें या नाप कर बेचीं जाने वाली चीज़ें जैसे कपड़े या सूत पीस वगैरह कभी-कभी वास्तविक तोल या नाप से कम पाई जाती है। उदाहरण के लिए, मिठाइयाँ अक्सर डिब्बे के साथ ही तोल दिया जाता है, जो 50 से 100 ग्राम तक का होता है।

iv. **जाली माल की बिक्री** – व्यापारियों द्वारा ऐसी वस्तु बेचना जिस पर बेहतर क्वालिटी का निशान दिया गया है परन्तु वास्तव में वह समान उसके अनुरूप नहीं है। उदाहरण के लिए, धुलाई का साबुन या पाउडर, ट्यूबलाइट, जैम, खाने का तेल और दवाओं पर जाने-माने ब्रांड का लेबल लगाकर बेचना।

v. **जमाखोरी व कालाबाजारी** – जब कोई आवश्यक वस्तु खुले बाज़ार में उपलब्ध नहीं करायी जाती है और जानबूझकर व्यापारी इसे गायब कर देते हैं तो इसे जमाखोरी कहा जाता है। इसका उद्देश्य उस चीज़ का कृत्रिम आभाव पैदा कर उसकी कीमत में उछाल लाना होता है। इस तरह से जमा किये गए सामान को चोरी छिपे ऊँची कीमत पर बेचना कालाबाजारी कहलाता है। उदाहरण के लिए समय-समय पर प्याज तथा अरहर की दाल की जमाखोरी कर उसके कालाबाजारी की सूचना समाचार पत्रों में प्रकाशित होता रहता है।

vi. **बिना कोई अतिरिक्त मूल्य लिये उपहार** – बिना कोई अतिरिक्त मूल्य लिये या कुछ चीज़ों की अगली खरीद पर उपहार प्राप्त करने के लिए कूपन देना आदि कुछ ऐसे तरीके हैं जिनसे उपभोक्ताओं को उत्पाद खरीदने के लिए लुभाया जाता है। कई बार डीलर उपभोक्ताओं के बीच प्रतियोगिता या लाटरी की भी घोषणा करता है, जबकि उसकी नीयत कोई ईनाम देने की नहीं होती है।

vii. **भ्रमात्मक विज्ञापन** – भ्रमात्मक विज्ञापनों के जरिये भी उपभोक्ताओं को छला जाता है। ऐसे विज्ञापन किसी उत्पाद या सेवा की गुणवत्ता अच्छी होने का दावा करते हैं और इस उत्पाद या सेवा की उपयोगिता का झूठा आश्वासन देते हैं। उदाहरण के लिए, एक कंपनी ने घोषणा की कि वह एक विदेशी कंपनी के तकनीकी सहयोग से 150 सी.सी. स्कूटर का निर्माण कर रही है, हालांकि वास्तव में ऐसा कोई सहयोग नहीं किया गया था।

viii. **हल्के स्तर के उत्पादों की बिक्री** – ऐसी वस्तुएं बेचना जो गुणवत्ता के घोषित स्तर या मानक स्तर, विशेषकर सुरक्षा मानकों के अनुरूप नहीं होती है। ऐसे उत्पादों में प्रेशर कूकर, स्टोव, बिजली के हीटर, आदि हैं।

4.3 उपभोक्ता के अधिकार

विज्ञान एवं प्रौधोगिकी के तेजी से विकास की ओर अग्रसर होने के कारण तकनीकी एवं उच्च विशेषता वाले असहज उत्पादों के निर्माण होने से उपभोक्ताओं में उनके उपभोग के लिए सस्ता एवं अच्छा उत्पाद के चुनाव के लिए व्यापक संशय उत्पन्न हो गया है। आधुनिक व्यावसायिक तकनीकों और लुभावने विज्ञापनों पर विश्वास कर लोग वस्तु को खरीद तो करते हैं परन्तु यह उनके उम्मीदों पर खड़ी नहीं उतरती है। उपभोक्ता के हितों की देखरेख के लिए संगठनों के अभाव होने से यह समस्या और भी जटिल हो जाती है। इन्हीं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उपभोक्ता के हितों की रक्षा के लिए कई संस्थागत प्रणाली की शुरूआत विभिन्न देशों में की गई।

बीसवीं शताब्दी में पहली बार महात्मा गांधी का ध्यान उपभोक्ता अधिकारों की ओर गया जिनका यह मानना था कि सभी व्यवसाय उपभोक्ता की संतुष्टि के लिए होते हैं। कुछ समय पश्चात उपभोक्ता अधिकारों पर चर्चा संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार संबंधी विषयों पर भी हुआ। उपभोक्ता अधिकारों पर पहला वक्तव्य अमेरिका के राष्ट्रपति जान एफ. कैनेडी के द्वारा दिया गया। इन्होंने 15 मार्च 1962 को कांग्रेस को संबोधित करते हुए मूलभूत उपभोक्ता अधिकारों को परिभाषित करते हुए उन्हें मान्यता दी। तत्पश्चात संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार के घोषणा पत्र में सुरक्षा का अधिकार, सूचना पाने का अधिकार, चुनाव या पसंद का अधिकार एवं मानवाधिकार के अन्तर्गत सुनवाई या अपील का अधिकार आदि को शामिल किया गया। 15 मार्च को प्रत्येक वर्ष विश्व उपभोक्ता अधिकार दिवस के रूप में मनाये जाने की घोषणा की गई।

उपभोक्ता संघों के अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के गठन से उपभोक्ता अधिकारों के लिए चल रहे आंदोलनों को एक नया आयाम मिला। देश के हर क्षेत्र में उपभोक्ता अधिकारों को कार्यानिवत करने एवं लोकप्रिय बनाने के लिए भारत में भी भारतीय उपभोक्ता संगठनों के संघ की स्थापना हुई। उपभोक्ता अधिकारों की सूची में और कई नये अधिकार शामिल हुए। उपभोक्ता अधिकारों की रक्षा के लिए एक नयी प्रणाली के गठन की मांग उठी।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के अंतर्गत उपभोक्ता अधिकार

विभिन्न संगठनों द्वारा सुझाए गए उपभोक्ता के अधिकारों को तब तक महत्ता नहीं मिलती है जब तक उसे कानूनी रूप से नहीं दिया जाता। उपभोक्ता के अधिकारों को सुचारू रूप से लागू करने और उन्हें कानूनी रूप प्रदान करने के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 निम्नलिखित उपभोक्ता अधिकारों का वर्णन करता है।

घातक वस्तुओं के विरूद्ध सुरक्षा का अधिकार - उपभोक्ता का प्रथम अधिकार सुरक्षा का अधिकार है। उसे ऐसी वस्तुओं एवं सेवाओं से सुरक्षा प्राप्त करने का अधिकार है जिनसे उसके शरीर एवं संपत्ति को हानि पहुंचती हो। इसलिए व्यकितयों की सुरक्षा एवं स्वास्थ्य को मîेनजर व्यापारी ऐसे किसी भी वस्तु को, जो उन्हें हानि पहुंचाए, प्रचलन में न लाने का पूर्णत: उत्तरदायी होगा।

सूचना पाने का अधिकार - सूचना के अधिकार, 2005 के लागू होने से पहले ही उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986, के तहत उपभोक्ताओं को वस्तुओं या सेवाओं के गुण, मात्रा, क्षमता, शुद्धता, मानक एवं कीमत के बारे में सूचना पाने का अधिकार था जिससे वस्तु विक्रेता या सेवा देने वाले के द्वारा गलत व्यवहार से उपभोक्ता की सुरक्षा हो सके। इसलिए उपरलिखित मामलों के बारे में ग्राहकों को व्यापारियों द्वारा किसी भी हिस्से में गलत खबर देने पर उपभोक्ता विवाद निवारण मंच के बनने से पहले भी न्यायालय द्वारा न्याय पाने का अधिकार था।

चुनाव या पसंद का अधिकार - यह अधिनियम बाजार और बाजारी सेवा के ऐसे संगठन की आवश्यकता पर बल देता है जो इस बात को सुनिशिचत करे कि डीलर ऐसी वस्तु या सेवा प्रदान करे जो उपभोक्ताओं के हित में हो। उपभोक्ता अपने इस अधिकार के अन्तर्गत विभिन्न निर्माताओं द्वारा निर्मित विभिन्न ब्रांड, किस्म, गुण, रूप, रंग तथा मूल्य की वस्तुओं में से किसी भी वस्तु का चुनाव करने को स्वतंत्र होगा।

सुनवाई या अपील का अधिकार - उपभोक्ता को अपने हितों को प्रभावित करने वाली सभी बातों को उपयुक्त मंच के समक्ष प्रस्तुत करने का अधिकार है। वे अपने इस अधिकार का उपयोग करके व्यवसायी एवं सरकार को अपने हितों के अनुरूप निर्णय लेने तथा नीतियां बनाने के लिए बाध्य कर सकते हैं। सुनवाई का अधिकार ही वह अधिकार है, जिसके द्वारा वह अपनी शिकायत को व्यक्त कर सकता है तथा अपने अन्य उपभोक्ता अधिकारों की रक्षा कर सकता है।

उपचार का अधिकार - यह अधिकार उपभोक्ता को यह आश्वासन प्रदान करता है कि क्रय की गई वस्तु या सेवा उचित एवं संतोषजनक ढंग से उपयोग में नहीं लायी जा सकेगी तो उसे उसकी उचित क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार होगा।

उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार - उपभोक्ता को उन सब बातों की शिक्षा या जानकारी प्राप्त करने का अधिकार है जो उपभोक्ता के लिए आवश्यक होता है। उपभोक्ता को उनकी आवश्यकता के अनुसार उत्पाद या सेवा के चयन में दी गई सीमित जानकारी के कारण कंपनियों द्वारा जाने या अनजाने में वे प्राय: ठगे जाते हैं। इस सिथति में उपभोक्ता को जानकारी प्राप्त करने का पूरा अधिकार होता है। उपभोक्ता को उसे सिथति में शिक्षा या जानकारी पाने का पूरा अधिकार है जिसमें उसे लगता है कि उसके साथ नाइंसाफी की गई है। उसके दावे के लिए उपचारों के लिए एक उपयुक्त संस्थागत व्यवस्था होना चाहिए। शिक्षा उपभोक्ता की जागरूकता की आधारभूत आवश्यकता है, जबकि सूचना किसी क्रय की जाने वाली वस्तु या सेवा के संबंध में जानकारी है। उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की सफलता की कुंजी है।

उपभोक्ता के संवैधानिक अधिकार - उपभोक्ता मूलत: देश का एक नागरिक होता है। भारत का संविधान भी अपने मौलिक अधिकारों तथा नीति निर्देशक तत्वों के प्रावधानों के अंतर्गत देश के लोगों की व्यापक भलाई के लिए काम करता है, उसी प्रकार इस भाग के कुछ प्रावधान उपभोक्ता के रूप में नागरिकों के वस्तु या सेवाओं के मामले से भी जुड़े हुए हैं। इससे संबंधित अनुच्छेद हैं - भाग प्प्प् के अनुच्छेद 21 तथा भाग प्ट के अंतर्गत 51ए(बी) एवं 51ए(जी) विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत व्यकितयों को प्राप्त जीवन संरक्षण तथा व्यकितगत स्वतंत्रता का अधिकार के द्वारा दिए गए महत्वपूर्ण मौलिक अधिकार से देश के नागरिकों के साथ-साथ उपभोक्ताओं के अधिकारों की भी रक्षा होती है। व्यकितगत स्वतंत्रता या जीवन के अधिकार को सीमित करने के विरूद्ध रक्षोपाय के इस गुण के अंतर्गत देश के नागरिकों को स्वत: उनसे सुरक्षा पाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है जो वस्तु या सेवाओं के उपभोग के कारण उनके जीवन या व्यकितगत स्वतंत्रता पर खतरा उत्पन्न करे। नागरिकों के इन अधिकारों की सुरक्षा हेतु सरकार कंपनियों तथा व्यवसायों को नियमित करने के लिए आवश्यक शकित का इस्तेमाल करती है।

संविधान के प्रावधानों से उपभोक्ता के लिए अन्य अधिकारों के अंतर्गत स्वस्थ पर्यावरण का अधिकार है जो लोगों के स्वस्थ, खुशनुमा एवं संतुष्ट जीवन को सुनिशिचत करते हैं। इस दिशा में मूलभूत कानूनों की व्याख्या सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय उधोगों या अन्य विकासात्मक क्रियाकलापों से पर्यावरण प्रदूषित होने जैसे मामलों से संबंधित विवादों में की है। उदाहरणत: टी दामोदर राव बनाम नगर निगम, हैदराबाद (ए आइ आर 1987 ए पी 171) के केस में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने कहा कि धीमे जहर के फैलने से प्रभावित हुए पर्यावरण द्वारा वातावरण दूषित व नष्ट होता है जिसे अनुच्छेद 21 के अंतर्गत प्राप्त अधिकारों का उल्लंघन माना जाएगा। इससे स्वस्थ पर्यावरण का अधिकार एक प्रमुख मौलिक अधिकार के रूप में उभरा जिसके बाद इस मुर्गे पर कई बार जागरूक व्यक्तियों एवं संगठनों द्वारा लोक हित को ध्यान में रखते हुए इस तरफ न्यायालयों का ध्यानाकर्षण कराया गया है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिया गया वह फैसला जिसमें कहा गया कि राष्ट्रीय राजधानी के लोगों को वायु प्रदूषण के बढ़ते खतरों से बचाने हेतु दिल्ली के सभी सार्वजनिक

परिवहन व्यवस्था में दावित प्राकृतिक गैस (सी.एन.जी) का अनिवार्य रूप से इस्तेमाल हो, स्वस्थ पर्यावरण के अधिकार का एक महत्वपूर्ण उदाहरण हैं।

सीपीए 1986 के अधीन शिकायतकत्र्ता और शिकायतें

उपभोक्ता अधिकार की दृषिट से सी.पी.ए. 1986 का एक उल्लेखनीय भाग शिकायत प्रणाली से संबंधित प्रावधान है जो उपभोक्ताओं को राहत प्रदान करता है। इस अधिनियम की धारा 2(ख) के अनुसार शिकायतकत्र्ता की अवधारणा की व्याख्या की गयी है जिसके अंतर्गत लोगों के बड़े समूह या संगठन भी शिकायतकत्र्ता हो सकते हैं। इसके अनुसार शिकायत सिर्फ उपभोक्ता के द्वारा ही दर्ज नहीं किया जा सकता, बलिक इसे कोई पंजीकृत स्वैचिछक उपभोक्ता संघ भी दर्ज कर सकता है चाहे संबंधित व्यकित उसका सदस्य हो या न हो। इसके अलावा, केंद्र तथा राज्य सरकार को भी उपभोक्ता के अधिकार के रक्षोपाय हेतु शिकायत दर्ज कराने का अधिकार है। अधिनियम के अनुसार शिकायत एक या अधिक उपभोक्ता भी दर्ज करा सकते हैं जहां उन उपभोक्ताओं के एक समान हित प्रभावित हो रहे हों। यदि किसी की मृत्यु हो गयी है और उसने अपने जीवन काल में ऐसी शिकायत की है तो उसके उत्तराधिकारी या प्रतिनिधि को भी इस संदर्भ में शिकायत दर्ज कराने का अधिकार होगा। कानूनी उत्तराधिकार या प्रतिनिधि द्वारा भी शिकायत दर्ज कराया जा है। अधिनियम के अनुसार शिकायत उस तिथि से दो वर्ष के अंदर दर्ज कराना आवश्यक है जिस दिन इस तरह की अनियमितता स्पष्ट हुई है। जबकि कुछ मामलों में देर से शिकायत दर्ज करने पर भी उसे स्वीकार किया जा सकता है यदि शिकायत निवारण तंत्र देरी के समुचित कारणों से संतुष्ट हों। ऐसी देरी को स्वीकार करने में अधिकरण की संतुषिट के लिए विशेष कारणों को रिकार्ड भी किया जाता है। इसलिए एक उपभोक्ता वस्तुओं के विक्रेता के साथ-साथ वस्तुओं के निर्माताओं के खिलाफ दोषपूर्ण वस्तु पाने की दशा में शिकायत दर्ज कर सकता है। शिकायत दर्ज करने की प्रक्रिया खराब वस्तुओं या खराब सेवाओं की मौदि्रक शकित तथा काम करने के भौगोलिक क्षेत्र द्वारा निर्धारित होता है। दूसरे शब्दों में, वस्तुओं से संबंधित विभिन्न मौदि्रक कीमतों का उचित राशि की शिकायत के लिए उपयुक्त उपभोक्ता फोरम निर्धारित है, जैसे जिला फोरम, राज्य फोरम तथा राष्ट्रीय फोरम। इसी प्रकार कार्रवाई के न्यायिक क्षेत्राधिकार की सिथति भी उस स्थान से निर्धारित होते हैं जिस भौगोलिक क्षेत्र में विपक्षी पार्टी व्यवसाय करती है तथा उसी क्षेत्र में ही शिकायतकत्र्ता के दावों की सुनवाई भी की जाती है।

कार्यप्रणाली

सीपीए 1986 के अंतर्गत उपभोक्ता की शिकायतों को निपटाने के लिए व्यापक व्यवस्था की गई है जिसके अंतर्गत तीन मुख्य आधार हैं जहां उपभोक्ता अपनी लिखित शिकायत उपयुक्त प्राधिकारण के पास दर्ज करा सकती है –

1. गलत एवं प्रतिबंधित व्यापारिक गतिविधियां

गलत व्यापारिक गतिविधियों को अधिनियम में परिभाषित करते हुए कहा गया है कि अपनी वस्तुओं के उपयोग एवं निर्गत करने या सेवाओं को बेचने के लिए किसी भी तरह की धोखेबाजी की कार्रवाई को गलत व्यापारिक गतिविधि माना जाएगा। गलत व्यापारिक गतिविधियों के बारे में अनिशिचत व्याख्या के कारण उपभोक्ता अपने ज्ञान के आधार पर कई गलत व्यापारिक गतिविधियों को उनके हितों के खिलाफ पाते हैं। ऐसी गतिविधियां बड़ी संख्या में हो रही है जो गलत हुए भी सही का आवरण ओढ़े हुए हैं। व्यापारी की ओर से लिखित या मौलिक प्रस्तुतिकरण द्वारा झूठी वस्तु प्रस्तुत कर गलत व्यापारिक गतिविधियां करते हैं। ऐसे प्रस्तुतिकरण या वक्तव्य कुछ निशिचत वस्तु या सेवा के मानक, गुण, श्रेणी, माडल आदि से संबंधित हो सकते हैं।

एक अन्य गलत व्यापारिक गतिविधियां तब नजर आती है जब व्यापारियों द्वारा समय-समय पर झूठी पेशकश या छूट को विज्ञापित किया जाता है। अधिकांश ऐसे पेशकशों जैसे - एक के साथ एक मुफ्त, अतिउच्चतम स्तर प्रतिशत पर छूट, वस्तुओं को घर पहुंचाने की मुफ्त व्यवस्था, पुराने सामान से नए सामान को बदलने की पेशकश आदि में व्यापारी व्यापार से संबंधित मौद्रिक या कीमत स्तर पर झूठा प्रस्तुतिकरण करती है। वस्तु पर अंकित पेशकश ऊपरी कोने पर एक स्टार (*) का चिहन अंकित रहता है जो व्यापारियों द्वारा दिए गए झूठे पेशकश की सच्चाई बतलाता है। इस चिहन (*) के पीछे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि प्राय: उपभोक्ताओं द्वारा इस चिहन को अनदेखा कर दिया जाता है और व्यापारी इस चिहन के आधार पर उपभोक्ता अदालत में अपने द्वारा दिए गए झूठे पेशकश से बच निकलता है। इसलिए यह आवश्यक है कि उपभोक्ता गंभीरता पूर्वक ऐसी पेशकशों की जाँच करे जिससे वे धोखेबाज व्यापारियों से बच सकें।

व्यापारियों द्वारा गलत व्यापारिक गतिविधियों के प्रति झुकाव की प्रवृत्ति एक अन्य प्रकार से तब नजर आती है जब वो अपने सामान की खरीद के साथ कुछ उपहार, पुरस्कार आदि देते हैं। अपनी बिक्री को बढ़ाने के लिए या अपने व्यवसाय का विस्तार करने के लिए लक्षित ऐसी घोषणा प्राय: उपभोक्ताओं को लुभाने के लिए होते हैं जबकि ऐसी पेशकशों पर व्यापारियों एवं उपभोक्ताओं के बीच सामंजस्य का अभाव होता है। सामान्यत: ऐसी पेशकश उपभोक्ताओं को यह कहा जाता है कि अमुक वस्तु के साथ दूसरी वस्तु बिना किसी कीमत के दी जाती है जबकि वास्तविकता यह है कि मुफ्त में दी जाने वाली वस्तु की कीमत उसमें शामिल नहीं की जाती है तो बेची जाने वाली वस्तु के गुण, मानक, माडल आदि में कमी की जाती है जो व्यापारियों के द्वारा पेश की जाती है। आजकल कंपनियों द्वारा एक नया पहलू अपनाया जा रहा है, वह ग्राहकों को अपने निशिचत सामान खरीदने पर एक मिलन पार्टी या देश-विदेश भ्रमण कराने का वादा करते हैं। इसके अलावा, उपभोक्ताओं को लाटरी या भाग्य आधारित खेल के द्वारा कुछ पुरस्कार देने का प्रावधान भी गलत व्यापारिक गतिविधियों की श्रेणी में आता है।

उल्लेखनीय है कि सीपीए 1986 के अंतर्गत गलत व्यापारिक गतिविधियों की व्यापक व्याख्या नहीं की गयी है और न ही इसके विभिन्न पहलुओं को पहचाना गया है। आम धारणा यह है कि कोई भी सिद्धान्तहीन या बईमानी की भावना से व्यापारियों द्वारा उनके व्यवसाय बढ़ाने या उनके उत्पादों को बेचने के लिए उपभोक्ताओं को ठगे जाने की प्रवृति गलत व्यापारिक गतिविधियों को दर्शाती है। इसलिए यह धारणा

आजतक यही बनी हुई है कि उपभोक्ता के हितों को ठेस पहुंचाने वाली गतिविधियां गलत व्यापारिक गतिविधियां होती हैं।

2. दोषपूर्ण वस्तु

सीपीए 1986 के प्रावधानों के अंतर्गत वस्तुओं के 'दोष की व्याख्या की गई है। इसके अनुसार उपभोक्ताओं के आशानुरूप बेचे जाने वाली वस्तु में संरचनात्मक दोष या उसके मानक स्तर में कमी जो कानून के या व्यापारियों के वादे के अनुरूप न हो, दोषपूर्ण वस्तु हैं। अधिनियम के धारा 2(1) (च) वस्तुओं के किसी दोष, गुणों, संख्याओं, क्षमताओं, शुद्धताओं, मानकों आदि में कमी के आधार पर दोषपूर्ण वस्तु की व्याख्या करता है। व्यवहारत: इस कानून के तहत यही कहा गया है कि या तो निशिचत उत्पादों के गुणों का अनुपालन हेतु कानून बने या व्यापारी स्वयं इस शर्त का पालन करे कि वह वस्तुओं की गुणवत्ता बनाए रखेंगे, जिससे उपभोक्ताओं को उनके आशानुरूप वस्तुएं मिल सके। वस्तु निर्माता की तरफ से या व्यापारी के तरफ से किसी भी प्रकार के दोषपूर्ण सामान की प्रापित होने पर उपभोक्ता उपयुक्त फोरम के पास मुआवजा मांगने जा सकता है।

सेवा में गिरावट

जिस प्रकार वस्तुओं की दोषपूर्ण सिथति उसकी संरचनात्मक बनावट में गुणों की कमी पर आधारित है उसी प्रकार सेवा में गिरावट सेवा प्रदाताओं द्वारा दी गई असंतुष्ट सेवा पर आधारित है। अधिनियम के धारा 2(1) (छ) के अंतर्गत कहा गया है कि सेवा में आए किसी प्रकार के दोष, अक्षमता, गुणों में कमी, प्रकृति में कमी, मानक तथा भूमिका में कमी जिसमें सुधार की गुंजाइश हो, दोषपूर्ण सेवा के अन्तर्गत आता है। इसलिए दोषपूर्ण सेवा का विस्तार बिक्री प्रमाणपत्र से लेकर परीक्षण प्राधिकरण द्वारा जांचों ं के जांच परिणाम देरी से निकालने तक है। इसका अपवाद यह है कि सेवा की कीमत के मामले में उपभोक्ता किसी प्रकार की शिकायत या दावा नहीं कर सकता।

4.4 उपभोक्ता संरक्षण परिषद

उपभोक्ता सुरक्षा नीतियों का विभिन्न स्तर पर समीक्षा करने तथा भारतीय समाज में उपभोक्ता अधिकार को मजबूती प्रदान करने की वकालत करते हुए, सी. पी. ए. 1986, राज्य तथा राष्ट्र स्तर पर तीन उपभोक्ता संरक्षण परिषद की स्थापना का प्रावधान करता है । इसमें निजी सहभागिता पर भी जोर दिया गया है जो उपभोक्ता अधिकार संरक्षण के क्षेत्र की नीतियों को बेहतर सुविधा प्रदान कर सके। केंद्रीय परिषद जिसमें एक अध्यक्ष एवं कुछ अन्य सरकारी एवं गैर सरकारी सदस्य, (केंद्र सरकार के उपभोक्ता मामलों के विभाग से संबंधित मंत्री) जिन्हें समय-समय पर इस हेतु निर्धारित किया जाता है, होंगे। यह अति महत्वपूर्ण है कि विभिन्न हित समूहों से संबंधित नागरिक एवं संगठन जो उपभोक्ता अधिकार के लिए तत्पर रहते हैं, का यदि

ऐसी परिषदों में प्रतिनिधित्व हो तो परिषदों में सरकारी अधिकारियों के साथ वे सहयोगी हो सकते हैं और वे उपभोक्ता के अधिकारों की सुरक्षा के लिए आवाज भी उठा सकते हैं।

उपभोक्ता सुरक्षा परिषद का मूल उद्देश्य उपभोक्ता के अधिकारों की सुरक्षा तथा प्रोत्साहन के लिए नीतियों एवं कार्यक्रमों को विभिन्न स्तर पर अपनाने के लिए सरकार की मदद करना है। इस उद्देश्य के लिए परिषद को दो वर्ष में कम-से-कम एक मीटिंग करना अनिवार्य है। एक तरफ परिषद उपभोक्ता के अधिकार के संरक्षण तथा प्रोत्साहन के लिए लक्षित सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों की देखभाल का काम करती है तो दूसरी तरफ समाज के उपभोक्ताओं के सामान्य हितों के विकास के लिए भी काम करती है।

4.5 जिला, राज्य एवं केन्द्रीय फोरम

उपभोक्ताओं की शिकायतों को प्रभावी ढंग से निबटाने हेतु सी.पी.ए. 1986 ने जिला, राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर उपभोक्ता विवाद निवारण न्यायिक इकाई का गठन भी किया है। इन एजेंसियों का गठन उनके अधिकार के अनुरूप उपयुक्त सरकार करती है। सामान्यत: उपभोक्ताओं की शिकायत निम्न स्तर की इकाई से होकर ही जाती है और उच्चतर इकाई के पास मामले सिर्फ अपील के रास्ते जा सकते हैं। राष्ट्रीय आयोग के आदेश के विरूद्ध अंतिम अपील सर्वोच्च न्यायालय में की जा सकती है जिसके द्वारा मामले के संबंध में दिए गए निर्णय अंतिम होंगे और वो सभी पक्षों के लिए बाध्यकारी होंगे। इन न्यायिक इकाइयों में सुनवाई सी.पी.ए. 1986 के नियमों के अनुरूप होती है जो सामान्य न्यायिक सिद्धांत के समान होता है। ये एजेंसी शिकायतों की सुनवाई जल्द-से-जल्द करती हैं। ऐसे मामलों की सुनवाई 5 महीने के भीतर करनी होती है। इस प्रकार ये एजेंसी आम उपभोक्ताओं को कम खर्चीला तथा त्वरित न्याय दिलाने का काम करती हैं।

जिला उपभोक्ता विवाद निवारण फोरम (जिला फोरम)

उपभोक्ता विवाद निवारण एजेंसी के पादानुक्रम में सबसे नीचे की एजेंसी जिला फोरम है जिसकी स्थापना शिकायतों का न्यायिक निपटारा करने हेतु किया गया है जहां मुआवजा की राशि बीस लाख रूपये से अधिक नहीं होगी। सामान्यत: जिला फोरम में एक अध्यक्ष तथा दो अन्य सदस्य होते हैं। अध्यक्ष पद पर वही व्यकित नियुक्त होते हैं जो वत्र्तमान में या पूर्व में जिला न्यायाधीश रहे हों या उसके बनने योग्य हों और उसकी नियुकित राज्य सरकार करती है। अन्य दो सदस्य शिक्षा, व्यापार या वाणिज्य के क्षेत्र से संबंधित होने चाहिएं और इनमें से एक का महिला होना आवश्यक है। शैक्षणिक स्तर पर जिला फोरम के सदस्यों के लिए कम-से-कम स्नातक होना जरूरी होगा। जिला फोरम को निष्पक्ष तथा स्वायत्त रूप से कार्य करने के लिए राज्य सरकार इसके सदस्यों की नियुकित एक चुनाव समिति के सुझाव पर करती है। इस चुनाव समिति में राज्य उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग के अध्यक्ष, विधि विभाग के सचिव, राज्य के उपभोक्ता मामलों को देखने

वाले विभाग के सचिव होते हैं। सदस्यों का कार्यकाल 5 वर्ष तक या 65 वर्ष की आयु तक होता है किंतु सदस्यों के पुन: उसी पद पर नियुकित का प्रावधान नहीं है।

जिला फोरम के न्यायिक क्षेत्राधिकार में किसी भी मामले को भेजने से पहले उस मामले की योग्यता एवं उपयुक्तता की जांच शिकायत फोरम करती है तभी जिला फोरम में शिकायत दर्ज की जाती है। लिखित शिकायत के साथ-साथ शिकायतकत्र्ता को फोरम द्वारा शिकायत दर्ज करने से पहले उपयुक्त शुल्क देना भी आवश्यक है। एक बार शिकायत दर्ज होने के बाद फोरम शिकायत की एक कापी विपक्षी पार्टी को भेजता है जिसमें उसे 30 दिनों के भीतर शिकायत के प्रति जवाब देने को कहा जाता है। इसकी अवधि को अधिकतम 15 दिन और बढ़ाया जा सकता है। सामान्यत: शिकायत के जवाब में विपक्षी पार्टी शिकायत की अवहेलना नहीं करता। इस प्रकार जिला फोरम अर्धन्यायिक फोरम की तरह निष्पक्ष एवं स्वतंत्र होकर काम करता है। पार्टी के दावों एवं प्रत्यक्ष दावों की जांच हेतु फोरम जांच, परख और वैज्ञानिक मदद ले सकता है।

एक बार जिला फोरम द्वारा जांच प्रक्रिया पूरी होने के बाद अंतिम निर्णय पर किसी दस्तवेजी साक्ष्य की उपलब्धता के आधार पर पहुंचता है। यह विपक्षी पार्टी द्वारा शिकायतकत्र्ता से एक उपयुक्त रास्ते के अंतर्गत मामले सुलझाने के लिए उचित आदेश जारी कर सकता है। जिला फोरम द्वारा प्रयोगशाला में जांच-पड़ताल के बाद शिकायतकर्ता को या तो उस वस्तु की कीमत या सेवा में लगी खर्च के भुगतान के रूप में राहत दी जाती है। अधिनियम के धारा 14 के प्रावधान से अधिक की राहत जिला फोरम नहीं दे सकती है। जिला फोरम के निर्णय से असहमति रखने पर विपक्षी पार्टी इस आदेश के खिलाफ राज्य उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग के पास तीस दिनों के अंदर अपील कर सकती है। इस अवधि में राज्य आयोग उसी शर्त पर छूट दे सकता है यदि आयोग के पास इसकी देरी के लिए पर्याप्त कारण उपलब्ध हों और वो इससे संतुष्ट हो।

राज्य उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (राज्य आयोग)

राज्य उपभोक्ता निवारण आयोग राज्य के अधीन उपभोक्ताओं के दावों के निवारण की मध्यस्थता एजेंसी की तरह काम करता है। इसके अंतर्गत एक अध्यक्ष तथा दो सदस्य होते हैं। अध्यक्ष पद पर वही नियुक्त होंगे जो उच्च न्यायालय के जज की अर्हता रखते हों तथा अन्य दोनों सदस्यों के लिए अर्थशास्त्र, विधि, उधोग, प्रशासन आदि का अनुभव होना जरूरी है तथा इन दोनों में से एक महिला होना आवश्यक है। वर्तमान में, राज्य आयोग में उच्च न्यायालय के सेवानिवृत जज ही नियुक्त होते हैं। इस आयोग का न्यायिक क्षेत्र मूलत: तीन प्रकार के हैं - वास्तविक, अपीलीय तथा निरीक्षणीय। वास्तविक न्यायिक क्षेत्र के अंतर्गत आयोग उन शिकायतों की सुनवाई कर सकता है जिसमें वस्तु या सेवाओं का मूल्य एवं मुआवजा की राशि बीस लाख रूपये से लेकर एक करोड़ की राशि तक की ही हो। अपीलीय न्यायिक क्षेत्राधिकार के अंतर्गत राज्य आयोग जिला फोरम के आदेशों के खिलाफ अपील की सुनवाई कर सकता है। निरीक्षणीय न्यायिक

क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आयोग उन सभी निर्णयों की रिपोर्ट को मंगा सकती है जो उपभोक्ता विवाद के मामले में राज्य के जिला फोरम द्वारा तैयार की गयी हो या उसके पास लंबित पड़ी हो। आयोग द्वारा इस शकित का इस्तेमाल तब जरूरी हो जाता है जब आयोग पाता है कि जिला फोरम ने अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण किया है या किसी न्यायिक निर्णय पर पहुंचने में वह असफल रहा है या गैर कानूनी ढंग से काम किया है या उसके द्वारा उसमें अनियमितता बरती गई है। इसके अलावा, राज्य आयोग किसी शिकायत के आधार पर या खुद ही किसी भी स्तर पर लंबित दावे को राज्य के अंदर के एक जिला फोरम से दूसरे जिला फोरम में न्याय के हित की रक्षा हेतु भेज सकता है।

उल्लेखनीय शिकायत निपटारे का काम राज्य आयोग भी जिला फोरम की ही तरह करता है। राज्य आयोग के किसी भी निर्णय से असंतुष्ट रहने पर व्यकित राष्ट्रीय आयोग के पास राज्य आयोग के आदेश निर्गत होने से तीस दिनों के अंदर की अवधि के भीतर अपील कर सकता है।

राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (राष्ट्रीय आयोग)

पूरे देश में उपभोक्ता विवादों के मामलों को निपटाने हेतु सी.पी.ए. 1986 द्वारा सर्वोच्च इकाई के रूप में राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग की अवधारणा विकसित की गई और एक राष्ट्रीय आयोग की स्थापना दिल्ली में की गई। इसके एक अध्यक्ष तथा चार अन्य सदस्य होते हैं जिसमें एक महिला का होना अनिवार्य है। अध्यक्ष पद पर वही व्यकित नियुक्त हो सकेगा जो सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के लिए अर्ह होगा तथा अन्य सदस्यों के लिए राज्य आयोग के सदस्य की तरह अर्थशास्त्र, विधि, उधोग, प्रशासन आदि क्षेत्र में अनुभव होना आवश्यक है। राज्य आयोग की ही तरह राष्ट्रीय आयोग के अधिकार क्षेत्र तीन प्रकार के हैं - वास्तविक, अपीलीय तथा निरीक्षणीय। वास्तविक अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत राष्ट्रीय आयोग उन्हीं मामलों की सुनवाई कर सकता है जिसमें वस्तु या सेवा का मूल्य एवं मुआवजा की राशि एक करोड़ रूपये से अधिक हो। अपीलीय अधिकार के अंतर्गत किसी भी राज्य आयोग के निर्देश के खिलाफ अपील की सुनवाई राष्ट्रीय आयोग कर सकता है। निरीक्षणीय अधिकार के अंतर्गत राष्ट्रीय आयोग किसी भी रिकार्ड की मांग कर सकता है और उपभोक्ता विवाद के मामले में उपयुक्त निर्णय भी दे सकता है जो किसी भी राज्य आयोग में निर्णय आने की प्रतीक्षा में लंबित पड़ा हो। राष्ट्रीय आयोग द्वारा ऐसी शकित का प्रयोग तब किया जाता है जब कमीशन पाता है कि राज्य आयोग ने अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर काम किया है या अपने न्यायिक क्षेत्र का पालन करने में असफल हुआ हो या गैरकानूनी ढंग से मामले को निपटाया हो। राष्ट्रीय आयोग किसी भी शिकायतकर्ता के आवेदन पर या स्वयं ऐसा पाने पर किसी भी लंबित मामले को एक राज्य के जिला फोरम से दूसरे राज्य के जिला फोरम में भेज सकता है, यदि आयोग को लगता है कि ऐसा करने से प्राकृतिक न्याय मिल सकेगा।

राष्ट्रीय आयोग उपभोक्ता विवाद निवारण के लिए सर्वोच्च संस्था के रूप में काम करता है और इसके द्वारा दिए गए निर्णय अधिनस्थ एजेंसियों के लिए आदर्श साबित होते हैं। यह अभिलेख न्यायालय और न्याय के सिद्धांत की तरह काम करता है तथा इसके द्वारा लागू किए गए आदेश अन्य प्राधिकरणों के लिए

मानना आवश्यक होता है। उपभोक्ता संरक्षण (संशोधन) अधिनियम, 2002 के अनुसार राष्ट्रीय आयोग को अपने ही आदेश की समीक्षा करने की शकित मिल गई है। किसी भी मामले में कोई भी पक्ष अगर राष्ट्रीय आयोग के फैसले से संतुष्ट नहीं हो तो वे इस फैसले के खिलाफ तीस दिनों के भीतर सर्वोच्च न्यायालय में अपील कर सकता है। सामान्यत: सर्वोच्च न्यायालय में उन्हीं मामलों को लिया जाता है जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने कानून का महत्वपूर्ण प्रश्न माना हो।

देश के विभिन्न स्तरों पर विवाद निवारण प्रणाली के महत्वपूर्ण कार्यों की व्याख्या सी.पी.ए. 1986 के विभिन्न प्रावधानों के अंतर्गत भी गई है। धारा 24 के अंतर्गत कहा गया है कि किस मामले में अपील को प्राथमिकता नहीं दी जा सकती है। जिला फोरम, राज्य आयोग एवं राष्ट्रीय आयोग के आदेश अंतिम होते हैं। विभिन्न फोरमों में शिकायत दर्ज कराने हेतु एक निशिचत अवधि का वर्णन किया गया है। जैसे कि, किसी भी शिकायत के प्रश्न उठने की तिथि से दो वर्ष के अंदर ही किसी भी विवाद निवारण एजेंसी के पास शिकायत दर्ज कराना आवश्यक होगा। इस मामले में देरी होने पर संबंधित पक्ष को उपयुक्त निवारण एजेंसी के पास पर्याप्त कारणों सहित लिखित आवेदन देना होगा। विवाद निवारण एजेंसी को उन शिकायतों को खारिज करने की भी शकित है जो उसे मूर्खतापूर्ण या अव्यवहारिक मामला लगे। इन मामलों में दूसरी पार्टी को मुआवजा के रूप में उचित राशि दिलाया जा सकता है, मगर यह राशि दस हजार रूपये से अधिक नहीं होगा।

शिकायतकर्ता एक उपभोक्ता है या नहीं, के निर्णय हेतु उपभोक्ता फोरम की स्थापना की गई तथा उसे इस मामले से संबंधित शकितयां भी दी गई हैं। उपभोक्ता एजेंसी को शिकायत मिलने के बाद व्यापारी या किसी व्यकित को दंड देने की शकित प्राप्त है। इस दंड के अंतर्गत न्यूनतम एक महिने तथा अधिकतम तीन वर्ष का कारावास या दो हजार रूपये से लेकर दस हजार रूपये तक दंड या दोनों का प्रावधान हैं। अन्य कानूनों के अंतर्गत उपचार के न रहने से सी.पी.ए. 1986 पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। धारा 3 यह सुनिशिचत करती है कि अधिनियम के प्रावधान तत्कालीन अन्य कानूनों के प्रावधानों से तालमेल बिठाकर कार्य करें। परिणामत: शिकायतकर्ता के पास इस बात का पूरा अवसर होता है कि वे अपनी शिकायतों के निवारण के लिए या तो उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम या अन्य कानूनी प्रावधानों के अंतर्गत उपचार मांग करे।

4.6 कंपनी अधिनियम: एक परिचय

कंपनी की परिभाषा एवं विशेषता

शाब्दिक रूप में कंपनी शब्द का अर्थ किसी सामान्य उद्देश्य जैसे व्यापार, दान-पुण्य, खेल-कूद अथवा अनुसंधान आदि के लिए निर्मित व्यक्तियों के एक संघ से है। इस प्रकार प्रत्येक साझेदारी संस्था अपने नाम के साथ कंपनी शब्द जोड़ सकती है। परन्तु यह कंपनी वैधानिक अर्थ में नहीं है। इस इकाई में हम कंपनी शब्द का प्रयोग पूर्णत: वैधानिक अर्थ में ही करेंगे। दूसरे शब्दों में प्रस्तुत इकाई में कंपनी शब्द ऐसे संस्था के लिए है जो कंपनी अधिनियम के अधीन समामेलित हो और जिसके नाम के अंत में प्राय: 'लिमिटेड' शब्द जुड़ा हो। जैसे अशोक लेलैण्ड लिमिटेड, चेन्नई', 'दि इन्डस्ट्रियल फाइनेन्स कारपोरेशन ऑफ इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली।' यह ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि एक कंपनी व्यापारिक अथवा गैर-व्यापारिक किसी भी उद्देश्य से

रजिस्टर्ड कराई जा सकती है, यह इकाई मुख्य रूप से ऐसी कंपनियों से ही संबंधित है जो व्यापार एवं वाणिज्य के उद्देश्य से निर्मित की गई है।

कंपनीकी परिभाषा –

कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 2 (20) के अनुसार, "एक कंपनी का तात्पर्य इस अधिनियम अथवा किसी विगत कंपनी विधि के अधीन निगमित किसी कंपनी से है।"

न्यायधीश के लिण्डले के अनुसार, "कंपनी बहुत से ऐसे व्यक्तियों की संस्था है जो द्रव्य अथवा अन्य कोई संपत्ति एक संयुक्त कोष में जमा करते हैं और इसका प्रयोग किसी व्यापार अथवा उद्योग के लिए करते हैं और उससे उत्पन्न लाभ या हानि को आपस में बाँटते हैं। इस प्रकार का संयुक्त कोष द्रव्य में निर्दिष्ट किया जाता है और यह कंपनी की पूँजी होती है। वे व्यक्ति जो इस पूँजी को जुटाते हैं, कंपनी के सदस्य अथवा शेयरधारी होते हैं। रंजी का वह आनुपातिक भाग जिसका प्रत्येक सदस्य अधिकारी होता है, उसका शेयर कहलाता है। शेयर सदैव अंतरणीय होते है यद्यपि अंतरण के अधिकार पर प्राय: कुछ प्रतिबंध लगे होते हैं।"

श्री हैने के अनुसार, "कंपनी एक समामेलित संस्था है। यह विधान द्वारा निर्मित एक कृत्रिम व्यक्ति है जिसका पृथक अस्तित्व शाश्वत उत्तराधिकार एवं सार्वमुद्रा होती है।"

अत: कंपनी की सामान्य उपयुक्त परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है – "कंपनी एक ऐसी सम्मामेलित संस्था है जिसका एक कृत्रिम वैधानिक व्यक्तित्व होता है, जिसका अस्तित्व सदस्यों से पृथक अविच्छिन्न होता है, जिसकी एक सार्वमुद्रा होती है, सदस्यों का दायित्व सामान्यतया सीमित होती है तथा जिसकी पूँजी अंतरणीय शेयरों में विभाजित होती है।"

कंपनी की विशेषताएँ

प्राय: सभी परिभाषाओं के अंतर्गत कंपनी के विभिन्न वैधानिक पहलुओं को स्पष्ट किया गया है। उक्त परिभाषाओं के आधार पर कंपनी की निम्नलिखित आधारभूत विशेषताएँ कहीं जा सकती है:-

1) **कृत्रिम वैधानिक व्यक्ति :-** कंपनी विधान द्वारा निर्मित एक कृत्रिम व्यक्ति है। कंपनी को कृत्रिम वैधानिक व्यक्ति इसलिए कहा जाता है कि एक ओर तो इसका जन्म अप्राकृतिक तरीके से होता है और दूसरी ओर प्राकृतिक व्यक्ति की तरह इसके अधिकार एवं दायित्व होते हैं। यह अदृश्य, अमूर्त और अमर है। केवल वैधानिक तरीका द्वारा ही एक कंपनी को समाप्त किया जा सकता है। कानूनी रूप से कंपनी द्वारा संपत्ति को प्राप्त किया जा सकता है एवं बेजा जा सकता है, यही प्राकृतिक

व्यक्तियों की एजेन्सी के माध्यम से अनुबंध कर सकती है तथा कंपनी अधिनियम के प्रावधानों का पालन न करने पर इस पर जुर्माना किया जा सकता है।

2) **समामेलित संघ :-** कंपनी का कंपनी अधिनिमय के अधीन समामेलन होना अनिवार्य है। पंजीकरण द्वारा ही एक संयुक्त पूँजी कंपनी का निर्माण होता है। ऐसी सभी संघों अथवा साझेदारी संस्थाओं का पंजीकृत होना अनिवार्य होता है जिनकी स्थापना लाभार्जन के उद्देश्य से व्यापार करने के लिए की गई हो एवं जिसमें 50 से अधिक सदस्य हैं।

3) **पृथक वैधानिक अस्तित्व :-** कंपनी अपने सदस्यों से पूर्णतथा भिन्न स्वतंत्र कानूनी व्यक्तित्व रखने वाली वैधानिक व्यक्ति होती है। इसे सम्पत्तियों का स्वामित्व ग्रहण करने तथा हस्तांतरण करने का पूर्ण अधिकार होता है। कोई भी सदस्य कंपनी की संपत्तियों में व्यक्तिगत या संयुक्त रूप से अपने स्वामित्व का दावा नहीं कर सकता। कंपनी द्वारा किए गए कार्यों के लिए कंपनी स्वयं उत्तरदायी होती है, इसके लिए सदस्य उत्तरदायी नहीं होते। कंपनी अपने नाम से अपने सदस्यों तथा बाहरी पक्षों पर वाद कर सकती है तथा इस पर वाद किया भी जा सकता है। कंपनी के ऋणदाता केरल कंपनी से ही अपना पैसा लेने के अधिकारी हैं, सदस्यों से नहीं।

4) **शाश्वत अस्तित्व : -** प्रोफेसर गावर के शब्दों में – "एक युद्ध के दौरान एक निजी कंपनी के सभी सदस्य, जो कि एक सभा में उपस्थित थे, एक बम द्वारा मारे गये, परन्तु फिर भी कंपनी जीवित रही हाइड्रोजन बम भी कंपनी को समाप्त नहीं कर सका।" अंत: कंपनी का चिरस्थायी अस्तित्व भी व्यावसायिक संगठन के प्रारूप का एक महत्वपूर्ण लक्षण है। इसका जीवन इसके सदस्यों अथवा संचालनकों के जीवन पर निर्भर नहीं करता है। कंपनी के सदस्य चाहे बदलते रहें परन्तु कंपनी निर्विघ्न चलती रहती है। शेयरधारक द्वारा सदस्यता छोड़ने की दशा में शेयरों के हस्तांक्षरण का प्रावधान तथा किसी शेयरधारक की मृत्यु की दशा में अंशों के हस्तांकनका प्रावधान कंपनी के शाश्वत अस्तित्व का संरक्षण करता है। सदस्यों की मृत्यु, दिवालियापन या पागल हो जाने का कंपनी के अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है कंपनी वही संस्था बनी रहती है जो पहले थी।

5) **सार्वमुद्रा :-** चूँकि कंपनी एक कृत्रिम व्यक्ति है, अत: यह प्रपत्रों पर हस्ताक्षर करने के अयोग्य है। यह अपने संचालकों के माध्यम से कार्य करती है। परन्तु एक पृथक अस्तित्व होने के कारणयह केरल ऐसे ही प्रपत्रों से बाध्य होनी चाहिए जिन पर इसके हस्ताक्षर हों। अधिनियम के अधीन प्रत्येक कंपनी के पास अपने नाम की एक सार्वमुद्रा होती है जिसका प्रयोग कंपनी के हस्ताक्षर के स्थान पर किया जाता है। अत: सार्वमुद्रा कंपनी के हस्ताक्षर का काम करती है। कंपनी केवल उन्हीं प्रपत्रों से कानूनी रूप में बाध्य होती है जिन पर उसकी सार्वमुद्रा लगी हो।

6) **सीमित दायित्व :-** कंपनी की यह भी एक विशेषता है कि इसके शेयरधारकों का दायित्व उनके द्वारा खरीदेगये शेयरों की अदत्त राशि तक ही सीमित होता है। इसके अतिरिक्त कंपनी के दायित्वों

का भुगतान करने के लिए सदस्यों से कुछ भी नहीं मांगा जा सकता है चाहे कंपनी में कितनी ही हानि क्यों न हो। इस प्रकार एक सीमित दायित्व वाली कंपनी में किसी भी शेयरधारी का दायित्व उसके द्वारा खरीदे गए शेयरों के अंकित मूल्य तक ही सीमित होता है और यदि कोई पूर्णदत्त शेयरों का स्वामी है तो कंपनी के दायित्वों की पूर्ति हेतु उसकी नीजि सम्पत्ति नहीं हड़पी जा सकती है।

7) **शेयरों की अंतरमीयता :-** एक सार्वजनिक कंपनी के शेयरों का बिना किसी प्रतिबंध के अंतरण किया जा सकता है। ऐसी कंपनी के सदस्य अपेन शेयरों का इच्छा नुसार किसी भी व्यक्ति को बेच सकते हैं, धारा 2 (68) के अनुसार निजी कंपनी के अंतरर्नियमों में शेयरों के अन्तरण पर कुछ प्रतिबंध अनिवार्य है परन्तु अन्तरर्नियमों में सदस्यों द्वारा अंशों का अन्तरण किये जाने पर पूर्ण प्रतिबंध लगाया जाना व्यर्थ होगा।

कंपनी अधिनियम के सिद्धांत :-

भारतीय कंपनी अधिनियम कुछ सिद्धांतों पर आधारित हैं। इन सिद्धांतों का क्रमवार विश्लेषण निम्नलिखित हैं:

1) **विशिष्ट उद्देश्य :** प्रत्येक कंपनी की स्थापना कुछ विशिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया जाता है। कंपनी की समस्त क्रियायें इन्हीं विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए की जाती है। कंपनी के उद्देश्यों से भिन्न की गई क्रियायें व्यर्थ मानी जाती है, जिसके लिए कंपनी को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है।
2) **लोकतांत्रिक प्रबंधन :-** कंपनीकी प्रबंधन व्यवस्था कंपनी के सदस्यों द्वारा निर्वाचित व्यक्तियों के द्वारा की जाती है जिन्हें कंपनी के संचालन के नाम से जाना जाता है। संचालकों के कार्य से संतुष्ट न होने पर सदस्य कभी भी संचालकों को उनके पद से हटा सकते हैं।
3) **सीमित दायित्व :-** यह कंपनी का आधारभूत सिद्धांत है। इस सिद्धांत के अनुसार कंपनी के सदस्यों का दायित्व उनके द्वारा क्रय किये गये अंशों के अंकित मूल्य तक ही सीमित रहता है, उससे अधिक सदस्यों से मांग नही की जा सकती है चाहे कंपनी को कितना ही नुकसान क्यो न थे।
4) **अल्पमता एवं विनियोक्ताओं के हितों की सुरक्षा :-** कंपनी अधिनियम के अंतर्गत अल्पमत वाले सदस्यों एवं विनियोक्ताओं के हितोंकी सुरक्षा के लिए कंपनी अधिनियम में विभिन्न प्रावधानों का समावेश किया गया है।
5) **पृथक अस्तित्व :-** कंपनी का अस्तित्व उसके सदस्यों से पृथक रहता है। कंपनी द्वारा किये गये समस्त कार्यों के लिए कंपनी स्वयं एवं सदस्यों द्वारा किये गये कार्यों के लिए सदस्य स्वयं उत्तरदायी रहात है। दोनों एक दूसरे को अपने द्वारा किये गये कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं बना सकते।

6) **शाश्वत अस्तित्व :-** कंपनी का अस्तित्व शाश्वत एवं चिरस्थायी होता है। नये सदस्यों के आने तथा पुराने सदस्यों के जाने से कंपनी के अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। किसी सदस्य के दिवालिया में जाने, पागल हो जाने, मृत्यु हो जाने आदि घटनाओं का कंपनी के अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
7) **अंशों का हस्तांतरण :-** कंपनीमें उसके अंतरनियमों के अधीन अंश हस्तांतरणीय होते हैं अर्थात अंशधारी अपने द्वारा धारित किये गये समस्त अथवा कुछ अंशों का हस्तांतरण कर सकता है।
8) **नियंत्रण, निरीक्षण, पर्यवेक्षण एवं जाँच :-** कंपनी के मामलों में नियंत्रण, निरीक्षण, पर्यवेक्षक एवं जाँच का आदेश केन्द्रीय सरकार अथवा न्यायालय द्वारा किया जा सकता है तथा दोषी व्यक्ति को अनियमितता के लिए दंडित किया जा सकता है।
9) **समामेलन एवं समापन :-** कंपनी का समामेलन एवं समापन दोनों ही कार्य कंपनी अधिनियम के अंतर्गत ही किया जा सकता है।
10) **सामूहिक स्वामित्व :-** कंपनी पर किसी व्यक्ति विशेष का स्वामित्व न होकर व्यक्तियों के समूह जो कंपनी के अंशधारी होते हैं, का स्वामित्व होता है। व्यक्तियों का यह समूह अपने अधिकारों का उपयोग पृथक-पृथक न कर कंपनी की सभा में प्रस्ताव पारित कर करता है।
11) **पृथक्करण का सिद्धांत :-** यह कंपनी का आधारभूत सिद्धांत है। इस सिद्धांत के अनुसार कंपनी का स्वामित्व एवं प्रबंधन भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के पास हो सकता है।
12) **न्याय एवं समता :-** कंपनी में समान प्रकार के ऋणदाताओं तथा अंशधारियों के साथ न्यायपूर्ण एवं समानता का व्यवहार किया जाता है।
13) **सार्वमुद्रा का उपयोग :-** कंपनी के समस्त दस्तावेजों एवं प्रलेखों तथा कंपनीके अधिकारियों द्वारा किये गये हस्ताक्षरों के साथ कंपनी की सार्वमुद्रा का उपयोग करना आवश्यक होता है क्योंकि कंपनी की सार्वमुद्रा कंपनी के हस्ताक्षर तथा उसके अस्तित्व का प्रतीक होता है। ऐसा अनुबंध जिसपर कंपनी की सार्वमुद्रा अंकित नहीं है, के लिए कंपनी को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है।

कंपनियों का वर्गीकरण :-

कंपनियों का वर्गीकरण विभिन्न दृष्टिकोणों से किया जा सकता है: -

1. समामेलन की रीति के अनुसार
2. सदस्यों की संस्था के आधार पर
3. सदस्यों के दायित्व के आधार पर
4. कंपनियों के अन्य भेद

समामेलन की रीति के अनुसार कंपनियों के प्रकार :-

एक कंपनी का समामेलन या हो संसद, या विधानमंडल के विशेष अधिनियम द्वारा या कंपनी अधिनियम के अंतर्गत हो सकता है। समामेलन की रीति के अनुसार, कंपनियों के दो प्रकार होते हैं;

i. वैधानिक कंपनी
ii. समामेलित कंपनी

i. वैधानिक कंपनी :- ये वे कंपनियाँ हैं, जिनका समामेलन संसद या राज्य के विधानमंडल द्वारा पारित किये गये एक विशेष अधिनियम के अंतर्गत होता है। ऐसे कंपनियों का निर्माण राष्ट्रीय महत्व के किसी व्यवसाय के लिए किया जाता है। रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, भारतीय खाद्य निगम, भारतीय जीवन बीमा निगम, स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया आदि इस प्रकार के कंपनियों के कुछ उदाहरण हैं, ऐसी कंपनियों के अधिकार एवं कार्यक्षेत्र की सीमाएँ उन विशेष अधिनियमों द्वारा निश्चित होती है जिनके अंतर्गत इनका निर्माण होता है। इन कंपनियों की लेखा परीक्षा भारत के नियंत्रक एवं महालेखा- परीक्षक की देख-रेख एवं नियंत्रण में होता है। प्रत्येक वैधानिक कंपनी उस विशेष अधिनियम के उपबंधों से शासित होती है जिसके अधीन उसका निर्माण हुआ हो परन्तु इन पर कंपनी अधिनियम, 2013के उपबंध भी उस सीमा तक लागू होते हैं जिस तक इन कंपनियोंके लिए बताए गए विशेष अधिनियम उनका विरोध नहीं करते।

ii. समामेलित कंपनी :- ऐसी कंपनी जिसका समामेलन कंपनी अधिनियम के अंतर्गत किया गया हो, पंजीकृत अथवा समामेलित कंपनी कहलाता है। वैधानिक कंपनियों को छोड़कर भारत में सभी कंपनियों का निर्माण इसी प्रकार हुआ है। इन कंपनियों के उपबंधों का शासन कंपनी अधिनियम, 2013 द्वारा होता है। बैंकिंग, बीमा और बिजली पूर्ति, कंपनियों का समामेलन यद्यपि कंपनी अधिनियम के अंतर्गत होता है तथापि उनके नियमन के लिए अलग से भी विशेष अधिनियम बने हुए हैं, उदाहरणार्थ बैंकिग विनियमन अधिनियम, 1949, बीमा अधिनियम, 1938, बीमा विनियामक एवं विकास प्राधिकरण अधिनियम, 1999, और बिजली अधिनियम 2003। इन कंपनियों पर कंपनी अधिनियम 2013 के उपबंध केवल उस सीमा तक ही लागु होते हैं, जिस तक इन कंपनियों के लिए बनाये गये विशेष अधिनियम उनका विरोध नहीं करते।

समामेलित कंपनियों को भी दो प्रकार से विभाजित किया जा सकता है :

i. सदस्यों की संख्या के आधार पर
ii. सदस्यों की दायित्व के आधार पर

सदस्यों की संख्या के आधार पर पंजीकृत कंपनियों के प्रकार :-

सदस्यों की संख्या के आधार पर पंजीकृत कंपनियों के निम्नलिखित तीन प्रकार हो सकते हैं :

i. निजी कंपनी
ii. सार्वजनिक कंपनी
iii. एकजन कंपनी

i. **निजी कंपनी :-** कंपनी (संसोधन) अधिनियम 2015, द्वारा संशोधित धारा 2 (68) के अनुसार, "एक निजी कंपनी का आशय ऐसी कंपनी से है जो इतनी न्यूनतम प्रदत्त शेयर पूँजी रखती हो, जो निर्धारित की जाए तथा जो अपनी अंतर्नियमावली द्वारा का सदस्यों के अपने शेयरों के अंतरण के अधिकार पर प्रतिबंध लगाती है"

क) सदस्यों के अपने शेयरों के अंतरण के अधिकार पर प्रतिबंध लगाती है : -
ख) अपने सदस्यों की संख्या 200 तक सीमित रखती है –
ग) अपनी प्रतिभूतियों को खरीदने के लिए जनता को आमंत्रित करने का निषेध करती है।

सदस्यों की गणना करने के संबंध में यह धारा बताती है :-

i. ऐसे व्यक्ति जो कंपनी के कर्मचारी हैं, सदस्यों की संख्या में नहीं गिने जायेंगे :
ii. ऐसे व्यक्ति जो पहले कंपनी के कर्मचारी के साथ-साथ सदस्य भी थे और अब कर्मचारी न होते हुए भी सदस्य बने हुए हैं, सदस्यों की संख्या में नहीं गिने जायेंगे ; तथा
iii. यदि कंपनी में दो या दो से अधिक व्यक्ति संयुक्त रूप से एक था अधिक शेयर लेते हैं तो उन्हें एक ही सदस्य माना जायेगा।

एक निजी कंपनी के निर्माण के लिए सदस्यों की न्यूनतम संख्या है। ऐसी कंपनी को अपने नाम के साथ 'प्राइवेट' शब्द जोड़ना आवश्यक होता है।

ii. **सार्वजनिक कंपनी (Public Company) :-** कंपनी (संशोधन) अधिनियम, 2015 द्वारा संशोधित धारा 2 (71) के अनुसार, "सार्वजनिक कंपनी" का आशय एक ऐसी कंपनी से है जो–

क) एक निजी कंपनी नहीं है।
ख) निर्धारित न्यूनतम प्रदत्त शेयर पूँजी रखती है।
ग) ऐसी कंपनी की सहायक है जो निजी कंपनी नहीं है।

साथ ही सार्वजनिक कंपनी वह है :-

i. जिसके शेयरों के अंतरण पर कोई प्रतिबंध नहीं होता।
ii. जिसके सदस्यों की अधिकता संख्या संबंधी कोई प्रतिबंध नहीं होता।
iii. जो अपनी प्रतिभूतियों को खरीदने के लिए जनता को आमंत्रित कर सकती है।

यह उल्लेखनीय है कि एक निजी कंपनी जो किसी सार्वजनिक कंपनी की सहायक कंपनी है उसे सार्वजनिक कंपनी माना जायेगा चाहे वह अपनी अंतर्नियमावली में निजी कंपनी बनी रहे।

सार्वजनिक कंपनी के निर्माण के लिए कम से कम सात सदस्यों का होना आवश्यक है। कंपनी (संशोधन) अधिनियम, 2015 के लागू होने से पूर्व सार्वजनिक कंपनी के समामेलन के लिए न्यूनतम प्रदत्त शेयर पूँजी रू. 5 लाख (पाँच लाख) होना आवश्यक थी। संशोधन अधिनियम ने इस आवश्यक को समाप्त कर दिया जिससे कंपनियों के समामेलन में आसानी होगी।

एक जन कंपनी (One Person Company) :- कंपनी अधिनिमय, 2013 की धारा 2 (68) के अनुसार, "एकजन कंपनी का ऐसी कंपनी होती है जिसमें सदस्य के रूप में केरल एक व्यक्ति होता है।" ऐसी कंपनी का सदस्य एक प्राकृतिक व्यक्ति होगा। इसका समामेलन एक निजी कंपनी की भ्रांति होता है। कंपनी के नाम को छापने लगाने या खुदाई करके लिखे जाने पर नाम के नीचे कोष्ठक में 'एकवचन कंपनी' लिखना आवश्यक होता है।

निर्माण :- एक जन कंपनी को किसी व्यक्ति द्वारा एक निजी कंपनी के रूप में किसी विधिपूर्ण उद्देश्य से बनाया जा सकता है। इसके निर्माण के लिए उसे अपना नाम ज्ञापन-पत्र में लिखना होगा तथा अधिनियम में दी गई पंजियन संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करना होगा।

धारा 3 के अनुसार एकजन कंपनी के ज्ञापन-पत्र में उस अन्य व्यक्ति का भी नाम दिया जायेगा जो अमिदानकर्ता की मृत्यु होने अथवा उसके पागलपन आदि के कारण अनुबंध करने की अक्षमता की दशा में कंपनी का सदस्य बनेगा। ऐसे व्यक्ति की लिखित सहमति को कंपनी रजिस्ट्रार के पास कंपनी का समामेलन कराते समय ज्ञापन-पत्र एवं अन्तर्नियमावली के साथ फाइल करना होगा। ऐसा व्यक्ति अपनी सहमति वापस ले सकता है। सदस्य द्वारा ऐसे व्यक्ति के नाम को भी बदला जा सकता है। सदस्य द्वारा नामांकित किये गये व्यक्ति के नाम के परिवर्तन होने की सूचना निर्धारित समय एवं विधि से कंपनी रजिस्ट्रार के पास भेजी जायेगी। नामांकिती के नाम में होनेवाले किसी परिवर्तन को कंपनी के ज्ञापन-पत्र में परिवर्तन नहीं माना जायेगा।

सदस्यों के दायित्व के आधार पर पंजीकृत कंपनियों के प्रकार :-

कंपनी अधिनियम सदस्यों के दायित्व के आधार पर निम्नलिखित तीन प्रकार की कंपनियों के पंजीकरण की व्यवस्था करता है :-

क) शेयरों द्वारा सीमित कंपनियों
ख) गारंटी
ग) असीमित कंपनियों

ये सभी कंपनियों सार्वजनिक कंपनीया निजी कंपनी या एकजन कंपनी हो सकती है।

क) शेयरों द्वारा सीमित कंपनियों :- कंपनी अधिनियम की धारा 2 (22) के अनुसार, "यदि किसी कंपनी के सदस्यों का दायित्व संस्था के ज्ञापन-पत्र के अधीन सदस्यों द्वारा खरीदे गये शेयरों की अदल राशि, यदि कोई हो तक ही सीमित हो, तो ऐसी कंपनी को शेयर द्वारा सीमित कंपनी कहते है।" सदस्यों के दायित्व का प्रवर्तन कंपनी के जीवनकाल में अथवा उसके समापन के समय किया जा सकता है। ऐसी कंपनी में सदस्यों की दायित्व सीमा उनके द्वारा लिय गये शेयरों के अंकित मूल्य द्वारा ही निश्चित की जाती है। अपने देश में अधिकांश कंपनियों इसी प्रकारकी है और वास्तव में इसी प्रकार की कंपनियों से हम मुख्यत: संबंधित हैं।

ख) गारंटी द्वारा सीमित कंपनियों :- कंपनी द्वारा धारा 2(21) के अनुसार, "यदि किसी कंपनी के सदस्यों का दायित्व उसके ज्ञापन-पत्र के अधीन ऐसी राशि तक सीमित है जितनी उसके सदस्यों ने कंपनी के समापन के समय कंपनी की संपत्ति में देना स्वीकार किया है, तो ऐसी कंपनी को गारंटी द्वारा सीमित कंपनी कहते है।" इस प्रकार की कंपनियों में सदस्यों का दायित्व केवल तभी उत्पन्न होता है जब कंपनी के समापन की प्रक्रिया शुरू हो जाये, जबकि शेयरों द्वारासीमित कंपनियों की दशा में दायित्व, यदि कोई हो, कंपनी के जीवनकाल में एवं समापन के दौरान कभी भी उत्पन्न हो सकती है। उदाहरण के लिए वाणिज्य, कला, विज्ञान, संस्कृति, खेल-कूद आदि को प्रोत्साहन देने के लिए बनायी जानेवाली गैर-व्यापारिक कंपनियों का समामेलन गारंटी द्वारा सीमित कंपनियों के रूप में होता है।

ग) असीमित कंपनियाँ :- कंपनी अधिनियम की धारा 2(92) के अनुसार, "यदि किसी कंपनी के सदस्यों के दायित्व की कोई सीमा न हो तो उसे असीमित कंपनी कहते है।" इस प्रकार की कंपनियों में सदस्यों का दायित्व कंपनी में उनके हित के अनुपात में होता है तथा कंपनी के दायित्व के भुगतान के लिए सदस्यों की व्यक्तिगत संपत्तियों को भी प्रयुक्त किया जा सकता है। इस प्रकार की कंपनी तथा एक साझेदारी संस्था में यह महत्वपूर्ण अंतर होता है कि ऐसी कंपनी के ऋृणदाता भुगतान न मिलने की दशा में कंपनी के सदस्यों पर, साझेदारों के समान, व्यक्तिगत रूप में वाद प्रस्तुत नहीं कर सकते और उन्हें कंपनी पर ही वाद चलाना पड़ता है या कंपनी के समापन की कार्यवाही आरंभ करनी पड़ती है क्योकि पंजीयन होने के कारण कानून की दृष्टि में कंपनी एक पृथक वैधानिक अस्तित्व रखती है। ऐसी कंपनी के सदस्यों को केवल समापन के समय ही दायी ठहराया जा सकता है। इस प्रकार की कंपनी धारा 67 द्वारा लगाए गए प्रतिबंध से मुक्त होती है। ये अपने शेयर खरीद सकती है अथवा अपने शेयर खरीदने के लिए किसी व्यक्ति को अग्रिम राशि दे सकती है। वर्तमान समय में ऐसी कंपनियाँ बहुत कम पाई जाती है।

कंपनियों के अन्य भेद :-

कंपनी अधिनियम में निदिष्ट कंपनियों के कुछ अन्य भेद निम्नलिखित हैं: -

1. **धर्मार्थ उद्देश्य या बिना लाभ वाली कंपनियाँ :-** धर्मार्थ उद्देश्य वाला कंपनियों का पंजीकरण भी अन्य कंपनियों के समान कंपनी अधिनियम के अंतर्गत ही कराया जाता है परन्तु इसके पंजीकरण से पहले केन्द्र सरकार से एक लाइसेन्स प्राप्त करना होता है। यदि व्यक्तियों को कोई समूह

   → वाणिज्य, कला, विज्ञान, खेल-कूद, शोध सामाजिक कल्याण, धर्म, दान-पुण्य, पर्यावरण संरक्षण, अथवा किसी उपयोगी उद्देश्य को प्रोत्साहन देने के लिए आरंभ किया जाने वाला है, तथा

   → उसके लाभ, यदि कोई हो, का उपयोग सदस्यों को लाभांश के रूप में भुगतान करने के बजाय उसके उद्देश्यों को प्रोत्साहन देने के लिए ही किया जाने वाला है,
   तो केन्द्र सरकार ऐसे संगठन को लाइसेन्स प्रदान करती है। इसके बाद वह संगठन अपने को सीमित दायित्व वाली कंपनी के रूप में पंजीकृत करा सकता है। इस प्रकार की कंपनियों को यह छूट रहती है कि वे अपने नामों के साथ 'लिमिटेड' अथवा 'प्राइवेट लिमिटेड' शब्दों का प्रयोग न करें। केन्द्र सरकार द्वारा ऐसे लाइसेन्स की ऐसी कंपनियों के पंजियन के लिए निर्धारित की जाने वाली नियम व शर्तों के अधीन जारी किया जाता है। पंजीयोजन हो जाने पर इस कंपनियों को कुछ छूटें मिलती है तथा कुछ प्रतिबंध भी लगाये जाते हैं।
2. **विदेशी कंपनी :-** 'विदेशी कंपनी' का अभिप्राय एक ऐसी कंपनी अथवा समामेलितनिकाय से है जिसका समामेलन भारत से बाहर हुआ तथा -

   → भारत में जिसके व्यवसाय का स्थान हो जहाँ से व्यवसाय इसके स्वयं द्वारा या एजेन्ट के माध्यम से, भौतिक रूप से या इलेक्ट्रॉनिक पद्धति द्वारा संचालित हो सकता हैं, एवं

   → जो किसी अन्य तरीके से भारत में कोई व्यावसायिक कार्य करती थे।
3. **सरकारी कंपनी** – कंपनी अधिनियम की धारा 2(45) के अनुसार, "सरकारी कंपनी का आशय एक ऐसी कंपनी से है जिसकी प्रदत्त शेयर-पूँजी का कम-से-कम 51 प्रतिशत भाग केन्द्र सरकार या किसी एक या अधिक राज्य सरकारों या अंशत: केन्द्र सरकार तथा अंशत: एक या अधिक राज्य सरकारों के पास है।" इसके अंतर्गत उन कंपनियों को भी सम्मिलित किया जाता है, जो सरकारी कंपनी की सहायक होती है।

4. **नियंत्रक कंपनी एवं सहायक कंपनी** – जब एक कंपनी का किसी अन्य कंपनी के प्रबंधन पर नियंत्रण होता है तो नियत्रंण करने वाली कंपनी 'नियंत्रककंपनी' कहलाती है तथा नियंत्रित कंपनी 'सहायक कंपनी' कहलाती है।

   नियंत्रण कंपनी- कंपनी अधिनियम की धारा 2 (46) के अनुसार, "एक या अधिक अन्य कंपनियों के संबंध में नियंत्रक कंपनी या आशय उस कंपनी से है जिसकी अन्य कंपनियाँ सहायक कंपनिया हैं।"

   सहायक कंपनी- कंपनी अधिनियम की धारा 2 (87) के अनुसार, "किसी अन्य कंपनी (नियंत्रण कंपनी) के संबंध में सहायक कंपनी का आशय एक ऐसी कंपनी से है जिसमें नियंत्रक कंपनी"-

   → संचालन मंडल के गठन पर नियंत्रण करती है; अथवा

   → या तो स्वयं या अपनी एक था अधिक कंपनियों के साथ मिलकर कुल शेयर पूँजी के आधे से अधिकपर नियंत्रण करती है।

5. **सहयोजित कंपनी** – सहयोजित कंपनी की अवधारणा कंपनी अधिनियम, 2013, द्वारा दी गई है। कंपनी अधिनियम की धारा 2 (6) कके अनुसार, "एक अन्य कंपनी के संबंध में सहयोजिता कंपनी का आशय एक ऐसी कंपनी से है जिसमें उस अन्य कंपनी का महत्वपूर्ण प्रभाव हो, लेकिन ऐसा प्रभाव रखने वाली कंपनी की वह सहायक कंपनी नहीं है तथा इसमें संयुक्त उद्यम कंपनी भी शामिल है।"

6. **लघु कंपनी** – कंपनी अधिनियम, 2013 ने निजी कंपनी के उप-वर्ग के रूप में "लघु कंपनी" को जन्म दिया है। कंपनी अधिनियम की धारा 2 (85) के अनुसार, "लघु कंपनी से तात्पर्य, सार्वजनिक कंपनी की छोड़कर ऐसी कंपनी से है।"

   → जिसका प्रदत्त शेयर पूँजी 50 लाख रूपये से अधिक नहीं है या उस उच्चतर रकम से, जो निर्धारित की जाये अधिक नहीं है, जो 5 करोड से अधिक नहीं होगी; अथवा

   → जिसका विगत लाभ-हानि लेखे के अनुसार टर्नओवर 2 करोड रूपये से अधिक नहीं है या उस उच्चतर रकम से, जो निर्धारित की जाये, अधिक नहीं है, जो 20 करोड़ से अधिक नहीं होगी।

7. **निष्क्रिय कंपनी** –कपनी अधिनियम की धारा 455 के अनुसार, "एक ऐसी कंपनी जिसका निर्माण एवं पंजीकरण अनुबंध अधिनियम 2013 के अंतर्गत किसी भावी परियोजना के लिए अथवा किसी संपत्ति या बौद्धिक संपदा को प्राप्त करने के लिए होता है और जिसने कोई महत्वपूर्ण लेखांकन व्यवहार नहीं किया है तो उसे एक निष्क्रिय कंपनी की हैसियत प्राप्त करने क लिए रजिस्ट्रार को आवेदन दे सकती है।"

प्रत्येक निष्क्रिय कंपनी में अपनी निष्क्रिय प्रस्थिति बनाए रखने के लिए यथानिर्धारित न्यूनतम संस्था में संचालक होने आवश्यक होंगे प्रथा ऐसी कंपनी को निर्धारित प्रपत्रोंको फाइल करना होगा तथा वार्षिक मुल्क जमा करना होगा। यदि निष्क्रिय कंपनी निर्धारित आवश्यकताओं को पूरा नहीं करती है तो रजिस्ट्रार द्वारा निष्क्रिय कंपनियों वाले रजिस्टर से ऐसी कंपनी का नाम हटा दिया जायेगा। निष्क्रिय कंपनी निर्धारित प्रपत्रों एवं शुल्क के साथ आवेदन पत्र देकर सक्रियकंपनी बन सकती है।

4.7 कंपनी निर्माण की प्रक्रिया

कंपनी के वैधानिक रूप से जन्म लेने का आशय उस व्यवस्था से लगाया जाता है, जब कंपनी स्वयं अस्तित्व में आ जाती है। कंपनी के अस्तिव में आने के लिए इसका पंजियन कराना तथा इसका प्रमाण-पत्र प्राप्त करना अनिवार्य होता है। इस प्रकार कंपनी का वैधानिक को इस पंजीकृत कराया जाता है। इस तिथि का उल्लेख समामेलन प्रमाण पत्र में होता है। कंपनी के निर्माण के संबंध में अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जैसे –फ्लोटेशन, फारमेशन, इनकारपोरेशन, रजिस्ट्रेशन इत्यादि। कंपनियों का निर्माण एक जटिल प्रक्रिया है।

कंपनी निर्माण की अवस्थाएँ

कंपनी के निर्माण संबंधी कार्यवाही को निम्नलिखित अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है-

1. प्रवर्तन
2. समामेलन अथवा पंजीकरण
3. पूँजी अभिदान

1. **प्रवर्तन :-** प्रवर्तन कंपनी के निर्माण की प्रथम सीढ़ी है। गर्सटनबर्ग के अनुसार, “प्रवर्तन में व्यावसायिक सुअवसरों की खोज की जाती है और तलश्चात लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से पूँजी, संपत्ती तथा प्रबंधन क्षमता को एक व्यावसायिक संगठन के रूप में संगठित किया जाता है।” प्रवर्तन कार्य की शुरूआत उस समय से हो जाती है जब किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के मस्तिष्क में किसी ऐसे व्यावसायिक विचार की उत्पत्ति होती है जो एक कंपनी द्वारा लाभपूर्वक चलाया जा सकता हो तथा इसके बाद विचार की क्रियात्मकता के बारे में प्रारंभिक एवं विस्तृत जाँच, व्यावसायिक तत्वों को एकत्रीकरण और उपक्रम को चालु करने के लिए आवश्यक पूँजी जुटाने की योजना बनाना आदि कार्य भी प्रवर्तन के अंतर्गत सम्मिलित हैं। वह व्‍यक्ति जो उक्त कार्य के संबंध में प्रमुख उत्तरदायित्व लेते हैं, प्रवर्तक कहलाते हैं।

प्रवर्तक

कंपनी अधिनियम की धारा 2 (69) में 'प्रवर्तक' शब्द की परिभाषा दी गयी है। इस परिभाषा के अनुसार प्रवर्तक का आशय ऐसे व्यक्ति से है –

→ जिसका नाम विवरण पत्रिका में इस रूप में लिखा गया हो; अथवा जिसे कंपनी द्वारा वार्षिक विवरणी में पहचान वाया गया हो; अथवा

→ जिसका शेयरधारक, संचालन या अन्यथ रूप में प्रत्यक्ष तथा या अप्रत्यक्षताया कंपनी के काम-काज पर नियंत्रण हो; अथवा

→ जिसकी सलाह, निर्देशों या निदेशों के अनुरूप संचालक मंडल कार्य करता हो।

बोवेन, एल. जे. के शब्दों में, "प्रवर्तक शब्द कानूनी शब्द न होकर व्यापारिक शब्द है, यह अनेक व्यापार संबंधी क्रियाओं को एक शब्द से व्यक्त करता है जो व्यापारिक जगत में प्रचलित है एवं जिनके द्वारा कंपनी सामान्यत: अस्तित्व में लाई जाती है।"

प्राय: प्रवर्तक एक औद्योगिक विशेषज्ञ होता है, जो दक्ष विशेषज्ञों की सहायता से वे सारे प्रारंभिक कार्य करता है जो कंपनी की स्थापना करने से पहले करने आवश्यक हैं। वह जापन-पत्र पर हस्ताक्षर करने तथा प्रथम संचालन बनने को तैयार व्यक्ति का चुनाव करता है। वह कंपनी का नाम उद्देश्य पूँजी एवं पंजीकृत कार्यालय का निश्चय करता है तथा ज्ञापन-पत्र, अन्तर्नियमावली एवं समामेलन के लिए अन्य ऐसे आवश्यक प्रलेखों को पॉलिसिटर से कहकर तैयार कराता है जो कंपनी रजिस्ट्रार के पास फाइल किये जाने होते हैं। वह पंजीकरण संबंधी व्यय करने हेतु आवश्यक धन का प्रबंध करता है तथा कंपनी की प्रारंभिक पूँजी करने का प्रबंध भी करता है।

प्रवर्तक की वैधानिक स्थिति

प्रवर्तक कंपनी का न्यायी या एजेंट नहीं होता है क्योंकि जब वह अपने कार्यों को करता है उस समय किसी न्यास का नियोक्ता का अस्तित्व ही नहीं होता है। यद्यपि कंपनी अधिनियम के अधीन एक प्रवर्तक के, एक एजेन्ट के समान, कुछ विश्वासाश्रित कर्तव्य बलताए गए हैं। परिणाम स्वरूप प्रवर्तकका यह दायित्व है कि वह प्रवर्तन संबंधी सभी तथ्यों को पूर्णतया प्रकट करें। यह महत्वपूर्ण है कि कानून प्रवर्तक द्वारा लाभ प्राप्त करने को वर्जित नहीं करता है बल्कि उसके द्वारा प्राप्त लाभ को गुप्त रखने को वर्जित करता है। यदि किसी व्यवहार से उत्पन्न होनेवाले लाभ को प्रवर्तक, स्वतंत्र संचालक मंडल या शेयरधारियों की सभा के समक्ष पूर्णरूपेण प्रकट कर देता है तो ऐसे लाभ को अपने पास रखने का उसे अधिकार है।

प्रवर्तक के दायित्व

प्रवर्तक को अपने कार्य पूर्ण सदविश्वास एवं सतर्कता से करने चाहिए। यदि कंपनी की ओर से किये गये किसी भी व्यवहार में प्रवर्तक ने कोई लाभ वे लेकिन प्रकट न किया तो कंपनी निम्नलिखित में से कोई एक कार्यवाही कर सकती है –

I. कंपनी प्रवर्तक से किए गए संविदा को तोड़ सकती है अर्थात प्रवर्तक को उसकी संपत्ति लौटाकर उससे अपनी धनराशि वसूल कर सकती है। या

II. कंपनी प्रवर्तक लाभ का हिसाब मांग सकती है और उस राशि को व्याज सहित प्राप्त कर सकती है।

कंपनी अधिनियम 2013 के अंतर्गत प्रवर्तक के दायित्व की व्यवस्था है जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

i. कंपनी अधिनियम की धारा 35 के अनुसार, विवरण-पत्रिका में दिए मिथ्या-वर्णन के लिए प्रवर्तक को मूल आबंटितियों के प्रति क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। इसके अतिरिक्त धारा 63 के अनुसार, विवरण पत्रिका में ऐसे असत्य कथन के लिए प्रवर्तक को 10 वर्ष तक की सजा एवं कपट की गई धनराशि के तीन गुने तक जुर्माना भी किया जा सकता है।

ii. कंपनी अधिनियम की धारा 340 के अनुसार, कंपनी के समापन के दौरान सरकारी समापक या कंपनी समापक द्वारा आवेदन दिये जाने पर ट्रिब्यूनल द्वारा प्रवर्तक को कर्त्तव्य भंग या विश्वास-भंग के लिए दायी ठहराया जा सकता है। इसके अतिरिक्त धारा 300 तथा 317 के अनुसार, यदि कंपनी समापक ने प्रवर्तक के विरूद्ध कपट का आरोप लगाया हो तो ट्रिब्यूनल द्वारा उसकी सार्वजनिक जाँच का आदेश दिया जा सकता है।

प्रवर्तक का पारिश्रमिक

कंपनी के निर्माण में अपनी बहुमूल्य सेवाएं प्रदान करने के प्रतिफल स्वरूप प्रवर्तक का पारिश्रमिक नकद अथवा आंशिक रूप में नकद तथा शेष ऋण पत्रों एवं शेयरों के रूप में दिया जा सकता है। लेकिन यदि कंपनी के समामेलन के पश्चात प्रवर्तक का इस संबंध में कंपनी के साथ कोई स्पष्ट संविदा नहीं हुआ है तो उस स्थिति में प्रवर्तक अपने पारिश्रमिक तथा अन्य प्रारंभिक खर्चों को प्राप्त करने हेतु कंपनी पर वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है क्योंकि उसने एक ऐसे व्यक्ति के लिए कार्य किया है जिसका जन्म होना बाकी है और दोनों पक्षों के बीच सहमति के अभाव में एक वैद्य संविदा नहीं हो सकता।

समामेलन से पहले के संविदे

समामेलन से पहले के संविदे प्रवर्तकों द्वारा समामेलन से पहले प्रस्तावित कंपनी के लिए कोई संपत्ति या अधिकार प्राप्त करने के लिए किए जाते हैं। ऐसे संविदे प्रारंभिक संविदे भी कहलाते हैं। समामेलन से पहले कंपनी का कोई अस्तित्व नहीं होता अत: इन संविदों के आधार पर न तो कोई अन्य व्यक्ति कंपनी पर वाद प्रस्तुत कर सकता है और न ही कंपनी किसी अन्य व्यक्ति पर। समामेलन से पूर्व किए गए संविदों के लिए प्रवर्तक व्यक्तिगत रूप से उस समय तक उत्तरदायी रहते हैं जब तक समामेलन के पश्चात् कंपनी एक नया संविदा ठीक उसी प्रकार का नहीं करती जैसा कि पुराना संविदा था। समामेलन से पहले किये गये संविदों की कंपनी समामेलन के बाद कार्यान्वित नहीं कर सकती।

अनुसमर्थन (Ratification) भी संभव नहीं:

समामेलन से पूर्व किए, गये संविदों को, कंपनी समामेलन के बाद अनुसमर्थन करके भी नहीं अपना सकती, क्योंकि अनुसमर्थन का सिद्धांत केवल उसी स्थिति में लागु होता है जब एजेंट किसी ऐसे प्रधान की ओर से संविदा करता है जिसका अस्तित्व है तथा जो एजेंट द्वारा उपर्युक्त संविदा किये जाते समय स्वयं भी संविदा करने में सक्षम था।

अनन्तिम संविदे

अनन्तिम संविदे वे संविदे होते थे जो समामेलन बाद और व्यवसाय प्रारंभ करने का प्रमाण-पत्र प्राप्त करने से पहले किये जाते थे। इन संविदों के लिए भी कंपनी को वैधानिक रूप से दायी नहीं ठहराया जा सकता था क्योंकि जब तक कंपनी को व्यवसाय प्रारंभ करने का प्रमाण-पत्र नहीं मिल जाता था कानून की दृष्टि में ये अनन्तिम संविदे ही माने जाते थे और कंपनी पर आबद्धकारी नहीं होते थे।

कंपनी (संशोधन) अधिनियम, 2015 द्वारा धारा 11 को हटाकर व्यवसाय को प्रारंभ करने के प्रमाण-पत्र को प्राप्त करने की आवश्यकता को समाप्त कर दिया गया जिसके कारण अब कोई अनन्तिम संविदा नहीं हो सकता।

2. समामेलन अथवा पंजीकरण

समामेलन कंपनी के निर्माण की दूसरी अवस्था है। इसके लिए कंपनी रजिस्ट्रार के पास पंजीकरण कराना पड़ता है। प्रस्तावित कंपनी को पंजीकृत कराने से पहले प्रवर्तकों को निम्नलिखित प्रारंभिक कार्यवाहियों करनी होती है:

1) कंपनियों के रजिस्ट्रार से यह पता करना कि प्रस्तावित कंपनी के लिए निश्चय किया गया नाम उपलब्ध है अथवा नहीं।
2) उद्योग (विकास एवं विनिमय) अधिनियम, 1951के अंतर्गत एक आशय-पत्र पात्र करना जो बाद में औद्योगिक लाइसेनन में परिवर्तित किया जाना हो।
3) हामीदार (Under niter) दलाल, बैंक, कानूनी सलाहकार, लेखा-परीक्षक तथा ज्ञापन-पत्र पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति को निश्चित करना।
4) ज्ञापन-पत्र एवं अंतर्नियमावली तैयार करना तथा छपवाना।

कंपनी अधिनियम की धारा 7 में कंपनी के समामेलन के संबंध में निम्नलिखित प्रावधान है :

1) उपरोध प्रार्थना पत्र के साथ उस राज्य के कंपनी रजिस्ट्रार के पास जिसमें कंपनी का पंजीयत कार्यालय स्थित होगा, पंजीयन के लिए निम्नलिखित प्रपत्र एवं सूचनाएँ जमा करनी होगी-

क) ज्ञापन-पत्र के सभी अभिदान कर्ताओं द्वारा हस्ताक्षर किया हुआ निर्धारित तरीके से कंपनी का ज्ञापन-पत्र एवं अंतर्नियमावली।

ख) कंपनी के निर्माण में सहायता करनेवाले वकील लागत लेखाकार चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट या व्यवसायरत कंपनी सचिव द्वारा, तथा कंपनी की अंतर्नियमावली में संचालक, प्रबंधक या सचिव रूप में नामांकित व्यक्ति द्वारा निर्धारित प्रारूप में यह घोषणा की जायेगी कि कंपनी के पंजियन संबंधित मामलों के बारे में कंपनी अधिनियम तथा इसके अधीन बनाये गये नियमों की सभी आवश्यकताओं को पूरा कर दिया गया है।

ग) ज्ञापन-पत्र के प्रत्येक अभिदानकर्ता तथा उन व्यक्तियों, जिनका नाम प्रथम संचालक यदि कोई हो, के रूप में अंतर्नियमावली में लिखा हो, को शपथ-पत्र पर ऐसी घोषणा करनी चाहिए कि उसे कंपनी के प्रवर्तन निर्माण या प्रबंध के संबंध में अपराधी नहीं ठहराया गया है।

घ) जिस स्थान पर कंपनी का पंजीकृत कार्यालय स्थापित होने तक पत्र-व्यवहार किया जा सके उसके पते की सूचना दी जानी चाहिए।

ङ) पहचान के साक्ष्य सहित ज्ञापन-पत्र के प्रत्येक अभिदानकर्ता का नाम, निवास का पता, राष्ट्रीयता एवं अन्य निर्धारित विवरण :

च) कंपनी के प्रथम संचालकों के रूप में अंतर्नियमावली में वर्णित व्यक्तियों का विवरण, उनके नाम, संचालक पहचान संख्या, निवासीय पता, राष्ट्रीयता तथा पहचान के साक्ष्य के साथ अन्य निर्धारित विवरण;

छ) कंपनी के प्रथम संचालकों के रूप में अंतर्नियमावली में वर्णित व्यक्तियों के अन्य निगमित निकायों या फर्मों में हित का विवरण; तथा

ज) कंपनी के संचालकों की इस बात की लिखित सहमति कि वे उस हैसियत से कार्य करने को तैयार हैं।

2) उपरोक्त उप-धारा (1) के अधीन फाइल किये गये प्रपत्रों एवं दी गई सूचनाओं के आधार पर रजिस्ट्रार द्वारा प्रपत्रों व सूचनाओं को रजिस्टर कर लिया जाता है तथा कंपनी को समामेलन का प्रमाण-पत्र निर्धारित प्रारूप में निर्गमित कर दिया जाता है।

3) कार्पोरेट पहचान संख्या का आबंटन करना- कंपनी अधिनियम की धारा 7 (3) के अनुसार, उपरोक्त उप-धारा (2) के अधीन जारी किये गये समामेलन प्रमाण-पत्र में वर्णित तिथि पर रजिस्ट्रार कंपनी को कार्पोरेंट पहचान संख्या आबंटित करेगा।

4) कंपनी द्वारा पंजीयन के उद्देश्य से रजिस्ट्रार के पास उपरोक्त उप-धारा (1) के अधीन जमा किए गए सभी प्रपत्रों एवं सूचनाओं की प्रतिलिपियों को मूल रूप में अपने पंजीकृत कार्यालय में कंपनी के विघटन तक रखना एवं संरक्षित करना आवश्यक है।

5) यदि कोई व्यक्ति कंपनी के पंजियन के संबंध में रजिस्ट्रार के पास फाइल किए गए किन्हीं प्रपत्रों में जान-बूझकर सूचनाओं का झूठा अथवा असत्य विवरण देता है या किसी सारभूत सूचना को छिपाता है तो उसके विरूद्ध कंपनी अधिनियम की धारा 447 के अधीन कार्यवाही की जायेगी।

6) यदि यह साबित हो जाये कि कंपनी के समामेलन हेतु दिए गए प्रपत्रों में कोई असत्य या गलत सूचना या मिथ्या कथन अथवा किसी सारभूत तथ्य या सूचना को छिपाकर समामेलन कराया गया है, तो प्रवर्तक, कंपनी के प्रथम संचालकों के रूप में नामित व्यक्ति व उपरोक्त उप-धारा (1) के वाक्य (ख) के अधीन घोषणा करने वाले व्यक्ति कंपनी अधिनियम की धारा 447 के अधीन कपट के लिए दंडनीय होंगे।

7) उपरोक्त उपधारा (6) में वर्णित दशा में यदि कोई व्यक्ति ट्रिब्यूनल से शिकायत करता है तथा ट्रिब्यूनल संतुष्ट हो जाता है कि शिकायत सत्य है तो वह निम्नांकित कार्यवाही कर सकता है:

क) जनहित अथवा कंपनी एवं इसके सदस्यों व लेनदारों के हित में ज्ञापन-पत्र व अंतर्नियमावली में परिवर्तन हेतु तथा कंपनी के प्रबंध के नियमन हेतु कोई भी उपयुक्त आदेश दे सकता है; अथवा

ख) सदस्यों का दायित्व असीमित करने का आदेश दे सकता है; अथवा

ग) कंपनियों के रजिस्ट्रार से कंपनी के नाम को हटाने का आदेश दे सकता है; अथवा

घ) कंपनी के समापन का आदेश दे सकता है; अथवा

ङ) कोई अन्य आदेश दे सकता है जो वह उपयुक्त समझे।

समामेलन प्रमाण-पत्र का प्रभाव

कंपनी (संशोधन) अधिनियम, 2015 द्वारा यथा-संशोधित धारा के अनुसार, समामेलन प्रमाण-पत्र में लिखी गई तिथि से ज्ञापन-पत्र के अभिदानकर्ता कंपनी के सदस्य बन जाते है; कंपनी ज्ञापन-पत्र में दिये हुए

नाम से समामेलित निकाम बन जाती है। यह समामेलित कंपनी वाले सभी कार्य कर सकती है एवं इसका शाश्वत उत्तराधिकार होता है।

समामेलन प्रमाण-पत्र की निश्चायता

कंपनी अधिनियम, 2013 में समामेलन प्रमाण-पत्र की निश्चायकता के संबंध में कोई उपबंध नहीं किया गया है। परन्तु न्यायिक निर्णयों में यह माना गया है कि एक बार जारी किया गया समामेलन प्रमाण-पत्र इस बात का निश्चायक साक्ष्य होगा कि कंपनी का समामेलन विधिवत हुआ है।

यह ध्यान देने योग्य है कि यदि कोई अवैधानिक उद्देश्य वाली कंपनी पंजीकृत कर दी गई है तो प्रमाण-पत्र के निर्गमन से अवैधानिक उद्देश्य वैद्य नहीं बन जाते। परन्तु समामेलन का प्रमाण-पत्र कंपनी के अस्तित्व का निश्चायक प्रमाण बना रहता है और कंपनी के विविध व्यक्तित्व को प्रमाण-पत्र को रद्द करके समाप्त नहीं किया जा सकता।

3. पूँजी अभिदान (Capital Subscription)

पूँजी अभिदान अवस्था के अंतर्गत कंपनी के लिए आवश्यक पूँजी प्राप्त करने का कार्य किया जाता है। चूँकि शेयर पूँजी वाली एक निजी कंपनी अपने अंतर्नियमों द्वारा अपनी प्रतिभूतियों को क्रय करने के लिए जनता को आमंत्रित करने पर प्रतिबंध लगाती है इसलिए इसे 'पूँजी अभिदान अवस्था' से नहीं गुजरना होता है। निजी कंपनी द्वारा कंपनी अधिनियम की धारा 42 के अनुसार, प्राइवेट प्लेसमेन्ट के माध्यम से लोगों के चुनिंदा समूह में अपनी प्रतिभूतियों को बिक्री के लिए प्रस्तावित किया जा सकता है। सार्वजनिक कंपनी अपनी प्रतिभूतियों को क्रय करने के लिए जनता को आमंत्रित कर सकती है तथा विवरण पत्रिका के माध्यम से शेयर जनता को बेच सकती है।

जनता से पूँजी निर्गमन करने को नियंत्रित करने के लिए भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी) की स्थापना 1992 में की गई। सेबी के पास प्रतिभूतियों में निवेशकों के हित को सुरक्षित करने तथा प्रतिभूति बाजार को नियंत्रित करने के लिए नियम एवं विनियम बनाने का अधिकार है। निवेशकों के हितों की सुरक्षा के लिए सेबी ने 'सेबी विनियम, 2009' को जारी किया है।

जनता से पूँजी का निर्गमन करने के संबंध में सेबी द्वारा जारी किये गये 'सेबी विनियम, 2009' का अनुपालन करने के बाद संचालक विवरण-पत्रिका की एक प्रतिलिपि रजिस्ट्रार के पास भेजते हैं तथा विवरण-पत्रिका को जनता में निर्गमित करके जनता को कंपनी के शेयर क्रय करने के हेतु निमंत्रित करते हैं। तत्पश्चात् कंपनी के बैंकर के माध्यम से शेयरों के लिए आवेदन प्राप्त किए जाते हैं। यदि प्रार्थित पूँजी प्रस्तावित निर्गमन राशि की कम –से-कम 90% न्यूनतम अभिदान राशि के बराबर हो जाती है, तथा वैद्य आबंटन की अन्य शर्तों

को पूरी की जाती है तो संचालक आबंटन का औपचारिक संकल्प पारित करते है; तत्पश्चात आबंटितियों को आबंटन-पत्र भेजे जाते है; आबंटन का विवरण रजिस्ट्रार को भेजा जाता है तथा आबंटितियों को आबंटन प्रमाण-पत्र के बदले शेयर प्रमाण-पत्र निर्गमित किये जाते हैं।

आवश्यक पूँजी प्राप्त करने के बाद कंपनी के निर्माण की प्रक्रिया पूरी हो जाती है तथा कंपनी व्यवसाय शुरू करने में सक्षम हो जाती है।

कंपनी (संशोधन) अधिनियम, 2015 के लागू होने से पहले धारा 11 के अधीन कंपनी का व्यवसाय प्रारंभ करने का प्रमाण-पत्र प्राप्त करना आवश्यक था। परन्तु अब कंपनी (संशोधन) अधिनियम, 2015 द्वारा धारा 11 को हटा दिया गया है।

कंपनी का ऑनलाइन पंजीकरण

कंपनी का समामेलन या पंजीकरण कंपनी के निर्माण की सबसे महत्वपूर्ण अवस्था होती है। कंपनी कारोबार मंत्रालय का प्रोजेक्ट ई-गवर्नेन्स : एमसीए 21 ने देश में कंपनियों के ऑनलाइन पंजीकरण की सुविधा दी है जिसकी आवश्यकता काफी समय से महसूस की जा रही थी।

कंपनियों के ऑनलाइन पंजीकरण के लिए उठाये जानेवाले कदम निम्नलिखित हैं :

1) संचालक पहचान संख्या हेतु प्रार्थना पत्र देना
2) डिजिटल हस्ताक्षर प्रमाण-पत्र प्राप्त करना एवं इसका पंजीकरण कराना
3) नया उपयोगकर्ता पंजीयन
4) कंपनी के प्रस्तावित नाम को स्वीकार कराना
5) कंपनी का समामेलन कराना

1) संचालक पहचान संख्या

कंपनी के ऑनलाइन पंजीकरण के लिए सर्वप्रथम संचालक पहचान संख्या के प्राप्त करना होता है। इस हेतु सभी विद्यमान एवं इच्छुक संचालकों को निर्धारित प्रक्रिया को अपनाकर निश्चित समय के भीतर संचालक पहचान संख्या प्राप्त करना होता है। संचालक पहचना संख्या प्राप्त करने हेतु आवेदनकर्ता को ई-फॉर्म डीआईआर -3 को फाइल करना होता है।

2) डिजिटल हस्ताक्षर प्रमाणपत्र प्राप्त करना एवं पंजीयन कराना –

सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 इलेक्ट्रॉनिक रूप से फाइल किये जानेवाले प्रपत्रों की सुरक्षा एवं प्रमाणिकता को सुनिश्चित करने के लिए इलेक्ट्रॉनिक रूप से जमा किये गये प्रपत्रों पर डिजिटल हस्ताक्षरों के उपयोग की व्यवस्था करता है।

अपने प्राधिकृत हस्ताक्षरकर्ताओं के लिए डिजिटल हस्ताक्षर प्रमाणपत्र प्राप्त करने हेतु कंपनी को लाइसेन्सधारक प्रमाणनकर्ता प्राधिकारी को प्रार्थना-पत्र देना होता है। यह प्राधिकारी डिजिटल हस्ताक्षरों को जारी करता है। प्रमाणनकर्ता प्राधिकारी उचित जाँच-पड़ताल करके सूचना प्रौद्योगिकि अधिनियम, 2000 की धारा 35 के अधीन डिजिटल हस्ताक्षर प्रमाण-पत्र देता है।

अपने हस्ताक्षरकर्ताओं के लिए डिजिटल हस्ताक्षर प्रमाण-पत्रों के प्राप्त कर लेने पर प्रस्तावित कंपनी द्वारा अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से कंपनी कारोबार मंत्रालय में इन डिजिटल हस्ताक्षर प्रमाणपत्रों का पंजीयन कराया जाता है।

3) नया उपयोग कर्ता पंजीकरण

एमसीए पोर्टलपर कोई ई-फॉर्म फाइल करने अथवा ऑनलाइन भुगतान वाली कोई सेवा प्राप्त करने के लिए प्रस्तावित कंपनी के अधिकृत प्रतिनिधियों को पहले स्वयं को सुसंगत उपयोगकर्ता श्रेणी जैसे पंजीकृत उपयोगकर्ता अथवा व्यावसायिक उपयोगकर्ता के रूप में पंजीयन कराना होता है।

4) कंपनी के प्रस्तावित नाम की स्वीकृति प्राप्त करना

कंपनी के समामेलन से पूर्व ऐसे व्यक्तियों जो कंपनी के निर्माण करने के इच्छुक हो, को कंपनी पंजीयक से कंपनी के प्रस्तावित नाम के उपलब्धता की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।

निम्नलिखित प्रतिबंधों के अधीन रहते हुए कंपनी का कोई भी नाम चुना जा सकता है:

i. प्रत्येक कंपनी के नाम के अंत में निजी कंपनी की दशा में प्राइवेट लिमिटेड तथा सार्वजनिक कंपनी की दशा में लिमिटेड शब्द जोड़े जाते हैं परन्तु असीमित कंपनियों की दशा में केवल नाम दिया जाता है।
ii. चुना हुआ नाम केन्द्र सरकार के विचार में अवांछनीय नहीं होना चाहिए था कंपनी का नाम किसी अन्य समामेलित निकाय या फर्म के समतुल्य अथवा अत्यधिक मिलता-जुलता नहीं होना चाहिए।

उपरोक्त प्रतिबंधों को ध्यान में रखते हुए आवेदकों को फॉर्म आईएनसी-1 को भरकर पंजीकरण के लिए कंपनी के नाम की स्वीकृति हेतु आवेदन करना चाहिए।

5) कंपनी का समामेलन कराना

नाम की स्वीकृति के बाद प्रस्तावित कंपनी के प्रकार के अनुसार, आवेदकों को नीचे दिये गये आवश्यक समामेलन फॉर्मों को फाइल करना होता है:

ई-फॉर्म आइएनसी – 7 – कंपनी के समामेलन हेतु आवेदन पत्र।

ई-फॉर्म डीआईआर – 12 - संचालकों एवं मुख्य प्रबंधकीय कर्मचारियों की नियुक्ति तथा उनमें परिवर्तन का विवरण।

ई-फॉर्म आईएनसी – 21 – पंजीयत कार्यालय के स्थान या स्थान में परिवर्तन की सूचना।

कंपनी कारोबार मंत्रालय के अधिकारियों द्वारा फॉर्मों को स्वीकार कर लिये जाने पर आवेदकों को इसके संबंध ई-मेल द्वारा सूचित किया जाता है तथा फॉर्मों की स्थिति को स्वीकृत के रूप में बदल दिया जाता है। इस स्वीकृति के साथ कार्पोरेट पहचान संख्या दी जाती है। इस प्रकार कंपनी का ऑनलाइन प्रक्रिया द्वारा समामेलन हो जाता है।

4.8 सारांश

इस प्रकार स्पष्ट है कि आम उपभोक्ताओं को व्यापक सुरक्षा देने की दिशा में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम का 1986 का कार्यान्वयन एक मील का पत्थर साबित हुआ। यह एक तरफ धूर्त एवं सिद्धांतहीन व्यवसायियों की लालच से उपभोक्ताओं को सुरक्षा प्रदान करता है तो दूसरी तरफ बड़े-बड़े व्यवसायियों के प्रतिबंधात्मक एवं निरंकुश प्रवृति वाली व्यावसायिक गतिविधियों पर भी अंकुश लगाता है। अधिनियम का एक महत्वपूर्ण गुण है कि यह अनियंत्रित व्यापारियों तथा निर्माताओं से बचाने के लिए उपभोक्ता को सस्ती, त्वरित एवं निष्पक्ष उपचार उपलब्ध कराता है। इसके अलावा, इसके अंतर्गत उपभोक्ता के शिकायतों का निपटारा सीधे एवं सरल तरीके से संभव हो पाता है। अन्य कानूनों की तरह इसमें पेचीदगी झेलनी नहीं पड़ती है तथा यह उपभोक्ता अधिकार के संरक्षण से पूरी तरह संबद्ध रहता है।

हालांकि यह अधिनियम तीन दशकों से अधिक से काम कर रहा है फिर भी देश में उपभोक्ता अधिकार की सुरक्षा में संरचनात्मक तथा कार्यात्मक कमी के कारण यह प्रभावशाली भूमिका नहीं निभा पा रहा है । जैसे कि इस अधिनियम के अंतर्गत कुछ महत्वपूर्ण इकाइयों की स्थापना होनी थी जो अभी तक नहीं हो पायी है, और जो स्थापित हुई भी हैं उन पर नियंत्रण रखना मुशिकल हो रहा है जिससे उपभोक्ताओं के

हितों की सुरक्षा में बाधाएं अनुभव की जा रही है। इन इकाइयों को दी गई शक्ति उन्हें दिए गए उत्तरदायित्व के अनुरूप नहीं है। परिणामत: कुछ मामलों में ये इकाइयां अपने आपको प्रभावपूर्ण कार्य करने में असमर्थ पाती हैं। अपनी स्थापना के तीन दशक के बाद भी ये उपभोक्ता इकाइयां लोगों को उनके उपभोक्ता अधिकार के प्रति पूरी तरह जागरूक नहीं कर पायी है। इसलिए इन उपभोक्ता इकाइयों का पहला कर्तव्य यह होना चाहिए कि वे स्वयं को यथा संभव एक आम आदमी के समान समझें तब व्यापारियों तथा निर्माताओं द्वारा ठगे जाने पर क्या कर सकते हैं, इस बात पर उन्हें गौर करना चाहिए। देश में उपभोक्ता अधिकारों के हनन के मामले बड़ी संख्या में दृषिटगोचर हैं। अतः इन इकाइयों का मुख्य ध्येय यह होना चाहिए कि लोगों को उपभोक्ता अधिकार के प्रति जागरूक करें ताकि वे अपनी शिकायतों के निवारण हेतु इन इकाइयों के पास जा सकें।

कंपनी अधिनियम, 2013, 30 अगस्त, 2013 की अधिसूचित किया गया। यह पांच दशकों से अधिक पुराने कंपनी अधिनियम, 1956 को प्रतिस्थापित करना है। कंपनी अधिनियम, 2013में कई ऐसे प्रावधान किये गये हैं जो कारपोरेट क्षेत्र की संबृद्धि एवं विकास में योगदान देंगे। यह अधिनियम प्रक्रियाओं, राजकोषीय सीमाओं एवं अनुमोदनों के संबंध में अधिक लोचशिलता लाने के लिए आरभूत बिजि से प्रक्रियात्मक पहलुओं को अलग करता है। कंपनी अधिनियम, 2013 में कंपनियों को विभिन्न आजारों जैसे समामेलन की रीति के अनुसार, सदस्यों की संरचना के आधार पर, सदस्यों के दायित्व के आजार पर तथा कंपनियों के अन्य भेद के रूप में वर्गीकृत किया गया है।

कंपनी का निर्माण एक जटिल प्रक्रिया है। कंपनी निर्माण की विभिन्न अवस्थाओं को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है प्रवर्तन समामेलन अथवा पंजीकरण तथा पूंजी अभिदान। प्रवर्तन में व्यावसायिक सुअवसरों की खोज की जाती है और तत्पश्चात लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से पूंजी, संपत्ति तथा प्रबंधन क्षमता को एक व्यावसायिक संगठन के रूप में संगठित किया जाता है। समामेलन कंपनी के निर्माण की दूसरी अवस्था है। इसके लिए कंपनी रजिस्ट्रार के पास पंजीकरण कराना पड़ता है। कंपनी के निर्माण की तीसरी एवं अंतिम अवस्था पूँजी अभिदान के अंतर्गत कंपनी के लिए आवश्यक पूँजी प्राप्त करने का कार्य किया जाता है। कंपनी कारोबार मंत्रालय का प्रोजेक्ट ई-गवर्नेन्स: एमसीए 21 ने देश में कंपनियों के ऑनलाइन पंजीकरण की सुविधा दी है जिसकी आवश्यकता काफी समय से महसूस की जा रही थी। कंपनी के ऑनलाइन पंजीकरण के लिए उठाये जानेवाले पाँच कदम हैं- संचालक पहचान संख्या हेतु प्रार्थना पत्र देना, डिजिटल हस्ताक्षर प्रमाण-पत्र प्राप्त करना एवं इसका पंजीकरण कराना, नया उपयोगकर्ता पंजीकरण, कंपनी के प्रस्तावित नाम को स्वीकार करना तथा कंपनी का समामेलन कराना। इस प्रकार कंपनी का ऑनलाइन प्रक्रिया द्वारा समामेलन हो जाता है।

4.9 बोध प्रश्न

1. उपभोक्ता की परिभाषा कीजिए। विभिन्न विधिक दस्तावेजों में निहित महत्वपूर्ण उपभोक्ता अधिकारों की विस्तार से व्याख्या कीजिए।
2. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के विभिन्न कार्य प्रणालियां क्या हैं? एक उपभोक्ता के रूप में अधिकारों के हनन की सिथति में उपभोक्ता को कौन से रक्षोपाय प्राप्त हैं?
3. राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग के विशेष संदर्भ में उपभोक्ता विवाद निवारण संस्थाओं की संरचनाओं एवं कार्यों की आलोचनात्मक समीक्षा करें।
4. कंपनी की परिभाषा एवं विशेषता को अपनी भाषा में स्पष्ट कीजिए।
5. कंपनी अधिनियम, 2013 के सिद्धांतों का उल्लेख कीजिए।
6. कंपनी के वर्गीकरण का क्रमवार वर्णन कीजितए।
7. सदस्यों के दायित्व के आधार पर पंजीकृत कंपनियों के प्रकार का उल्लेख कीजिए।
8. समामेलन की रीति के अनुसार कंपनियों के विभिन्न प्रकार क्या हैं ?
9. सदस्यों के संस्था के आधार पर पंजीकृत कंपनियों के विभिन्न प्रकारों की विवेचना कीजिए।
10. कंपनी के प्रवर्तन से क्या समझते हैं?
11. कंपनी का पंजियन किस प्रकार किया जाता है?
12. पूँजी अभिदान से क्या अभिप्राय है?
13. समामेलन के पूर्व के संविदों की वैधानिक स्थिति बताइए। क्या कंपनी इन संविदों का अनुसमर्थन कर सकती है।
14. कंपनी के समामेलन के संबंध में कंपनी अधिनियम 2013 के प्रावधानों की विवेचना कीजिए।
15. ''प्रवर्तक का अपने द्वारा प्रवर्तित कंपनी के प्रति विश्वासाश्रित संबंध होता है।'' स्पष्ट कीजिए।
16. कंपनियों के ऑनलाइन पंजीकरण के लिए उठाये जानेवाले कदमों की विवेचना कीजिए।

4.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- P. Sivaprakasam and S. Rajamohan, Consumer Empowerment: Rights and Responsibilites. Kanishka Publishers, New Delhi, 2001.
- Government of India, The Consumer Protection Act, 1986, Department of Consumer Affairs, New Delhi, 1990.
- SAHRDC, Introducing Human Rights, Oxford University Press, New Delhi, 2006.
- एम. सी. कुच्छल, आधुनिक भारतीय कंपनी अधिनियम, महावीर प्रकाशन, दिल्ली- 2010

इकाई – V: कंपनी की पूँजी, प्रबंधन एवं समापन

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 शेयर, शेयर-पूंजी तथा इसका आबंटन
5.3 ऋण लेने के अधिकार, प्रभार एवं ऋण-पत्र
5.4 कंपनी का प्रबंधन
5.5 अत्याचार एवं कुप्रबंधन की रोकथाम
5.6 कंपनी का समापन
5.7 सारांश
5.8 बोध प्रश्न
5.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- शेयर, शेयर-पूँजी तथा इसका आबंटन को समझ सकेंगे।
- ऋण लेने के अधिकार, प्रभार एवं ऋण-पत्र की व्याख्या कर सकेंगे।
- कंपनी का प्रबंधन, अत्याचार एवं कुप्रबंधन की रोकथाम तथा कंपनी का समापन से संबंधित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

एक कंपनी का निर्माण तथा उसके व्यावसायिक गतिविधियों को प्रारंभ करने के लिए अधिक मात्रा में पूँजी की आवश्यकता होती है। इननी मात्रा में पूँजी की आवश्यकता होती है। इतनी मात्रा में पूँजी किसी एक व्यक्ति द्वारा नियोजित करना संभव नहीं होता। जब कंपनी को पूँजी की आवश्यकता होती है तो, वह उसके एकत्र करने के लिए जनता से प्रस्ताव करती है कि वह कंपनी को पूँजी के लिए धन का विनियोग करे। कंपनी की संपूर्ण पूँजी को छोटे-छोटे समान टुकडे कर दिये जाते हैं, जिन्हें शेयर कहते हैं। प्रत्येक शेयर कंपनी की पूँजी का आंशिक भाग होता है। शेयर मुद्रा की एक राशि नहीं होता बल्कि यह कंपनीके जीवन काल में उसके

लाभों में तथा कंपनी के समापन की स्थिति में उसकी संपत्ति में हिस्सा बँटवाने का मुद्रा वाला हित अथवा अधिकार होता है। साथ ही, स्टॉक से आशय एकीकृत किये गये कंपनी के पूर्ण दत्त शेयरों की पोटगी अथवा गठरी से है। शेयर पूँजी से तात्पर्य उस पूँजी से है जो कंपनी को शेयरों के निर्गमन से प्राप्त हुई है अथवा प्राप्त करनी है। कंपनियाँ अपने बढ़ते हुए व्यापारके लिए आवश्यक वित्त जुटाने हेतु शेयर पूँजीका अतिरिक्त कर सकती है। इस इकाई में हम शेयर, शेयर-पूँजी, अतिरिक्त शेयर-पूँजी का निर्गमन तथा इसके आबंटन पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

जब कंपनी को अधिक वित्त की आवश्यकता होती है तो उस आवश्यकता को पूरा करने हेतु कंपनी कई विकल्प अपना सकती है, जैसे अंशो का निर्गमन । इसी प्रकार कंपनियां वित्तीय संस्थाओं, बैंको या सरकार, जनता व ऋणदत्तधारियों से ऋण प्राप्त कर सकती है । जनता से ऋण प्राप्त करने हेतु कंपनी ऋणपत्रों का निर्गमन करती है ।

प्रत्येक व्यापारिक अथवा वाणिज्यिक कंपनी को अपने कारोबार के लिए किसी भी सीमा तक ऋण लेने और उपचार ली गई राशि के लिए जमानत के रूप में अपनी संपत्तियों को प्रमारित करने का अंतर्निहित अधिकार होता है। इन व्यापारिक अथवा वाणिज्यिक कंपनियों को प्राप्त किए कए ऋण की राशि के लिए जमानत के रूप में कंपनी की संपत्तियाँ प्रमारित करने का अंतर्निहित अधिकार होता है। ऋण-पत्र कुछ ऐसे स्थायी प्रकार के ऋण होते है जो कंपनी की संपत्ति को प्रभार या बंधक रखकर प्राप्त किए जाते हैं।

कंपनी विज्ञान द्वारा निर्मित एक कृत्रिम व्यक्ति है। यद्यपि कंपनी के वास्तविक स्वामी उसके शेयरधारक होते हैं परन्तु ये शेयरधारी संख्या में बहुत अधिक तथा बिखरे हुए होते हैं। अत: कंपनी का प्रबंधन एवं संचालन इनके व्दारा किया जाना संभव नहीं हो पाता। कंपनी के शेयरधारी इसके प्रबंधन एवं कार्य संचालन हेतु अपने प्रतिनिधि के रूप में अलग व्यक्तियों की नियुक्ति करते है, जिन्हें 'संचालक की संज्ञा दी जाती है। इन संचालकों को सामूहिक रूप से 'संचालक मंडल' के नाम से संबोधित किया जाता है।

5.2 शेयर, शेयर-पूँजी तथा इसका आबंटन

शेयर का अर्थ एवं परिभाषा

'शेयर' वह इकाई है जिसमें कंपनी की संपूर्ण पूँजी को विभाजित किया जाता है। कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 21(84) के अनुसार, "शेयर से तात्पर्य कंपनी की शेयर-पूँजी के एक भाग से है और उसमें स्टॉक भी सम्मिलित किया जाता है।" कंपनी अधिनियम में दी गई यह परिभाषा 'शेयर'की प्रकृति को पूर्णतथा स्पष्ट नहीं करती।

आयकर आयुक्त बनाम स्टैण्डर्ड वैक्यूम ऑयल कंपनी के बाद में भारत के उच्चतम न्यायालय ने शेयर को इस प्रकार परिभाषित किया है, "एक कंपनी में शेयर का आशय मुद्रा की किसी राशि से नहीं वरण् मुद्रा की राशि द्वारा माथे गये हित लाभ से होता है तथा कंपनी की अंतर्नियमावली द्वारा इसके धारकों को विभिन्न अधिकार दिये जाते हैं जिससे उसके एवं कंपनी के बीच संविदा होता है।"

इस प्रकार शेयर किसी शेयरधारी का कंपनी में अधिकारों एवं हितों के स्वामित्व का आधार होता है। शेयर केवल मुद्रा की एक राशि नहीं होती बल्कि यह कंपनी के जीवन काल में उसके लाभों में तथा कंपनीके समापन की स्थिति में उसकी संपत्ति में हिस्सा बँटवाने का मुद्रा मूल्य वाला हित अथवा अधिकार होता है। शेयरधारी कंपनी की संपत्ति में किसी निश्चित भाग का स्वामी नहीं होता बल्कि केवल कंपनी में अपने हित का स्वामी होता है। कानून की दृष्टि में शेयरधारी कंपनी के व्यवसाय में साझेदारी नहीं माने जाते क्योंकि कंपनी अपने सभी शेयरधारियों से सर्वथा भिन्न अस्तित्व रखती है। शेयर अपने स्वामी को केवल कुछ अधिकार एवं दायित्व प्रदान करता है जैसे – लाभांश पाने का अधिकार, मतदान करने का अधिकार, याचना पर भुगतान करने का दायित्व तथा अंतर्नियमावली एवं ज्ञापन-पत्र की व्यवस्थाओं से आबद्ध होने का दायित्व ।

शेयर की वैध प्रकृति

भारत में कंपनी का शेयर माल (Goods) के समान माना जाता है। कंपनी अधिनियम की धारा 44 के अनुसार, "कंपनी में किसी सदस्य के शेयर अथवा ऋण-पत्र चल संपत्ति होते हैं तथा उनका अन्तरण कंपनीकी अंतर्नियमावली में दी गई रीति से हो सकता है।" यह ध्यान देने योग्य है कि, "शेयर कपड़े की गाँठ या चावल के बोरे के समान चल-संपत्ति नहीं है। ये वस्तुएँ कोई कानून पारित करके अस्तित्व में नहीं लाई जा सकती। कंपनी का शेयर एक सर्वथा अलग किस्म की संपत्ति होता है। वह अमूर्त प्रकृति का होता है, तथा अधिकार एवं दायित्वों का एक समूह मात्र होता है।" अत: शेयर कंपनी अधिनियम और कंपनी की अंतर्नियमावली में दी गई रीतिके अधीन ही अंतरणीय होते हैं और इनके अंतरण पर कुछ प्रतिबंध लगाये जा सकते हैं।

कंपनी अधिनियम की धारा 45 के अनुसार शेयर पूँजी वाली कंपनी के प्रत्येक शेयर का एक अंकित मूल्य होना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक शेयर पर पृथक-पृथक संख्यांकन भी किया जाना चाहिए। परंतु पृथक-पृथक संख्यांकन की यह आवश्यकता 'निक्षेपागार' के साथ घाटित किए गये शेयरों पर लागू नहीं होती।

स्टॉक

कंपनी अधिनियम की धारा 2(84) में दी गई शेयर की परिभाषा में स्टॉक शब्द का प्रयोग किया गया है। स्टॉक से आगय एकीकृत किए गए कंपनी के पूर्ण दत्त शेयरों की पोटली या गठरी से है। इस प्रकार एकीकृत किए जाने के बाद स्टॉक का, शेयरों के विपरीत कोई अंकित मूल्य नहीं रह जाता। अंतरण की सुविधा हेतु शेयरों को स्टॉक में बदला जाता है।

कंपनी अधिनियम की धारा 61 के अनुसार, "कंपनी मूल रूप से स्टॉकका निर्गमन नहीं कर सकती है। यदि कंपनी की अंतर्नियमावली में व्यवस्था है जो वह शेयरधारियों की सभा में एक साधारण संकल्प पारित करके अपने पूर्ण दत्त शेयरों को स्टॉक में परिवर्तित कर सकती है तथा इसी प्रक्रिया द्वारा स्टॉक को पुन: शेयरों में परिवर्तित किया जा सकता है। स्टॉक धारियों को वे सभी अधिकार प्राप्त होते हैं जो शेयरधारियों को होते है।"

कंपनी अधिनियम की धारा 64 के अनुसार, "यदि कंपनी ने अपने शेयरों को स्टॉक में अथवा स्टॉक को पुन: शेयरों में परिवर्तित किया है। तो परिवर्तित के 30 दिन के भीतर उसी सूचना रजिस्ट्रार के पास भेजनी होती है। रजिस्ट्रार उक्त सूचना का पंजीकरण करने के पश्चात कंपनी के ज्ञापन-पत्र में आवश्यक परिवर्तन कर देता है।"

स्टॉक तथा शेयर में अंतर

स्टॉक तथा शेयर में निम्नलिखित अंतर है :-

1) शेयर को मूल रूप से निर्गमित किया जा सकता है परन्तु स्टॉक को मूल रूप से निर्गमित नहीं किया जा सकता है, जब शेयर पूर्ण दत्त होते है तो उन्हें स्टॉक में परिवर्तित किया जा सकता है।
2) शेयर आंशिक-दत्त अथवा पूर्ण-दत्त हो सकते हैं जबकि स्टॉक सदैव पूर्ण दत्त होते हैं।
3) शेयर का सदैव निश्चित अंकित मूल्य होता है जबकि स्टॉक का कोई निश्चित अंकित मूल्य नहीं होता है।
4) 'निक्षेपागार प्रणाली' के अंतर्गत खरीदे गये शेयरों को छोड़कर प्रत्येक शेयर की एक निश्चित संख्या होती है जो उसे अन्य शेयरों से पृथक करती है जबकि स्टॉक की ऐसी कोई संख्या नहीं होती।
5) शेयरों के निर्गमन से पूर्व शेयर-पूँजी का रजिस्ट्रार के पास पंजीयन कराना आवश्यक है, जबकि स्टॉक के निर्गमन के लिए ऐसा नहीं करना पड़ता।
6) शेयर का अंतरण केवल पूर्ण इकाई में ही किया जाता है जबकि स्टॉक को किसी भी राशि के टुकडों में अंतरित किया जा सकता है।

शेयर –पूँजी

शेयर-पूँजी से तात्पर्य उस पूँजी से है जो कि कंपनी को शेयरों के निर्गमन से प्राप्त हुई है अथवा प्राप्त करनी है। कंपनी की पूँजी संरचना में साधारण तथा शेयर-पूँजी के जो विभिन्न रूप पाये जाते हैं उन्हें "शेयर-पूँजी के प्रकार" कहा जाता है।

शेयर-पूँजी के प्रकार निम्नलिखित हैं :

1. **अधिकृत पूँजी :-** यह कंपनी की शेयर-पूँजी की अधिकतम सीमा प्रकट करती है। इसका उल्लेख कंपनी के ज्ञापन-पत्र में किया जाता है तथा कंपनी इस राशि तक ही पूँजी जारी करने के लिए अधिकृत होती है। कंपनी का ज्ञापन-पत्र रजिस्ट्रार के पास पंजीकृत होता है। अत: इसे रजिस्ट्रर्ड पूँजी भी कहा जाता है। कंपनी प्राय: इस राशि से कम पूँजी ही निर्गमित करती है, अत: इसे नाममात्र की पूँजी भी कहते हैं।
2. **निर्गमित पूँजी :-** यह अधिकृत पूँजी के उस भाग का अंकित मूल्य है जो नकद राशि अथवा अन्य किसी प्रतिफल के लिए वास्तव में आबंटित किया जाता है तथा इसमें ज्ञापन-पत्र पर हस्ताक्षरकर्ताओं द्वारा लिए गए शेयर भी सम्मिलित किये जाते हैं।
3. **अभिदत्त पूँजी :-** यह अधिकृत पूँजी के उस भाग का प्रदत्त मूल्य हैं जो नकद राशि अथवा अन्य किसी प्रतिफल के लिए वास्तव में आबंटित किया जाता है तथा इसमें ज्ञापन-पत्र पर हस्ताक्षर कर्त्ताओं द्वारा लिए गये शेयर भी सम्मिलित किए जाते हैं। इस प्रकार, यदि किसी कंपनी के शेयर पूर्ण-दल हैं तो उसकी अभिदत्त पूँजी तथा निर्गमित पूँजी में कोई अंतर नहीं होगा। अभिदत्त पूँजी नामक शीर्षक का महत्व केवल उन परिस्थितियों में ही होगा जब:

क) शेयर आंगिक दत्त हों, या

ख) कुछ शेयरों पर याचना राशि का भुगतान न हुआ हो, या

ग) कुछ शेयर याचना राशि का भुगतान न होने के कारण जब्त कर लिए गए हों।

शेयर-पूँजी का घटाना

यह सुनिश्चित करने के लिए कि कंपनी की परिसम्पत्ति उसके शेयर धारियों में बिना रोक-टोक न बाँट दी जाए, कंपनी अधिनियम के अंतर्गत शेयर-पूँजी को घटाने से संबंधित कठोर-प्रतिबंध लगाए गए हैं। केवल वैद्य और युक्तियुक्त प्रयोजनों के लिए ही शेयर-पूँजी को घटाने की अनुज्ञा दी जा सकती है। उदाहरण के लिए किसी कंपनी के निम्न परिस्थितियों में शेयर-पूँजी घटाने की अनुज्ञा दी जा सकती है:

i. ऐसी शेयर-पूँजी बट्टे खाते डालना जो डूब चुकी है या उपलब्ध परिसंपत्ति जिसका प्रतिनिधित्व नहीं करती;
ii. ऐसी दत्त शेयर –पूँजी को शेयर धारियों को लौटाना जो कंपनी की आवश्यकताओं से अधिक है तथा जिसका लाभदायक उपयोग नहीं किया जा सकता।

शेयर-पूँजी को घटाने की प्रक्रिया

शेयर-पूँजी को घटाने की प्रक्रिया निम्नलिखित है:

i. शेयर-पूँजी को घटाने के लिए सर्वप्रथम विशेष संकल्प पारित किया जाना चाहिए तथा संकल्प पारित करने के 30 दिन के भीतर संकल्प की एक प्रतिलिपि रजिस्ट्रार को भेजी जानी चाहिए।
ii. शेयर-पूँजी में कमी किये जाने की पुष्टि कराने के लिए ट्रिब्यूनल में याचिका प्रस्तुत की जानी चाहिए। ट्रिब्यूनल द्वारा ऐसी याचिका की सूचना केन्द्र सरकार, कंपनी रजिस्ट्रार, सूचीयत कंपनी की दशा में सेबी एवं कंपनी के लेनदारों को दी जायेगी। ट्रिब्यूनल सूचना की प्राप्ति की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर इसे दिये गये रिप्रजेन्टेसन, यदि कोई हो, को ध्यान में रखते हुए याचिका पर विचार करेगा।
iii. ट्रिब्यूनल पहले स्वयं को इस बात से संतुष्ट करेगा कि पूँजी के घटाये जाने से लेनदारों एवं शेयरधारकों के हितों पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा। ट्रिब्यूनल आदेश देने से पूर्व यह सूनिश्चित करेगा:

क) कि ऐसे सभी व्यक्तियों को जिनके हित परिवर्तन से प्रभावित होने वाले हों, समुचित सूचना दे दी गई है;

ख) कि प्रस्तावित परिवर्तन का विरोध करनेवाले प्रत्येक लेनदार के ऋण का या तो भुगतान कर दिया गया है अथवा उसकी सहमति प्राप्त कर ली गई है; तथा

ग) कि प्रस्तावित शेयर-पूँजी में कमी, कंपनी के सब प्रकार के शेयरधारियों के हितों को ध्यान में रखते हुए उचित तथा न्यायसंगत है।

यदि ट्रिब्यूनल पूर्ण रूप से संतुष्ट हो जाता है तो वह ऐसी शर्तों के अधीन जिन्हें वह उचित समझता है, शेयर-पूँजी में कमी की पुष्टि का आदेश जारी कर सकता है।

iv. इसके पश्चात् ट्रिब्यूनल द्वारा दिये गये शेयर-पूँजी को घटाने संबंधी सहमति के आदेश को कंपनी उसी तरीके से प्रकाशित करेगा जैसा ट्रिब्यूनल ने निर्धारित किया है।
v. ट्रिब्यूनल के पुष्टिकरण आदेश की प्रमाणित प्रतिलिपि परिवर्तित ज्ञापन-पत्र की प्रतिलिपि के साथ, आदेश की तिथि के 30 दिन के भीतर रजिस्ट्रार के पास भेजी जानी चाहिए। रजिस्ट्रार उक्त प्रलेखों

का पंजीकरण कर लेगा तथा कंपनी को ऐसी पंजीकरण का प्रमाण-पत्र जारी कर देगा। रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकरण की तिथि से शेयर-पूँजी में की जानेवाली कमी प्रभावशाली होगी।

शेयर-पूँजी को घटाने की पद्धतियाँ

कंपनी अधिनियम के अनुसार कंपनी अपनी शेयर-पूँजी को किसी भी पद्धति से घटाने के लिए स्वतंत्र है तथापि अधिनियम की धारा 66 (1) के अंतर्गत निम्नलिखित तीन पद्धतियाँ निर्दिष्ट की गई हैं जिनको कोई कंपनी अपनी शेयर-पूँजी घटाने के लिए अपना सकती है :

क) ऐसी शेयर-पूँजी को बट्टे-खाते डालना जो डूब चुकी है या उपलब्ध परिसंपत्ति जिसका प्रतिनिधित्व नहीं करती; अथवा

ख) उन शेयरों को जो पूर्ण - दत्त नहीं है उनके अयाचित भाग की सीमा तक सदस्यों का दायित्व कम करना; अथवा

ग) ऐसी दत्त शेयर –पूँजी को शेयर धारियों को लौटाना जो कंपनी की आवश्यकताओं से अधिक है।

यह महत्वपूर्ण है कि याचना राशि का भुगतान न करने पर की गई ‘‘शेयरों की जब्ती’’ तथा विमोचनशील पूर्वाधिकार शेयरों का विमोचन शेयर-पूँजी में कमी नहीं माना जाता यद्यपि ये सभी शक्तियाँ अधिनियम के अंतर्गत कठोरता पूर्वक सुरक्षित है। इसके अलावा धारा 68 के अंतर्गत कंपनी द्वारा अपनी प्रतिभूतियों का पुनर्क्रय भी शेयर-पूँजी में कमी नहीं माना जाता है।

घटाये गये शेयरों के संबंध में सदस्यों का दायित्व

कंपनी अधिनियम की धारा 66 (7) व (8) के अनुसार, शेयर-पूँजी में कमी किये जाने के उपरांत, कंपनी का कोई भी भूतपूर्व अथवा वर्तमान सदस्य लिए गए शेयर पर प्रदत्त धनराशि तथा उसके घटाए गए अंकित मूल्य के अंतर के लिए ही दायी होता है। परंतु एक विशेष स्थिति में सदस्यों को उनके द्वारा लिए गए शेयरों के मूल अंकित मूल्य पर दायी ठहराया जा सकता है।

शेयरों के प्रकार

एक कंपनी में लाभांश तथा मतदान आदि अधिकार में भिन्नता रखने वाले कई प्रकार के शेयर हो सकते हैं। विभिन्न प्रकार के शेयरों का वर्गीकरण निम्नलिखित चार्ट के माध्यम से दर्शाया गया है :

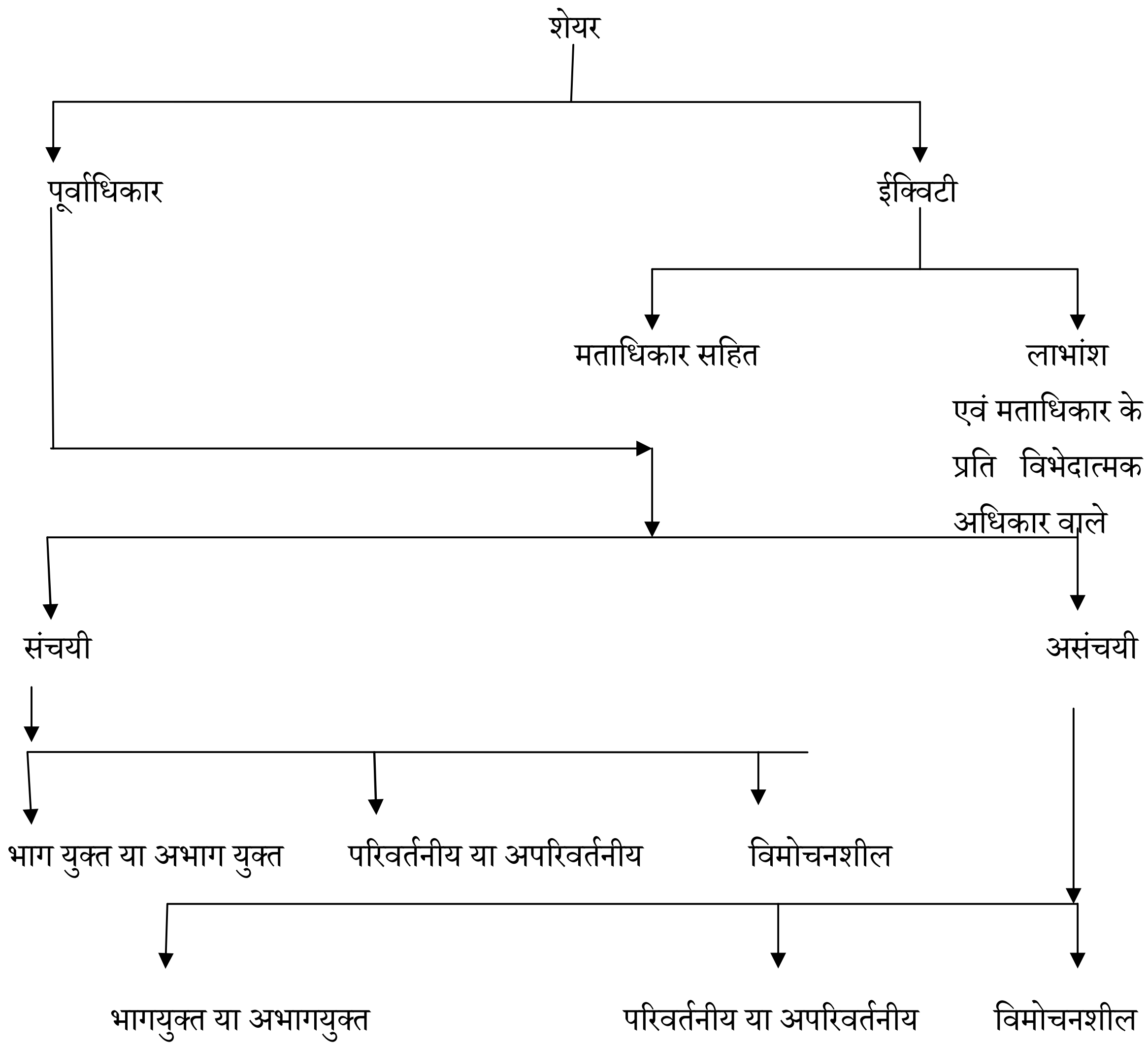

पूर्वाधिकार शेयर

कंपनी अधिनियम की धारा 43 के अनुसार, ''पूर्वाधिकार शेयर ऐसे शेयर हैं जिन्हें (क) कंपनी के जीवन काल में एक निश्चित दर से लाभांश पाने का प्रथम अधिकार होता है, तथा (ख) कंपनी के समापन के समय पूँजी के वापस लौटाये जाने का भी प्रथम अधिकार होता है।'' यदि किन्हीं शेयरों को उपर्युक्त दोनों पूर्वाधिकार में से केवल एक ही पूर्वाधिकार प्राप्त हों तो उन्हें इक्विटि शेयर ही माना जायेगा। पूर्वाधिकार शेयरधारी को ईक्विटी शेयरधारी की अपेक्षा केवल अधिमान्य अधिकार ही प्राप्त होता है। वह उस स्थिति में ही निश्चित दर से लाभांश पाएगा जबकि लाभांश घोषित किया गया हो। यदि किसी वर्ष कंपनी ने लाभांश घोषित नहीं किया तो उसे कोई लाभांश नहीं दिया जाएगा। पूर्वाधिकार शेयर के स्वामी की स्थिति ऋण-पत्र के स्वामी के समान नहीं होती। ऋण-पत्र के स्वामी को अपने विनियोग पर सदैव ब्याज प्राप्त करने का अधिकार होता है, चाहे कंपनी को हानि ही क्यों न हुई हो। परन्तु पूर्वाधिकार शेयर के स्वामी को सदैव लाभांश मिलते

रहने की गारंटी नहीं दी जाती बल्कि केवल यह पूर्वाधिकार दिया जाता है कि यदि कमी कंपनी लाभांश बाँटेगी तो उसे इक्विटी शेयर के स्वामी से पहले निश्चित दर से लाभांश दिया जायेगा।

पूर्वाधिकार शेयरधारियों के मताधिकार

कंपनी अधिनियम की धारा 47 (2) के अनुसार, मताधिकार सहित इक्विटी शेयर धारियों के समान पूर्वाधिकार शेयर धारियों को सामान्य मतदान का अधिकार नहीं होता है। उन्हें केवल निम्नलिखित दो दशाओं में ही मतदान का अधिकार प्राप्त होता है:

क) जब उनके अधिकारों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाला कोई संकल्प पारित किया जाना हो। कंपनी के समापन, शेयर पूँजी के वापस लौटाने तथा इक्विटी या पूर्वाधिकार शेयर-पूँजी में कमी किये जाने संबंधी संकल्प पूर्वाधिकार शेयरधारियों के अधिकारों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाले माने जाते हैं। इसलिए, इन संकल्पों पर पूर्वाधिकार शेयरधारियों को मतदान का अधिकार होता है।

ख) जब उनके पूर्वाधिकार शेयरों पर दो वर्ष या अधिक अवधि तक लाभांश या लाभांश के कुछ भाग (लाभांश चाहे घोषित किया गया हो अथवा नहीं) का भुगतान न किया गया हो।

दो वर्ष या अधिक अवधि तक लाभांश का भुगतान न किए जाने पर पूर्वाधिकार शेयरधारियों को साधारण सभा में रखे जाने वाले सभी संकल्पों पर सामान्य मताधिकार प्राप्त होता है।

पूर्वाधिकार शेयरों के प्रकार

कंपनी की अंतर्नियमावली या विवरण-पत्रिता में बताए गए निर्गमन की शर्तों के आधार पर विभिन्न प्रकार के पूर्वाधिकार शेयर हो सकते है। कंपनी द्वारा निर्गमित किये जाने वाले पूर्वाधिकार शेयरों के प्रकार निम्नलिखित हैं :

1) **संचयी पूर्वाधिकार शेयर** – संयची पूर्वाधिकार शेयर वे शेयर हैं जिन पर यदि कंपनी किसी वर्ष लाभांश का भुगतान न कर सके तो इस बकाया लाभांश को प्राप्त करने का शेयरधारी का अधिकार संचित रहेगा। भविष्य में जब भी कंपनी लाभांश की घोषणा करेगी तो इक्विटी शेयर धारकों को लाभांश बॉटने से पहले कंपनी को ऐसे शेयरधारकों को विगत वर्षों के लाभांश की बकाया राशि एवं उस वर्ष के लाभांश का भुगतान करना होगा। कंपनी के समापन के समय ऐसे शेयरों पर लाभांश की बकाया राशि, यदि कोई हो, देय नहीं है, जब तक या तो इस संबंध में अंतर्नियमावली में कोई स्पष्ट व्यवस्था न हो या ऐसे लाभांश घोषित न कर दिए गए हों।
2) **असंचयी पूर्वाधिकार शेयर-** असंचयी पूर्वाधिकार शेयर वे शेयर हैं जिन्हें यदि किसी वर्ष लाभांश का भुगतान न किया जाए तो इस लाभांश की राशि को अगले वर्ष के लिए संचित नहीं किया जाता

बल्कि ऐसे शेयरधारियों का उस वर्ष के संबंध में लाभांश प्राप्त करने का अधिकार समाप्त हो जाता है।

3) **भागयुक्त पूर्वाधिकार शेयर** – भाग युक्त पूर्वाधिकार शेयरों पर एक निश्चित दर से लाभांश प्राप्त करने के अतिरिक्त शेयरधारी को, इक्विटी शेयरों पर एक निर्धारित दर से लाभांश दिए जाने के पश्चात शेष लाभ में पूर्व-निश्चित अनुपात में हिस्सा बाँटने का अधिकार दिया जाता है। ऐसे शेयरधारकों को कंपनी के समापन की दशा में इक्विटी शेयर-पूँजी को लौटाने के पश्चात् बची हुई संपत्ति में भी एक निश्चित अनुपात में हिस्सा बँटवाने का अधिकार दिया जा सकता है।
4) **अभागयुक्त पूर्वाधिकार शेयर-** अभाग युक्त पूर्वाधिकार शेयरों पर केवल एक निश्चित दर से लाभांश दिया जाता है। ऐसे शेयर धारियों को अतिरिक्त लाभ में भाग पाने का अधिकार नहीं होता है चाहे कंपनी में कितने भी अधिक लाभ क्यों न हों। यदि कंपनी की अंतर्नियमावली या निर्गमन की शर्तों में कुछ स्पष्ट न दिया गया हो तो सभी पूर्वाधिकार शेयर अभाग युक्त पूर्वाधिकार शेयर समझे जाते हैं।
5) **परिवर्तनीय पूर्वाधिकार शेयर-** परिवर्तनीय पूर्वाधिकार शेयर के धारक को एक निश्चित अवधि के बाद, अपने शेयर इक्विटी शेयर में परिवर्तन करने का अधिकार होता है।
6) **अपरिवर्तनीय पूर्वाधिकार शेयर-** अपरिवर्तनीय पूर्वाधिकार शेयर के धारक को अपने शेयर इक्विटी शेयर में परिवर्तन करने का अधिकार नहीं होता है। यदि कंपनी की अंतर्नियमावली या निर्गमन की शर्तों में कुछ न दिया गया हो तो सभी पूर्वाधिकार शेयर अपरिवर्तनीय ही समझे जाते हैं।
7) **विमोचनशील पूर्वाधिकार शेयर** – कंपनी अधिनियम 2013 की धारा 55 के अंतर्गत शेयरों द्वारा सीमित कंपनियों को 'विमोचनशील पूर्वाधिकार शेयर' जारी करने का अधिकार प्रदान किया गया है। ऐसे शेयर पर प्राप्त पूँजी को उनके धारकों को कंपनी के जीवन काल में ही लौटाया जा सकता है। इस प्रकार पूँजी के वापस लौटाने को पूँजी का विमोचन कहते है। सामान्यत: शेयर निर्गमन द्वारा प्राप्त पूँजी को केवल कंपनी के समापन पर ही लौटाई जा सकती है, क्योंकि यदि ऐसी पूँजी किसी भी समय कंपनी की इच्छानुसार लौटाई जा सकनी संभव हो तो लेनदारों की दृष्टि में कंपनी के पास कोई भी स्वामित्व-पूँजी न होने के समान स्थिति होगी।

विमोचन की शर्तें

कंपनी अधिनियम की धारा 55 (2) के अनुसार कंपनी को पूर्वाधिकार शेयरों के विमोचन के संबंध में निम्नलिखित प्रावधानों का पालन करना अनिवार्य है :

i. अभ्रर्नियमावली में ऐसे शेयरों के निर्गमन की अनुमाते होनी चाहिए।
ii. इन शेयरों का विमोचन तभी हो सकता है जबकि वे पूर्वादत्त हों।

iii. इन शेयरों का विमोचन केवल कंपनी के ऐसे लोगों में से ही किया जा सकता है जो अन्यथा लाभांश के रूप में बांटे जा सकते हैं; अथवा ऐसे नये शेयरों के जारी करने से प्राप्त धन-राशि से जो विमोचन के उद्देश्य से ही जारी किए गए हों। यदि इन शेयरों का विमोचन कंपनी के लाभ से किया जाता है तो विमोचित शेयरों के अंकित मूल्य के बराबर राशि एक विशेष आरक्षित कोष जिसे ''पूँजी विमोचन आरक्षित खाता'' कहते है; में अंतरित की जानी चाहिए।

iv. यदि शेयरों के विमोचन पर कोई प्रिमियम देना है तो उसकी व्यवस्था विमोचन से पूर्व कंपनी के लाभों से या 'प्रतिभूति प्रिमियम खाते' से की जानी चाहिए।

8) **अविमोचनशील पूर्वाधिकार शेयर-** अविमोचनशील पूर्वाधिकार शेयरों का विमोचन कंपनी के समापन के समय ही संभव होता है, कंपनी के जीवन काल में नहीं। कंपनी अधिनियम, 2013 के लागु होने के बाद अविमोचनशील पूर्वाधिकार शेयरों के निर्गमन के निषिद्ध कर दिया गया है।

ईक्विटी शेयर

कंपनी अधिनियम की धारा 43 के अनुसार, ईक्विटी शेयर से आशय उन शेयरों से है जो पूर्वाधिकार शेयर नहीं है अर्थात् इन शेयरों पर लाभांश का भुगतान पूर्वाधिकार शेयरों पर निश्चित दर से लाभांश चुकाने के पश्चात किया जाता है तथा कंपनी के समापन के समय पूँजी की वापसी भी पूर्वाधिकार शेयरधारियों की पूँजी को लौटाने के पश्चात ही की जाती है। इन शेयरों पर लाभांश तभी दिया जा सकता है जब संचालक-मंडल उसकी सिफारिस करे तथा कंपनी की वार्षिक साधारण सभा में उसको घोषित किया जाए। यही कारण है कि ऐसे शेयरों द्वारा प्राप्त शेयर-पूँजी ''जोखिम पूँजी'' का नाम दिया जाता है। ऐसे शेयर-धारियों का भाग्य कंपनी की उन्नति एवं अवनति के साथ बाँधा होता है। यदि कंपनी असफल होती है तो वास्तविक जोखिम इन शेयरधारियों को ही सहन करनी होती है, इसके विपरीत कंपनी की असाधारण सफलता पर साधारण शेयरधारी को सबसे अधिक लाभ होता है।

इक्विटी शेयरों के प्रकार

कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 43 के अनुसार, अब भविष्य में कंपनियाँ निम्नलिखित दो प्रकार के ईक्विटी शेयर निर्गमित कर सकती है :

1) मताधिकार सहित इक्विटी शेयर – ऐसे इक्विटी शेयरधारियों को सामान्य मताधिकार प्राप्त होते है; उन्हें कंपनी की किसी भी साधारण सभा में पारित किये जानेवाले प्रत्येक संकल्प पर मतदान का अधिकार प्राप्त होता है। मतगणना के लिए उनके मताधिकार कंपनी की प्रदत्त इक्विटी शेयर –पूँजी में उनके शेयर के अनुपात में होता है। इन शेयरधारियों का ही वास्तव में कंपनी के प्रबंधन एवं संचालन पर नियंत्रण होता है। ऐसे शेयरों को केवल 'इक्विटी शेयर' के नाम से भी जाना जाता है।

2) विभेदात्मक अधिकार वाले इक्विटी शेयर- ऐसे इक्विटी शेयरधारियों को लाभांश एवं मताधिकार के प्रति, केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित नियमों तथा शर्तों के अनुसार, विभेदात्मक अधिकार प्राप्त होते हैं।

केन्द्र सरकार ने इस धारा के अंतर्गत प्राप्त शक्ति का उपयोग करते हुए विभेदात्मक अधिकार वाले इक्विटी शेयरों के संबंध में नियम अधिसूचित कर दिये हैं। इन नियमों को ''कंपनी (शेयर-पूँजी एवं ऋण पत्र) नियमावली 2014'' के नाम से जाना जाता है। इस नियमावली का नियम 4, अन्य बातों के साथ-साथ, ''लाभांश एवं मताधिकार के संबंध में विभेदात्मक अधिकारों वाले इक्विटी शेयरों के निर्गमन'' के संबंध में नियमों को बताता है। संक्षेप में, इन नियमों के कुछ प्रावधान निम्नलिखित है :

i. शेयरों द्वारा सीमित प्रत्येक कंपनी अपनी कुल निर्गमित प्रदत्त ईक्विटी शेयर-पूँजी के 21 प्रतिशत तक लाभांश एवं मताधिकार के प्रति विभेदात्मक अधिकार वाले इक्विटी शेयर निर्गमित कर सकती है बशर्ते गत तीन वित्तीय वर्ष के दौरान कंपनी के पास कंपनी अधिनियम की धारा 123 के अनुसार लाभ की वितरण योग्य राशि रही हो तथा उसके निक्षेपों या ऋणपत्रों की परिपक्वता पर उनके पुनर्भुगतान करने में चूक न की हो।

ii. कंपनी की अंतर्नियमावली में ऐसे शेयरों के निर्गमन की व्यवस्था होनी चाहिए तथा शेयरधारियों के साधारण संकल्प द्वारा साधारण सभा में ऐसे संकल्प की पुष्टि कराई जानी चाहिए।

iii. साधारण सभा में पुष्टि कराई गई साधारण संकल्प में अन्य बातों के साथ-साथ
(क) मताधिकार की दर, एवं
(ख) अतिरिक्त लाभांश की दर, जो कि विभेदात्मक मताधिकार वाली इक्विटी शेयर-पूँजी पर लागु हो, दी जानी चाहिए।

iv. कंपनी अपनी सामान्य मताधिकार वाली इक्विटी शेयर-पूँजी को विभेदात्मक मताधिकार वाली इक्विटी शेयर-पूँजी में तथा विभेदात्मक मताधिकार वाली इक्विटी शेयर-पूँजी को सामान्य मताधिकार वाली इक्विटी शेयर-पूँजी में परिवर्तित नहीं कर सकेगी।

v. मताधिकार या लाभांश के संबंध में विभेदात्मक अधिकार वाले इक्विटी शेयरधारियों के उसी वर्ग के बोनस शेयर या 'अधिकार शेयर' प्राप्त करने का अधिकार होगा तथा उन्हें उस विभेदात्मक मताधिकार जिनके साथ उन्हें शेयर जारी किये गये थे, को छोड़कर कंपनी की सदस्यता संबंधी अन्य सभी अधिकार प्राप्त होंगे।

इस प्रकार अब कंपनियां लाभांश की अतिरिक्त दर वाले गैर-मतदान शेयरों सहित विभेदात्मक मताधिकार वाले इक्विटी शेयरों को निर्गमित कर सकती है।

शेयरधारियों के अधिकारों में परिवर्तन

कंपनी के विभिन्न प्रकार के शेयरधारियों को लाभांश तथा मतदान संबंधी विभिन्न प्रकार के अधिकार प्राप्त होते हैं। इन अधिकारों को 'वर्ग अधिकार' कहा जाता है तथा इनका उल्लेख या तो अंतर्नियमावली या ज्ञापन-पत्र या निर्गमन की शर्तों में किया जाता है। इन अधिकारों में कोई भी परिवर्तन कंपनी अधिनियम की धारा 48 के अधीन दी गई प्रक्रिया के अनुसार ही किया जा सकता है। परिणामत: विभिन्न प्रकार के शेयरधारियों के अधिकारों में परिवर्तन के लिए :

(क) कंपनी की अंतर्नियमावली अथवा ज्ञापन-पत्र अथवा उन शेयरों के निर्गमन संबंधी नियमों द्वारा परिवर्तन संबंधी अनुमति होनी चाहिए, तथा

(ख) परिवर्तन से प्रभावित वर्ग के शेयरधारियों की अलग से सभा बुलाकर परिवर्तन की पुष्टि हेतु एक विशेष संकल्प पारित किया जाना चाहिए।

यदि शेयरधारियों के किसी एक वर्ग के परिवर्तन का प्रभाव शेयरधारियों के किसी अन्य वर्ग पर पड़ता हो तो एक विशेष संकल्प पारित करके शेयरधारियों के ऐसे अन्य वर्ग की सहमति भी ली जानी चाहिए।

प्रतिभूतियों का प्रीमियम पर निर्गमन

सामान्यत: प्रतिभूतियों का निर्गमन अपने सम-मूल्य अथवा अंकित मूल्य अर्थात् प्रतिभूति प्रमाणपत्र पर लिखे मूल्य पर किया जाता है। प्रतिभूतियों के सम-मूल्य पर निर्गमन पर कोई प्रतिबंध नहीं है। परन्तु कभी-कभी एक सफल कंपनी अपनी प्रति-भूतियों को प्रीमियम पर निर्गमित करती है। प्रतिभूतियों को अंकित मूल्य से अधिक मूल्य पर निर्गमित करना 'प्रीमियम पर निर्गमन' कहलाता है। कंपनी अधिनियम में इस प्रकार के निर्गमन पर कोई प्रतिबंध नहीं है और कंपनी अपनी स्वेच्छानुसार जब चाहे इस प्रकार का निर्गमन करने के लिए स्वतंत्र है। साथ ही, कंपनी एक ही प्रकार की प्रतिभूतियों पर विभिन्न दरों से प्रीमियम प्राप्त कर सकती है।

अधिनियम की धारा 52 द्वारा प्रतिभूतियों पर प्राप्त प्रीमियम की राशि के प्रयोग पर कुछ प्रतिबंध लगाए गए हैं। इस धारा के अनुसार प्रीमियम को राशि 'प्रतिभूति प्रीमियम खाते' में जमा की जानी चाहिए तथा इस राशि को कंपनी की दत्त शेयर-पूँजी के समान ही समझा जाना चाहिए।

प्रतिभूति प्रीमियम खाते की धन-राशि का प्रयोग निम्नलिखित पाँच उद्देश्यों के लिए प्रयोग करने की स्वतंत्रता दी गई है :

1) कंपनी के सदस्यों में पूर्णदत्त बोनस शेयर जारी करने के लिए।

2) कंपनी के प्रारंभिक व्ययों को राइट ऑफ करने के लिए।
3) कंपनी के विमोचनशील पूर्वाधिकार शेयरों अथवा ऋण-पत्रों के विमोचन पर दिए जानेवाले प्रीमियम का भुगतान करने के लिए।
4) कंपनी के शेयरों या ऋण-पत्रों के निर्गमन पर किए गए व्ययों, कमीशन या कटौती को राइट-ऑफ करने के लिए।
5) धारा 68 के उपबंधों के अधीन रह कर कंपनी द्वारा अपनी प्रतिभूतियों को वापस क्रय करने के लिए।

शेयरों का बट्टे (Discount) पर निर्गमन

जब कंपनी अपने शेयरों को अंकित मूल्य से कम मूल्य पर निर्गमित करती है तो इसे 'बट्टे पर निर्गमन' कहा जाता है। कंपनी अधिनियम की धारा 53 के अनुसार कोई भी कंपनी बट्टे पर शेयरों का निर्गमन नहीं करेगी। इस धारा के अनुसार यदि कंपनी कोई भी शेयर (श्रमसाध्य ईक्विटी शेयर के छोड़कर) बट्टे पर निर्गमित करती है तो वह शून्य होगा।

श्रम साध्य ईक्विटी शेयरों का निर्गमन

कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 54 में 'श्रम साध्य ईक्विटी शेयर' को जारी करने का प्रावधान किया गया है। अधिनियम की धारा 2(88) के अनुसार, ''श्रम साध्य ईक्विटी शेयर से तात्पर्य ऐसे ईक्विटी शेयरों से है जो कंपनी द्वारा अपने संचालकों या कर्मचारियों को बट्टे पर या नकदी से भिन्न किसी प्रतिफल के बदले में, जैसे बौद्धिक संपत्ति अधिकार, या जानकारी अथवा व्यवहार ज्ञान, किसी भी नाम से जाना जाय, प्राप्त करने के लिए निर्गमित किए जाएँ। अत: श्रम साध्य ईक्विटी शेयर वास्तव में एक प्रकार का ईक्विटी शेयर है और ईक्विटी शेयर पर लागू होने वाले सभी उपबंध इन शेयरों पर लागू होते हैं।

'श्रम साध्य ईक्विटी शेयरों' को जारी करने की शर्तें निम्नलिखित हैं :

1) शेयर ऐसी श्रेणी के होने चाहिए जो पहले आबंटित किए जा चुके हों।
2) कंपनी को व्यवसाय आरंभ किए हुए कम से कम एक वर्ष बीत गया हो।
3) निर्गमन को अधिकृत करने के लिए शेयरधारियों द्वारा सामान्य सभा में एक विशेष संकल्प पारित किया जाना चाहिए।
4) पूर्वलिखित संकल्प में यह उल्लेख होना चाहिए कि कितने शेयर जारी किए जायेंगे, उनका बाजार मूल्य क्या है, उनका मूल्य क्या होगा, वे किस श्रेणी के होंगे तथा किस श्रेणी के कर्मचारियों या संचालकों को निर्गत किए जाएंगे।

5) किसी मान्यता प्राप्त स्टॉक एक्सचेंज में सूचीगत शेयरों की दशा में से बी द्वारा जारी किए गए विनियमों का तथा असूचीगत शेयरों की दशा में केन्द्र सरकार द्वारा जारी किए गए नियमों का पालन किया जाना चाहिए।

कंपनी द्वारा अपने ही शेयरों को खरीदने पर प्रतिबंध

कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 67 के अनुसार कोई भी कंपनी चाहे सार्वजनिक हो अथवा निजी, अपने शेयर नहीं खरीद सकती क्योंकि ऐसा करने से शेयर-पूँजी में स्थायी कमी हो जाती है, और जो उस समय तक करना गैर कानूनी है जब तक धारा 66 या 242, के अंतर्गत पूँजी में कमी करने के लिए बताई गई प्रक्रिया न अपनाई गई हो धारा 66 का विस्तृत विवरण इस अध्याय के प्रारंभ में तथा धारा 242 का विस्तृत विवरण अन्य अध्याय में दिया गया है। इन धाराओं के उपबंधों के विपरीत की गई पूँजी में कमी गैर-कानूनी तथा कंपनी के लिए शक्तिबध्य होती है। अधिनियम की धारा 67 के अधीन कंपनी द्वारा अपने ही शेयर को खरीदने पर प्रतिबंध लगाने का उद्देश्य कंपनी की दत्त शेयर-पूँजी की रक्षा करना है क्योंकि वह लेनदारों के हितों की सुरक्षा की निधि होती है।

अपनी प्रतिभूतियों का बाईबैक

कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 67 कंपनियों को अपने शेयर खरीदने की अनुमति नहीं देती है क्योंकि इससे शेयर-पूँजी में स्थायी रूप से कमी आती है। कंपनी अधिनियम में यह व्यवस्था की गई है कि कंपनियों द्वारा धारा 66 में बताई गई प्रक्रिया को अपनाकर केवल वैद्य और युक्तियुक्त प्रयोजनों के लिए ही शेयर-पूँजी में कमी की जा सकती है ताकि कंपनी की संपत्तियों को शेयरधारकों में स्वतंत्रतापूर्वक न बाँटा जा सके।

भारतीय व्यावसायिक क्षेत्र द्वारा यह मांग उठाई जाती रही है कि अंतरराष्ट्रीय व्यवहार के अनुरूप कंपनियों को अपने शेयर खरीदने की अनुमति दी जाये। कंपनी अधिनियम, 2013 की धाराएँ 68 से 70 में कुछ निश्चित प्रतिबंधों के अधीन रहते हुए कंपनियों को अपने शेयर बाइबैक करने की अनुमति दी गई है।

धारा 68 से 70 में 'बाईबैक' संबंधी मुख्य प्रावधान इस प्रकार हैं –

1) **वे कोष जिनमें से बाईबैक के लिए धनराशि उपलब्ध हो सकेगी कोई कंपनी अपने शेयरों या अन्य प्रतिभूतियों को खरीदने के लिए निम्नलिखित संसाधनों से भुगतान कर सकती है :**

i. प्रतिभूति प्रीमियम लेखे में से; या

ii. मुक्त आरक्षित कोषों में से; या

iii. किन्ही शेयरों या अन्य बिनिर्दिष्ट प्रतिभूतियों के निर्गमन से प्राप्त धनराशि से।

यह उल्लेखनीय है कि किसी प्रकार के शेयरों या अन्य विनिर्दिष्ट प्रतिभूतियों का बाईबैक उसी प्रकार के शेयरों या उसी प्रकार की अन्य विनिर्दिष्ट प्रतिभूतियों के किसी पूर्व निर्गमन से प्राप्त धनराशि से नहीं किया जायेगा।

2) **'पूँजी विमोचन आरक्षित खाते'** में निश्चित धनराशि को अंतरित करना- कंपनी अधिनियम की धारा 69 के अनुसार, जब कोई कंपनी अपने शेयरों को 'मुक्त आरक्षित कोषों' में से क्रय करती है तो उस कंपनी के ऐसे क्रय किए गए शेयरों के अंकित मूल्य के बराबर धनराशि को 'पूँजी विमोचन आरक्षित खाते' में अंतरित किया जाना चाहिए तथा इसका ब्यौरा तुलन-पत्र में दिया जाना चाहिए।

अधिनियम की धारा 69 (2) के अनुसार, ''पूँजी विमोचन आरक्षित खाते'' का कंपनी द्वारा उपयोग पूर्ण दत्त बोनस शेयरों के निर्गमन के लिए किया जा सकता है।

3) **बाइबैक करने से पहले पूरी की जानेवाली शर्तें** – अपने शेयरों या अन्य विनिर्दिष्ट प्रतिभूतियों का बाइबैक करने से पहले कंपनी के लिए निम्नलिखित शर्तों का पालन करना आवश्यक है :

i. कंपनी की अंतर्नियमावली में प्रतिभूतियों के बाइबैक करने की व्यवस्था होनी चाहिए।

ii. बाइबैक को अधिकृत करने के लिए शेयरधारियों द्वारा एक विशेष संकल्प पारित किया जाना चाहिए।

iii. उस सभा की सूचना के साथ, जिसमें विशेष संकल्प पारित किया जाना प्रस्तावित है, एक विवरण-पत्र संलग्न किया जाना चाहिए जिसमें निम्नलिखित तथ्यों का उल्लेख हो:

क) बाइबैक संबंधी सभी महत्वपूर्ण तथ्यों का पूरा तथा विस्तृत स्पष्टीकरण :

ख) वापस क्रय करने की आवश्यकता का स्पष्टीकरण

ग) बाइबैक स्कीम में किस वर्ग की प्रतिभूतियाँ उल्लिखित हैं;

घ) धनराशि जो इस कार्य में लगाई जाएगी;

ङ) कितने समय में बाइबैक प्रक्रिया को पूरा किया जाना है।

iv. बाइबैक द्वारा वापस लिए जाने वाली प्रतिभूतियों का मूल्य कंपनी की कुल प्रदत्त पूँजी और मुक्त आरक्षित कोषों के 25% से अधिक नहीं होनी चाहिए।

v. प्रतिभूतियों के बाईबैक करने के पश्चात् कंपनी द्वारा धारित ऋण कंपनी की शेयर-पूँजी तथा मुक्त आरक्षित कोषों से दुगुने से अधिक नहीं होनी चाहिए।

vi. बाईबैक किये जानेवाले शेयर या अन्य विनिर्दिष्ट प्रतिभूतियाँ पूर्णदत्त होनी चाहिए।

vii. किसी मान्यताप्राप्त स्टॉक एक्सचेंज में सुचीगत शेयरों या विनिर्दिष्ट प्रतिभूतियों के बाईबैक की दशा में 'सेबी' द्वारा जारी किए गए निर्देशक सिद्धांतों का तथा असूचीगत शेयरों या विनिर्दिष्ट

प्रतिभूतियों की दशा में केन्द्र सरकार द्वारा जारी किए गए निर्देशक सिद्धांतों का पालन किया जाना चाहिए।

viii. प्रत्येक बाईबैक प्रक्रिया को इसके लिए विशेष संकल्प अथवा संचालक मंडल का संकल्प पारित किए जाने के बारह महीने के भीतर पूरा कर लिया जाना चाहिए।

ix. दो बाईबैकों के बीच कम से कम 1 वर्ष का अंतराल होना चाहिए।

4) **बाईबैक के ढंग** – कंपनी अधिनियम की धारा 68 (5) के अनुसार प्रतिभूतियों को वापस खरीदने के निम्नलिखित ढ़ंग बताए गए हैं:

क) विद्यमान शेयरधारकों या प्रतिभूतिधारकों से आनुपातिक आधार पर; या

ख) खुले बाजार से ; या

ग) 'स्कन्ध-विकल्प योजना' या 'श्रम-साध्य ईक्विटी शेयर' योजना के अनुकरण में कंपनी के कर्मचारियों को जारी की गई प्रतिभूतियों को क्रय करके।

5) **शोधन क्षमता की घोषणा** – कंपनी अधिनियम की धारा 68 (6) के अनुसार प्रतिभूतियों का वास्तव में बाईबैक करने से पूर्व कंपनी के संचालकों को, शपथ-पत्र द्वारा सत्यापित, निर्देशित प्रारूप में 'शोधन क्षमता की घोषणा करनी होगी। इसमें उन्हें यह घोषित करना होता है कि उन्होंने कंपनी के कार्यकलापों की पूरी जाँच कर ली है जिसके परिणाम स्वरूप उनकी राय में कंपनी अपनी सभी देयताओं का पूर्ण रूपेण भुगतान करने में समर्थ है और घोषण की तिथि से अगले एक वर्ष के भीतर दिवालिया स्थिति में नहीं होगी। घोषणा-पत्र की एक प्रतिलिपि कंपनियों के रजिस्ट्रार तथा किसी मान्यताप्राप्त स्टॉक एक्सचेंज पर सूचीबद्ध होने की दशा में सेबी के यहाँ पंजीकरण हेतु फाइल करनी होगी।

6) **प्रतिभूतियों को वस्तुत: नष्ट करना** – कंपनी अधिनियम की धारा 68(7) के अनुसार बाईबैंक प्रक्रिया के पूरा होने के पश्चात्, पुरा होने की तारीख से सात दिन के भीतर, कंपनी को बाईबैंक में प्राप्त प्रतिभूतियाँ वस्तूत: नष्ट करनी होगी।

7) **बाइबैक के पश्चात् अतिरिक्त निर्गमन** – धारा 68 (8) के अनुसार बाईबैंक प्रक्रिया के पूरा होने के पश्चात् पूरा होने की तारीख से 6 महीने के भीतर कंपनी उसी प्रकार की प्रतिभूतियों का निर्गमन नहीं करेगी जिस प्रकार की प्रतिभूतियों का बाईबैक किया गया था।

8) **बाईबैंक की गई प्रतिभूतियों का रजिस्टर** – धारा 68 (9) के अनुसार प्रतिभूतियों को वापस क्रय करनेवाली कंपनी को इस प्रकार वापस क्रय की गई प्रतिभूतियों का एक रजिस्टर रखना होगा जिसमें दिया जानेवाला विवरण इस प्रकार होगा-

i. वापस खरीदी गई प्रतिभुतियों का विवरण;

ii. उनके लिए दिया गया प्रतिफल;

iii. उनको रद्द करने की तारीख;

iv. उनको वस्तुत: रद्द करने की तारीख;

v. सरकार द्वारा निर्देशित अन्य विवरण।

9) **बाईबैक की विवरणी** – धारा 68 (10) के अनुसार, बाईबैंक प्रक्रिया के पूरा होने के पश्चात् पूरा होने की तारीखा से 30 दिन के भीतर कंपनियों के रजिस्ट्रार और सेबी को निर्देशित विशिष्टियों वाली एक विवरणी भेजनी होगी।

10) **दण्ड-धारा 68 (11) के अनुसार यदि कोई कंपनी पूर्व** –लिखित उपबंधों एवं उस धारा के अधीन बनाए गए किन्ही नियमों का उल्लंघन करती है तो कंपनी को 1लाख रूपये से 3 लाख रूपये तक के जुर्माने तथा प्रत्येक दोषी अधिकारी को 3 वर्ष तक के कारावास अथवा 1 लाख रूपये से 3 लाख रूपये तक के जुर्माने अथवा दोनों से दंडित किया जा सकता है।

निर्देशित परिस्थितियों में बाईबैक करने पर प्रतिबंध - धारा 70 के अधीन यह प्रतिबंध लगाया गया है कि कोई भी कंपनी अपने ही शेयर या अन्य विनिर्दिष्ट प्रतिभूतियों को बाईबैक करने का कार्य (क) अपनी सहायक कंपनियों सहित किसी अन्य सहायक कंपनी के माध्यम से, या (ख) किसी विनियोग कंपनी या विनियोग कंपनियों के समूह के माध्यम से नहीं करेगी।

बाईबैक की विधियाँ

बाईबैक की विधियों का संक्षेप में वर्णन निम्नलिखित है-

1) **निविदा विधि** – उस विधि को धारा 68 (5) में ‘‘आनुपातिक आधार पर विद्यमान प्रतिभूतिधारकों से बाईबैक’’ के रूप में बताया गया है। इस विधि में कंपनी उस कीमत का निर्धारण एवं घोषणा करती है जिसपर वह अपने शेयरधारकों से निर्दिष्ट संख्या में शेयरों को खरीदना चाहती है।

2) **खुले बाजार में क्रय** – इस विधि के अंतर्गत बाईबैक निम्नलिखित तरीकों से किया जाता है-

क) स्टॉक एक्सचेंज के माध्यम से क्रय- इस विधि में कंपनी द्वारा बाईबैक हेतु प्रतिभूतियों की निर्दिष्ट संख्या तक तथा उस कीमत तक जो कीमत बाईबैक करने की पूर्वनिर्धारित दर से अधिक नहीं होती, शेयरों को बाईबैक किया जाता है। सेबी के विनियमों के अनुसार प्रवर्तक एवं कंपनी को नियंत्रित करनेवाले व्यक्ति अपने शेयरों को इस विधि के अंतर्गत बाईबैक के लिए प्रस्तावित नहीं कर सकते।

ख) डच निलामी विधि – इस विधि को सेबी के विनियमों में ‘‘बाईबैक हेतु विपरीत बुक-बिल्डिंग प्रक्रिया’’ के रूप में बताया गया है। इस विधि के अंतर्गत कंपनी निर्दिष्ट प्रस्ताव कीमत सीमा मैं रहते हुए अपने शेयरों की निर्दिष्ट संख्या को क्रय करने का शेयरधारकों को प्रस्ताव करती है।

शेयरधारकों को बाईबैक हेतु प्रस्तावित शेयरों की कीमत तथा संख्या को कोट करते हुए बोली लगाने को कहा जाता है। शेयरधारकों से प्राप्त बोलियों के आधार पर कंपनी द्वारा उस न्यूनतम कीमत से अधिक में से प्रस्तावित कीमत को चुना जाता है जिसपर प्रस्तावित किए गए शेयरों की संचयी संख्या बाईबैक के लिए कंपनी के अधिकतम शेयरों के बराबर व अधिकतम हो जाती है।

शेयर पूँजी का अतिरिक्त निर्गमन

अपने बढ़ते व्यापार के लिए आवश्यक वित्त जुटाने हेतु कंपनी को अतिरिक्त पूँजी की आवश्यकता हो सकती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए निम्नलिखित दो दशाओं में से किसी एक में कंपनी नए शेयरों को निर्गमित करने का निर्णय ले सकती है :

क) जब कंपनी की अधिकृत शेयर - पूँजी से कम धनराशि के शेयर ही जारी किए गए हों और शेयरों का प्रस्तावित अतिरिक्त निर्गमन अधिकृत पूँजी की सीमा के अंदर हो।

ख) जब कंपनी की अधिकृत शेयर-पूँजी की राशि के बराबर शेयर जारी किए जा चुके हों और शेयरों का प्रस्तावित अतिरिक्त निर्गमन अधिकृत पूँजी की सीमा के बाहर हो।

निर्गमित किए जानेवाले अतिरिक्त शेयरों के आबंटन की रीति

निर्गमित किए जाने वाले नए ईक्विटी अथवा पूर्वाधिकार शेयरों के आबंटन की रीति के संबंध में धारा 62 में उपबंध दिए गए हैं जिससे कंपनी के शेयरों के वर्तमान संतुलन को बिगाड़े बगैर ही नए शेयरों का न्यायोचित वितरण संभव हो सके। इस धारा के अनुसार जब कंपनी द्वारा किसी भी समय नए शेयरों का आबंटन करके कंपनी की अभिदत्त पूँजी में वृद्धि करना प्रस्तावित किया जाता है, तब निम्नलिखित शर्तों का पालन किया आवश्यक है :

i. निर्गमित किए जाने वाले नये शेयर विद्यमान ईक्विटी शेयरधारियों को उनके द्वारा धारित वर्तमान शेयरों के अनुपात में प्रस्तावित किए जाने चाहिए।
ii. प्रस्ताव एक लिखित सूचना द्वारा किया जाना चाहिए, जिसमें प्रस्तावित शेयरों की संख्या एवं अवधि का उल्लेख होना चाहिए, जिसके अंतर्गत शेयरधारियों को शेयरों के प्रस्ताव की स्वीकृति कंपनी के पास भेजनी होती है।
iii. प्रस्ताव की स्वीकृति देने की अवधि सूचना की तिथि से 15 दिन से कम तथा 30 दिन से अधिक नहीं होनी चाहिए।

iv. यदि अंतर्नियमावली में कोई विपरीत व्यवस्था नहीं है तो सूचना में यह भी उल्लिखित किया जाना चाहिए कि शेयरधारी प्रस्तावित शेयरों का, अपने नामांकित व्यक्ति के पक्ष में त्याग कर सकते हैं।

अपवाद

अधिनियम की धारा 62 की उपधारा (1) के उपवाक्यांश (ख) एवं (ग) के अनुसार निम्नलिखित दो परिस्थितियों में नए शेयरों का निर्गमन वर्तमान शेयरधारियों को बिना प्रस्तावित किए, बाहरी व्यक्तियों को किया जा सकता है:

(क) यदि कंपनी ने विशेष संकल्प द्वारा यह निर्णय लिया है कि नए शेयर कर्मचारियों को 'कर्मचारी स्कन्ध विकल्प योजना' के अंतर्गत निर्दिष्ट शर्तों में रहते हुए आबंटित किये जायेंगे; या

(ख) यदि कंपनी ने विशेष संकल्प द्वारा यह निर्णय लिया है कि निर्धारित शर्तों के अधीन नए शेयरों के निर्गमन का प्रस्ताव किन्हीं व्यक्तियों को उस कीमत पर किया जाये जिसे पंजीयत मूल्यांक की मूल्यांकन रिपोर्ट में तय किया गया हो।

बोनस शेयरों का निर्गमन

जब कंपनी अपने लाभों एवं आरक्षित निधि को लाभांश के रूप में वितरित नहीं करती बल्कि उनका सदस्यों को पूर्णदत्त शेयरों के निर्गमन के लिए प्रयोग करती है तो ऐसे निर्गमित शेयरों को बोनस शेयर कहा जाता है। बोनस शेयर, विद्यमान ईक्विटी शेयरधारियों को, उनके द्वारा धारित शेयरों के अनुपात में आबंटित किये जाते हैं; ऐसे शेयरों के निर्गमन के परिणाम स्वरूप ईक्विटी शेयर धारकों को कुछ अतिरिक्त पूर्णदत्त शेयर प्राप्त होते हैं तथा कंपनी की निर्गमित शेयर-पूँजी बढ़ जाती है। इन शेयरों को प्राप्त करने के लिए शेयरधारियों को अलग से कोई भुगतान नहीं करना पड़ता है क्योंकि इनका निर्गमन कंपनी के लाभों या आरक्षित निधियों से किया जाता है। इसीलिए ऐसे निर्गमन को 'संचित लाभों का पूँजीकरण' भी कहा जाता है। बोनस शेयरों के निर्गमन के लिए धारा 55(4) के अधीन 'पूँजी विमोचन आरक्षित खाते' तथा धारा 52 (3) के अंतर्गत प्रतिभूति प्रीमियम खाते का प्रयोग भी किया जा सकता है।

कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 63 में बोनस शेयरों के निर्गमन के संबंध में उपबंध दिए गए हैं। धारा 63(1) के अनुसार कंपनी अपने सदस्यों को पूर्णदत्त बोनस शेयरों को निम्नलिखित में से जारी कर सकती हैं:

i. कंपनी के मुक्त आरक्षित कोषों में से; या
ii. पूँजी विमोचन आरक्षित खाते में से; या
iii. प्रतिभूति प्रीमियम खाते में से।

बोनस शेयरों के निर्गमन की शर्तें

अधिनियम की धारा 63 (2) एवं (3) के अंतर्गत बोनस शेयरों का निर्गमन करने के लिए निम्नलिखित शर्तों का पालन किया जाना चाहिए:

i. अंतर्नियमावली में बोनस शेयरों के निर्गमन हेतु लाभों या आरक्षित कोषों का पूँजीकरण करने की व्यवस्था होनी चाहिए।

ii. संचालक-मंडल द्वारा उपयुक्त संकल्प पारित किया जाना चाहिए।

iii. कंपनी की साधारण सभा में शेयर धारियों की स्वीकृति प्राप्त की जानी चाहिए।

iv. कंपनी ने स्थायी निक्षेपों एवं ऋणपत्रों पर देय ब्याज या मूलजन राशि का भुगतान करने में कोई चूक न की हो।

v. कंपनी ने कर्मचारीयों की वैधानिक देयताओं जैसे भविष्यानिधि में अंशदान, ग्रेच्युटी एवं बोनस के भुगतान में चूक न की हो।

vi. यदि बोनस शेयरों की निर्गमन की तिथि पर कोई शेयर अंशत: दत्त हो, तो उन्हें पूर्ण दत्त बनाया जाना चाहिए।

vii. कंपनी की अन्य शर्तों का पालन करना चाहिए।

viii. बोनस शेयरों को लाभांश के बदले जारी नहीं किया जा सकता।

यह उल्लेखनीय है कि एक सूचीबद्ध सार्वजनिक कंपनी को बोनस के निर्गमन के संबंध में सेबी (SEBI) द्वारा जारी किए गए 'सेबी (पूँजी का निर्गमन एवं प्रकटीकरण अपेक्षाएँ) विनियम, 2009 में निर्धारित की गई शर्तों का पालन भी करना चाहिए।

शेयर प्रमाण-पत्र

कंपनी (संशोधन) अधिनियम, 2015 द्वारा यथा-संशोधित धारा 46 (1) के अनुसार, ''एक शेयर प्रमाण-पत्र सार्वमुद्रा, यदि कोई हो, के अधीन या दो संचालकों या एक संचालक एवं कंपनी सचिव, जहाँ कंपनी ने कंपनी सचिव की नियुक्ति कर रखी हो, द्वारा हस्ताक्षरित, किसी व्यक्ति द्वारा लिए गये शेयरों को विनिर्दिष्ट करने वाला, ऐसे शेयरों पर व्यक्ति के स्वामित्व का प्रथम दृष्टया साक्ष्य होगा।''

शेयर प्रमाण-पत्र 'स्वत्व प्रलेख' नहीं होता क्योंकि इसके अधीन प्राप्त अधिकार केवल प्रमाण-पत्र के पृष्ठांकन तथा या सुपुर्दगी द्वारा अंतरणीय नहीं है।

निर्गमन

अधिनियम की धारा 179 (3) के अनुसार शेयर प्रमाण-पत्रों के निर्गमन का अधिकार केवल संचालकों को ही प्राप्त है। वे अपनी सभा में एक संकल्प पारित करके प्रमाण-पत्र जारी कर सकते हैं। अधिनियम की धारा 56 (4) के अनुसार प्रत्येक कंपनी को शेयरों के आबंटन के दो महीने के अंदर तथा शेयरों के अंतरण के पंजीयन के लिए आवेदन-पत्र प्राप्त करने के एक महीने के अंदर शेयर प्रमाण-पत्र तैयार कर लेने चाहिए तथा आबंटितियों को भेज देना चाहिए।

कानूनी प्रभाव

शेयर प्रमाण-पत्र को जारी करने के मुख्यत: निम्नलिखित दो कानूनी प्रभाव होते हैं:

i. **शेयरों के स्वामित्व संबंधी विबंधन**-कंपनी किसी को शेयर प्रमाण-पत्र जारी करने के बाद उसके शेयरों के स्वामित्व को अस्वीकार नहीं कर सकती बशर्तें की उसे सद्भावना के साथ, मूल्य देकर तथा प्रामाणिक अन्तरण-पत्र के अंतर्गत शेयर प्राप्त किए हों।
ii. **भुगतान संबंधी विबन्धन** – यदि शेयर प्रमाण-पत्र में यह उल्लेख है कि शेयरों के मूल्य का पूर्ण भुगतान हो चुका है, जबकि वास्तव में ऐसी नहीं है, तो बाद में किसी ऐसे व्यक्ति के विरूद्ध जिसने सद्भावना के साथ यह विश्वास करके कि शेयर पूर्णदत्त हैं, शेयरों को खरीदा है, कंपनी शेयरों पर अदत्त राशि को प्राप्त करने का अधिकार नहीं रखती हैं।

शेयर प्रमाण-पत्र की दूसरी प्रति

संचालकों को शेयर प्रमाण-पत्र की दूसरी प्रति जारी करने का अधिकार है यदि:

क) यह बात साबित कर दी जाती है कि पहला प्रमाण-पत्र खो गया या नष्ट हो गया है; अथवा
ख) पहला प्रमाण-पत्र खराब होने या फटने के कारण कंपनी को लौटा दिया गया है।

5.3 ऋण लेने के अधिकार, प्रभार एवं ऋण-पत्र

ऋण लेने का अधिकार

प्रत्येक व्यापारिक अथवा वाणिज्यिक कंपनी को अपने करोबार के लिए किसी भी सीमा तक ऋण लेने और उधार ली गई राशि के लिए जमानत के रूप में अपनी संपत्तियों को प्रभारित करने का अंतर्निहित अधिकार होता है। परंतु कंपनी के अंतर्नियमावली अथवा ज्ञापन-पत्र द्वारा इस अधिकार को सीमित किया जाता सकता है। गैर-व्यपारिक कंपनियों जो धर्म, कला, वाणिज्य, विज्ञान आदि को प्रोत्साहित करने के लिए गठित की जाती है, जो किसी प्रकार के लाभांश का भुगतान नहीं करती, अंतर्नियमावली अथवा ज्ञापन-नत्र में

जब तक अभिव्यक्ततः ऋण लेने के लिए प्रधिकृतन किया गया हो, तब तक उन्हें ऋण लने का कोई अधिकार नहीं होता।

कंपनी के अंतर्नियमावली अथवा ज्ञापन-पत्र अथवा अधिनियम द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों के अधीन, कंपनी के ऋण लेने के अधिकार का प्रयोग संचालकों द्वारा कियाजाता है जिन्हें किसी भी तरीके से और कैसी भी शर्तो पर इस अधिकार का प्रयोग करने की स्वतंत्रता होती है। धारा 180 के अनुसार,किसी कंपनी के संचालक, साधारण सभा में विशेष संकल्प पारित करके कंपनी की सहमति प्राप्त किए बगैर इतनीराशि उधार नहीं लेंगे जोपहले से प्राप्त किए गए ऋणों को सम्मिलित करके कंपनीकी प्रदल पूँजीऔर उसकी मुक्त आरक्षित विधि के योग से अधिक हो।

<u>शक्तिबाध्य ऋण</u>

कभी-कभी कंपनी शक्तिबाध्य ऋण अर्थात, अनाधिकृत ऋण ले सकती है। ऐसे ऋण:-

1) कंपनी के शक्तिबाध्य ऋण : कंपनी के ज्ञापन-पत्र तथा इसकी अंतर्नियमावली द्वारा दिए गए प्राधिकारी से बढ़कर प्राप्तिकए गए ऋण हो सकते हैं, अथवा
2) संचालकों के शक्तिबाध्य ऋण : संचालाकों के प्राधिकार से बढ़कर प्राप्त किए गए ऋण हो सकते हैं।

1) कंपनी के शिक्तबाध्य ऋण :- कंपनी कानून का यह एक आधारभूत सिद्धांत है कि कंपनी के शक्तिबाध्य अथवा अिधकारातीत सभी कार्य शून्य होते हैं। कानून की दृष्टि में कंपनी के शक्तिबाध्य ऋण कंपनी के विरूद्ध किसी वैद्य ऋण का निर्माण नहीं करते और ऐसे ऋणों के भुगतान करने में चूक करने की स्थिति में ऋणदाता कंपनी पर न तो अभियोग चला कसता है और न ही वह इस प्रकार के ऋण के लिए दी गई प्रतिभूति को पवर्तित करा सकताहे। परन्तु ऐस ऋणदाताओं को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होते है।

i) कंपनी ने यदि इस प्रकार लिए गए ऋण की धनराशि अभी तक किसी कार्य पर खर्च नकी हो तो ऋणदाता कंपनी के विरूद्ध विषेधादेश प्राप्त करके ऐस उक्त राशि खर्च करने से रोक सकता है तथा अप्रयुक्त राशि वसूल कर सकता है।

ii) यदि इस प्रकार उधारली गई राशि का उपयोग कंपनी के वैद्य ऋणों का भुगतान करने के लिए किया गया है तो ऋणदाता कपंनी का लेनदेन होगा क्योंकि अनुस्थापन के सिद्धांत के अनुसार वह कंपनी के उन ऋणदाताओं का स्थान ले लेता है, जिनका भुगतान कर दिया गया है,

iv) ऋणदाता अधिकार का निहित आश्वासन भंग करने के आधार पर संचालकों पर व्यक्तिगत रूप से क्षतिपूर्ति का दावा कर सकता है बशर्ते कि ऋण देते समय उसने सद्भावनापूर्वक कार्य किया हो।

यदि उल्लेखनीय है कि यदि ऋण लेना ज्ञापन-पत्र के अधिकारातीत हो तो प्रत्येक शेयरधारी की सहमति से भी कंपनीइसका अनुसतर्थन नहीं कर सकती, किन्तु यदि ऋण लेना केवल अंतर्नियमावली के अधिकारातीत हो तो साधारण सभा में सदस्य अंतर्नियमावली में संशोधन करके इसका अनुसमर्थन कर सकते हैं।

2) संचालकों के शक्तिबाध्य ऋण :- ऐसे ऋण जो संचालाकें के अधिकारातीत हो परन्तु कंपनी के अधिकारी के अंतर्गत हों, कानूनी स्थिति स्पष्ट है। कंपनी यदि चाहे तो वह साधारण सभा में संचालकों द्वारा लिए गए एसे ऋण का अनुसमर्थन कर सकती है और बत ऋण पूर्णतया वैद्य हो जाएगा और कंपनी उसके लिए आबद्ध होगी। कंपनी चाहे इसके विपरीत भी निर्णय ले परन्तु आंतरिक का सिद्धांत और एजेंसी के सामान्य सिद्धांत एक ऐस ऋणदाता के हितों की रक्षा करेंगे जो यह सिद्ध कर दे कि उसके धनराशि सद्भावनापूर्वक उधार दे धी और उसे सीमा का उल्लंघनकिए जाने की कोई जानकारी नहीं थी। परन्तु कंपनी संचालकों से क्षतिपूर्ति का दावा कर सकती है। यदि ऋणदाता चाहे तो वह 'अधिकार का निहित आश्वासन भंग करने के आधार पर संचालकों पर व्यक्तिगत रूप से क्षतिपूर्ति का दावा कर सकता है।

प्रभार

प्रभार :- ऋण लेने के लिए प्रतिभूति अथवा जमानत कंपनी द्वार लिए गए ऋण अरक्षित अथवा रक्षित हो सकते हैं। यदि ऋण अरक्षित हो तो मूल राशि या ब्याजकी अदायगी में कोई चूक होने पर लेनदार को कंपनी पर केवल मुकदमा करने का अधिकार होता है। कंपनी की वित्तीय स्थिति बिगड़ जाने पर अरक्षित ऋणदाता सुरक्षित नहीं होते है। यदि ऋण रक्षित हो तो भुगतान में कोई चूक होने पर लेनदार को अपनी जमानत या प्रतिपूर्ति प्रवर्तित करने का अधिक सुदृढ़ रहती है क्योंकि कंपनी के विरूद्ध कार्यवाही करने के अपने अधिकार के अतिरिक्त उसे कंपनी की उस संपत्ति पर भी दावा करनेका अधिकार होता है जो प्रतिभूति के रूप में दी गई हो।

धारा 2(16) में दी गई परिभाषा के अनुसार, 'प्रभार' से किसी कंपनी या इसके किन्हीं उपक्रमों या दोनों की संपत्ति या आस्तियों पर प्रतिभूति के रूप में सृजित हित या ग्रहणाधिकार अभिप्रेत है तथा इसमें बंधक भी शामिल है।

प्रभार एवं बधक में अतंर

प्रभार से ऋणदाता को विशिष्ट संपत्ति या निधि में से भुगतान का अधिकार प्राप्त होता है जिसे ऋणदाता न्यायालय के माध्यम से लागू करा सकता है यदि ऋण का भुगतानन किया जाये। दूसरी ओर बंधक

में विशिष्ट अचल संपत्ति में ऋणदाता को हित का अंतरण किया जाता है। भुगतान में चूक करने की दशा में ऋणदाता, न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना बंधित संपत्ति को बेचने का अधिकार रखता है।

कंपनी की संपत्तियों पर निम्नलिखित दो प्रकार के प्रभार सृजित किया जा सकते है :-

1) स्थायी बंधक अथवा प्रभार
2) अस्थायी अथवा चल प्रभार

1) **स्थायी बंधक अथवा प्रभार** :-स्थायी बंधक अथवा प्रभार वह होता है जो भवन अथवा भारी मशीनों आदि जैसी स्थिर किस्म की किसी विशिष्ट अथवा निश्चित संपत्ति पर सृजित किया जाता है तथा इसके अनुसार कंपनी इस प्रकार बंधक रखी गई संपत्ति को बंधक-ऋण के भार से मुक्त नहीं बेचल सकती।

इस प्रकार का बंधक कानूनी अथवा साम्यिक हो सकता है:

i) **कानूनी स्थायी बंधक अथवा प्रभार :-**कानूनी स्थायी बंधक अथवा प्रभार-इसके अंतर्गत बंधक रखी गई संपत्ति का कब्जा दिए गैर संपत्ति का पूर्ण कानूनी स्वामित्व लेनदार को अंतरित किया जाता है और देनदार ब्याज सहित ऋण का भुगतान करने पर पूर्ण कानूनी स्वामित्व पुन: प्राप्त करनेका अपना अधिकार आरक्षित रखता है। ऐसा बधक एक 'बंधक विलेख' निष्पादित करके प्रभावी बनाया जाता है और इसे कंपनियों के रजिस्ट्रार के पास पंजीकृत कराना पड़ता है।

ii) **साम्यिक स्थायी बंधक अथवा प्रभार :-**इसका अर्थ किसी ऐसे बंधक से है जो ईमानदारी और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतो पर आधारित हो। ऐसे बंधक के अंतर्गत बंधन संपत्तिका कानूनी स्वामित्व और कब्जा लेनदार को अंतरित किए बगैर संपत्ति के स्वात्वाधिकार-विलेख उसके पास जमानत के रूप में जमा कर दिए जाते हैं और साथ ही बंधक से राशि का भुगतान तय की गई तिथि पर न कर सकने की स्थिति में बंधककर्ता 'जमा-ज्ञापन पत्र' के माध्यम से एक कानूनी बंधक-विलेख निष्पादित करने का वचन देता है। धारा 77 के अधीन इस प्रकार केबंध को कंपनियोंके रजिस्ट्रार के पास पंजीकृत कराना पड़ता है। इस प्रार की जमानत अत्यंत सहज होती है और इससे शीघ्र ऋण प्राप्तकरने में सुविधा रहती है क्योंकि इसमें 'बंधक विलेख' निष्पादित करने की आवश्यकता नहीं होती।

चल प्राभार किसी कंपनी की वर्तमान तथा भावी चल संपत्तियों पर साम्यिक प्रभार होता है।

यह कंपनी की सामान्य संपत्तियों पर प्रभार होता है इसके अंतर्गत सभी संपत्तियां आ जाती है चाहे वे स्थायी प्रभाराधीन हों अथवा नहीं और प्रभारित संपत्तियों पर यह प्रभार चलायमान रहताहै। चल प्रभार तब तक किसी विशेष संपत्ति से संबद्ध नहीं होता जब तक कि इसे स्थायी प्रभार में बदलने वाली घटित हो जाती है।

चल प्रभार का मुख्य लाभ यह है जब तक प्रभार स्थित पर धारण नहीं कर लेता, तब तक कंपनी सामान्य व्यापार के दौरान इस प्रकार प्रभावित की गई संपत्तियों में अपनी इच्छा से चधोचित व्यवहार करती रह सकती है।

चल प्रभार का स्थायी प्रभार बनना :- चल प्रभार निम्नलिखित परिस्थियों में स्थायी प्रभार बन जाता है :-

i) जब कंपनी का समापन आरंभ हो जाए, अथवा
ii) जब कंपनी कारोबार करना बंद कर दे, अथवा
iii) जब ऋणपत्रधारी अपनी प्रतिभूति वसूल करने के हकदार बनने के पश्चात् इस प्रयोजन से कोई प्राप्तकर्ता नियुक्त करके हस्तक्षेप करें।

चल प्रभार पर समापन का प्रभाव :-धारा 332 में कंपनी का समाजन आरंभ होने से तुरंत पहले 12 महीनों में सृजित चल प्रभार की विधिमान्यता के लिए एक महत्वपूर्ण शर्त लगाई गई है। इसमें यह व्यवस्था है कि निम्नलिखित दशाओं के अतिरिक्त इस प्रकार का प्रभाव शन्य होगा:

i) यदि प्रभार सृजित किए जाने के तुरंत बाद कंपनी ऋण-शोधन क्षमता थी, अथावा
ii) यदि प्रभार सृजित किए जाने के समय अथवा उसके पश्चात् सउसके प्रतिफलस्वरूप कंपनी द्वारा वास्तव में नकद राशि प्राप्त की गई हो।

प्रभारों का पंजीकरण

अधिनियम की धारा 77 के अनुसार , कंपनी द्वारा अपनी संपत्ति या आस्तियों या उपक्रमों, चाहे भारतमें स्थितहो या भारत के बाहर, पर सृजित प्रत्येक प्रभार का कंपनी रजिस्ट्रार के पास अनिवार्यत: पंजीकरण कराना चाहिए। प्रभार का निर्धारित विवरण तथा इसको सृजित करने वाला प्रपत्र अथवा इसकी एक प्रमाणित प्रति प्रभार सृजितकरने के 30 दिन के भीतर पंजीकरण के सलिए रजिस्ट्रार के पास दाखिल किए जाने चाहिए। यदि कंपनी निलंब के पर्याप्त कारण बताकर रजिस्ट्रार का विश्वास दिलाए तो वह 30 दिन की उक्त अवधि के अतिरिक्त शुल्क देकर 300 दिन तक करा सकता है।

धारा 77(2) के अनुसा,रजिस्ट्रार प्रभार के पंजीयन के बाद ऐसे पंजीयन का प्रमाण-पत्र कंपनी तथा उस व्यक्ति को देगा जिसके पक्ष में ऐसा प्रभार उत्पन्न किया गया हो। धारा 78 के अनुसार, यदि विहित अवधि के भीतरकंपनीद्वाराप्रभार का पंजीयन नहींकराया जाता तो उस लेनदार के आवेदन पर भी पंजीयन किया जा सकता है जिसके पक्ष में प्रभार किया गया हो तथा ऐसा लेनदार कंपनी से पंजीकरण शुल्क वसूल कर सकता है।

प्रभारी की सूचना की तिथि:- अधिनियम की धारा 80 के अनुसार, यदि कंपनी की किसी संपत्ति पर ऐसे प्रभार पंजीकृत कर दिया गया है जिसका पंजीकृत होना धारा 77 के अधीन आवश्यक है, तो यह मान लिया जायेगा कि ऐसी संपत्ति अथवरा इसके किसी भाग को प्राप्त करने वाली व्यक्ति को पंजीकरण की तिथि से उपर्युक्त प्रभार की सूचना थी।

पंजीकरण न करने का प्रभाव :- कोई पंजीकरण योग्य प्रभार विहित अवधि के भीतर पंजीकृत न कराने के निम्नलिखित परिमणाम होंगे :

- **i)** कंपनी के समापन और लेनदारों के विरूद्ध प्रभा शूनय होगा।
- **ii)** जिस ऋण के संबंध में प्रभार दिया गया हो वह ऋण अरक्षित ऋण के रूप में वैद्य रहता है।
- **iii)** कंपनी तथा त्रुटि करने वाले अधिकारी पर भारी जुर्माना लगाया जा सकता है। त्रुटि करने वाले अधिकारी को 6 माह तक का कारावास भी हो सकता है।

ऋण–पत्र

'ऋण-पत्र' शब्द की कोई सुस्पष्ट कानूनी परिभाषा देना कठिन है। व्यवहार में 'ऋण-पत्र शब्द का प्रयोग कुछ ऐसे स्थायी प्रकार के ऋण तक ही सीमित है जो कंपनी की संपत्ति को प्रभार या बंधक रखकर प्राप्त किए जाते हैं।

धारा 2(30) के अनुसार, ''ऋण-पत्र में ऋण-पत्र स्टॉक, बॉन्ड तथा ऋण के साक्ष्य वाला कंपनी का कोई अन्य विलेख सम्मिलित होता है, चाहे इनके द्वारा कंपनी की संपत्तियों पर कोई प्रभार निर्मित होता हो अथवा नहीं।'' सरल भाषा में, ऋण- पत्र का आश्य, 'ऋणग्रस्तता स्वीकार करने वाले एक ऐसे प्रलेख से है जो कंपनी द्वारा अपनी सार्वमुद्रा के अंतर्गत जारी किया जाता है और किसी निश्चित तिथि को अथवा कंपनी की इच्छा पर किसी भी समय ऋण वापसकरने तथा इस बीच ऋण की राशि पर ऋण-पत्र में दी गई निश्चित कर तथा समयान्तर पर ब्याज अदा करने का वचन दिया गया होता है।' संक्षेप में, ऋण-पत्र होता है और जो प्राय: कंपनी की संपत्ति को प्रभावित करता है।

ऋण-पत्र जारी करना

ऋण-पत्र सार्वजनिक अथवास निजी, सभी कंपनियों द्वार कभी-भी जारी किए जा सकते हैं। ऋए-पत्र आबंटित करने के लिए वे सभी कानूनी व्यवस्थाएं लागू होती हैं जो शेयर आबंटित करने के लिए निर्धारित हैं। ऋण-पत्र जारी करने का अधिकार संचालक-मंडल के पास होता है। ऋण-पत्र सममूल्य पर अथवा अधिमूल्य पर जारी किए जा सकते हैं। इन्हें निजी रूप से अथवा विवरण-पत्रिका के माध्यम से जारी किया जा सकता है।

ऋण-पत्रों के निर्गमन के संबंध में कानूनी प्रावधान निम्नलिखित हैं:-

1) कंपनी ऐसे ऋण-पत्र जारी कर सकती है जिन्हें शोधन के समय पूर्णतया या अंशत: शेयरों में बदला जा सकता हों। परन्तु ऐसे परिवर्तनीय ऋणपत्रों का निर्गमन विशेष संकल्प द्वार अनुमोदित होना चाहिए।

2) मताधिकार वाले ऋणपत्र जारी नहीं किये जा सकते।

3) ऐसे निबंधनों और शर्तें जो विहित की जाएं, के अधीन केवल रक्षित ऋण-पत्र ही जारी किए जा सकते हैं।

कंपनी (शेयर पूँजी एवं ऋण-पत्र) नियमावली,2014 के नियम 18 (1) के अनुसार रक्षित ऋण-पत्रजारी करने के लिए निम्नलिखित शर्तें पूरी की जानी चाहिए:-

क) केवल 10 वर्ष में शोधनीय रक्षित ऋण-पत्र जारी किये जा सकते हैं। परन्तु आधारभूत संरचना वाली परियोजनाओं को स्थापित करनेवाली कंपनियाँ 10 वर्ष से अधिक 30 वर्ष तक की अवधि वाले रक्षित ऋण-पत्र जारी कर सकती हैं।

ख) ऋण-पत्रों का ऐसा निर्गमन कंपनीकी आस्तियों या संपत्तियों का मूल्य ऋणपत्रों एवं इन पर ब्याज की राशि के पुनर्भुगतान के लिए पर्याप्त होगा।

ग) कंपनी अपने ऋणपत्रोंके अभिदान हेतु विवरण-पत्रिका या प्रस्ताव-पत्रजारी करने से पहले ऋण-पत्र न्यासी को नियुक्त करेगी तथा ऋण-पत्रों के आबंटन के 60 दिनों के भीतर ऋण-पत्र न्यास संलेख का निष्पादन करेगी जिससे कि ऋण-पत्र धारकों का हित सुरक्षित हो।

घ) प्रभार या बंधक से ऋण-पत्रों हेतु जमानत को ऋण-पत्र न्यासीके पक्ष में सृजित किया जायेगा, ऐसी जमानत निम्नलिखित पर हो सकती है:-

कंपनी को ऋण-पत्रों के आबंटन के 6 माह के भीतर ऋण-पत्रों का प्रमाणपत्र भेजना आवश्यक होता है।

ऋणपत्रों एवं शेयरों में अंतर

ऋणपत्रधारी एवं शेयरधारी में निम्नलिखित महत्वपूर्ण अंतर है:-

1) स्थित:-शेयरधारी कंपनी का आंशिक स्वामी होता है परन्तु ऋणपत्रधारी केवल लेनदार होता है।

2) प्रतिभूति का स्वरूप-शेयर स्वमित्म प्रमिभूति होता है और कंपनी के कार्यकाल के दौरान इसक राशि वापस नहीं की जा सकती है, परन्तु ऋण-पत्र लेनदार संबंधी प्रतिभूति होता है और इसकी राशि कंपनी के कार्यकाल के दौरान परिपक्वता तिथि पर अथवा यदि परिपक्वता तिथि से पहले कंपनी का समापन हो जाए तो उस समय वापस की जाती है।

3) अधिकार:-शेयरधारी को एक सदस्य के सामान्य अधिकार होत हैं जैसे कि साधारण सभाओं की सूचनाएँ प्राप्त करने का अधिकार, साधारण सभा में मत देने का अधिकार, आदि। ऋण-पत्रधारी को कंपनीकी सभाओं में मत देने आदि का कोई अधिकारी नहीं होता।

4) आय:-कंपनी को लाभ हो या हानि परंतु ऋण-पत्रों पर निश्चित आय अवश्य होती है कंपनी के लाभ तथा संचालकों की इच्छा पर निर्भर करती है।
5) पुन:खरीद:- कंपनी स्वयं अपने ऋण-पत्र खरीद सकती है जबकि आधार 67 के अनुसार कंपनी को अपने शेयर खरीदने का अधिकार नहीं होता।
6) समाचार के समय स्थिति:-कंपनी का समापन हो जाने पर ऋण-पत्रधारियों को अपना धन प्राप्त करने का प्राथमिक अधिकार होता है जबकि शेयर-धारियों को सभी बाहरी व्यक्तियों को पूरा भुगतान किए जाने के बाद ही कुछ प्राप्त करने का अधिकार होता है

ऋण-पत्रों के प्रकार

किसी कंपनी में एक से अधिक प्रकार के ऋण-पत्र हो सकते है और सुरक्षा, अंतरणीयता, मूल राशि की वापसी आदि के संबंध में प्रत्येक श्रेणी में अधिकारी भिन्नहो सकते हैं। ऋण-पत्रों के मुख्य प्रकार इस प्रकार है:-

1) **रक्षित ऋण-पत्र:-**रक्षित ऋण-पत्र ऐसे ऋण-पत्र होते है जिन्हें कंपनी की संपत्ति पर कोई प्रभार लगाकर रक्षित किया जाता है। यह प्र भार अथवा बंधक तथा चल अथवा स्थायी हो सकता है। इस प्रकाररक्षित ऋण-पत्रों की श्रेणी में स्थायी बंधक ऋण-पत्र अथवा चल बंचक ऋण-पत्र हो सकते है जो प्रभार के स्वरूप पर निर्भर करते हैं।
2) **अरक्षित ऋण-पत्र:-यह** ऐसे ऋण-पत्र होते हैं जो कंपनीकी संपत्ति पर लगे किसी प्रभार द्वारा रक्षित नहीं होते। इस प्रकार के ऋण-पत्रोंके धारक कंपनी के साधारण अरक्षित लेनदारों के समान होते हैं।
3) **पंजीकृत ऋण-पत्र:-**यह ऐसे ऋण-पत्रधारियों के नाम,पते एवं धारिता का विवरण कंपनी के ऋण-पत्रधारियोंके रजिस्टर में रहते हैं। ये ऋण-पत्र पंजीकृत धारकोंको दया होते है और इनके अंतरण को इनके पीछे दी गई शर्तों के अनुसार एक नियमित अंतरण विलेख द्वारा कंपनी रजिस्ट्रार के पास पंजीकृत कराना पड़ता है।
4) **वाहन ऋण-पत्र:-** इस श्रेणी के ऋण-पत्रधारियों का कंपनी कोई अभिलेख नहीं रखती।द्य ऐसे ऋण-पत्र का केवल सुपुर्दगीमात्र से ही अंतरण किया जा सकता है।
5) **विमोचनशी ऋण-पत्र:-** इस श्रेणी के अंतर्गत किसी निर्दिष्ट तारीख को अथ्वा मांगकरने या सूचना देने पर मूल राशि के अदायगी की व्यवस्था रहती है
6) **अविमोचनशील ऋण-पत्र:-** इस श्रेणी के अंतर्गत कंपनी इनके विमोचन की कोई तारीख निश्चित नहीं करती और जब तक कंपनी चालू रहती है तब तक ऐसे ऋण-पत्रों के धारक कंपनी से अदायगी की मांग नहीं कर सकते।
7) **परिवर्तनीय ऋण-पत्र:-** ऐसे ऋण-पत्र के धारक को निश्चित शर्तें पूर्णकरने पर अपने ऋण-पत्र, पूर्णतया अथवा आंशिक रूप में, ईक्विटी शेयरों में परिवर्तनशीन करने का विकल्पदिया जाता है।

ऋण-पत्रधारियों के हितों का संरक्षण

ऋण-पत्रधारियों अधिनियम, 2013 की धारा 71 द्वार ऋण-पत्रों के संबंध में ऋण-पत्र न्यासी की नियुक्ति, इनके कर्तव्य व शक्तियों, ऋण-पत्र शोधन आरक्षित निधि बनाने व कंपनी द्वारा ऋण-पत्रों का भुगतान करने में त्रुटि करने पर ऋ-पत्रधारकोंको ट्रिब्यूनल में आवेदन करने का प्रावधान किया गया है।

ऋण-पत्र-न्यासियों की नियुक्ति:- अधिनियमकी धारा 71 (5) के अनुसार, यदि ऋण-पत्रोंके निर्गमन के संबंध में विवरण-पत्रिका या प्रस्ताव पत्र को 500 से अधिकव्यक्तियों को जारी किया जाता है तो कंपनी को ऋण-पत्रन्यासी को नियुक्त करना अनिवार्य होगा।

ऋण-पत्र न्यास विलेख:-सामान्यत: कंपनी द्वारा जारी किये गए ऋणपत्रों की संख्या बहुत अधि होती है और इनके साथ प्राय: कंपनी की संपत्ति पर स्थयी अथवा चल प्रभार रहता है। अत: व्यवहार में, रक्षित ऋण-पत्रों की दशा में, इन्हें जारी करने वाली कंपनी सामान्यत: न्यासविलेख' द्वारा संपत्ति' न्यासियों के पास बंधक रख देती है क्योंकि उसके लिए हजारों ऋण-पत्रधारियों के पक्ष में अलग-अलग प्रभार स्थापित करना संभव नहीं है। न्यास विलेख में ऋण-पत्रधारियों के हितों की रक्षा के लिए विस्तृत शर्तें तथा प्रतिबंध दिए हुए होते हैं।

न्यास विलेख के दो मुख्य लाभ है:-

1) इसके द्वारा कंपनी ऋण-पत्रधारियों के पक्ष में अपनी सुनिश्चित स्थायी संपत्तियों पर कानूनी बंधक तथा शेष संपत्तियों पर साम्यिक चल प्रभार स्थापित कर सकती है।
2) इससे कुछ व्यक्ति न्यासी के रूप में, ऋण-पत्रधारियों के हितों की देखभाल कर सकते हैं और कंपनी द्वारा कोई चूक किए जानेपर बंधक रखी गई संपत्ति के संबंध में आवश्यक कार्यवाही कर सकते है।

ऋण-पत्र न्यासियों के कर्तव्य व शक्तियाँ

ऋण-पत्र न्यासियों के कर्तव्य एवं शक्तियाँ निम्नलिखित है:-

i) ऋण-पत्रधारियों के हितों का संरक्षण करना
ii) यह सुनिश्चित करना कि ऋण-पत्र जारी करने वाली कंपनी तथा प्रत्येक गारंटर की संपत्तियाँ हर समय मूलधन राशि के निपटाने हेतु पर्याप्त है,
iii) प्रभावी तौर पर ऋण-पत्रधारियों की शिकायतों का निदानकरना,
iv) यह सुनिश्चित करना कि कंपनी न्यास विलेख की किसी शर्त या प्रावधान का विखंडन नहीं करती,
v) यदि किसी भी समय ऋण-पत्र न्यासी निष्कर्ष पर पहुँचे कि कंपनी की संपत्तियाँ मूलधन राशि के निपटान हेतु अपर्याप्त है या इनके परिपक्व होने पर अपर्या प्त पड़ सकती है, तो

कपंनी द्वारा नए दायित्वों के सृजन करने पर प्रतिबंध लगवाने के उद्देश्य से ऋण-पत्र न्यासी को ट्रिब्यूनल के सामने याचिका प्रस्तुत करनी चहिए।

ऋण-पत्र शोधन आरक्षित निधि:-धारा71 (4) के अनुसार, यदि कोई कंपनी ऋण-पत्र जारी करती है तो उको ऐसे ऋण-पत्रों के शोधन हेतु एक 'ऋण-पत्र शोधन आरिक्षतनिधि बनानी होगी। कंपनी को इस आरक्षित निधि में प्रतिवर्ष अपने लाभों से पर्याप्त राशियाँ जमा करनीहोंगी, जब तक ऐसे ऋण-पत्रों का शोधन नहीं कर दिया जाता। केन्द्र सरकार उस राशि की मात्रा को प्रय कर सकती है जिसे'ऋण-पत्र शोधन आरक्षित निधि में जमा किया जायेगा।

<u>ऋण-पत्रधारियों के लिए उपचार:-</u>

यदि कंपनी ब्याज का भुगतान करने अथवा मूलधन वापस करने में त्रुटि करें, तो ऋण-पत्रधाराकांको निम्नलिखित अधिकार होंगे।

1) वे न्यायालय में आवेनद किए बगैर, ऋण-पत्रों के निर्गमन की शर्तों अथवा न्यास विलेख द्वारा उन्हें सौपे गए अधिकारों का प्रयोग कर सकते हैं। इन अधिकारों में सामान्यत:कंपनी के लाभ तथा किराए प्राप्त करने के 'प्राप्तकर्ता'नियुक्त करने का अधिकार कारोबार का प्रबंधन करने के लिए 'प्रबंधन' की नियुक्ति करने का अधिकार और बंधक संपत्ति का कब्जा लेनेका अधिकारतथा न्यासियों के माध्यम से इसकी बिक्री करने तथा इससे प्राप्त राशि को आपस में बॅाट लेने का अधिकार सम्मिलित होता है।
2) वे 'प्राप्तकर्ताकी नियुक्ति के लिए अथवा प्रभारित संपत्ति बेचने के आदेश के लिए अथवा विमोचन-निषेध के आदेश के लिए न्यायालय में आवेदन दे सकते है।

   यदि बंधक संपत्ति उनके ऋणें की पूरी राशि को अदा करने के लिए अपर्याप्त हो तो रक्षित ऋण-पत्रधारियों के पास दो विकल्प रहते है:

   i) वे जमानत में रखी संपत्ति को बंच सकते है और शेष राशि के लिए न्यायालय में दावा कर सकते है, अथवा

   ii) जमानत में रखी संपत्ति को समर्पित कर सकते हैं ओर ऋण की समूची राशि के लिए न्यायालय में दावा कर सकते हैं।

5.4 कंपनी का प्रबंधन

<u>कंपनी का प्रबंधन :- एक परिचय</u>

कंपनियों का उचित प्रबंधन लोकहित का विषय है क्योंकि इनके कुशल कार्य–संचालन में एक और एक शेयरधारी की हैसियत से अथवा एक कर्मचारी अथवा एक लेनदार की हैसियत से असंख्या व्यक्तियों के हित निहित होते हैं तथा दूसरी ओर ऐसे वांछनीय लोग भी होते हैं जो समाज के भोले-भाले सदस्यों का शोषण

करने के लिए सतत् प्रयासरत होते है। इसी वजह से कंपनी अधिनियम में कंपनी के प्रबंधकीय व्यक्तियों की नियुक्ति, पारिश्रमिक एवं शक्तियों के बारे में व्यापक उपबंध दिए गए हैं। कंपनी के संदर्भ में प्रमुख प्रबंधकीय पदाधिकारी से आशय निम्नलिखित से है :-

- **i)** मुख्य कार्यकारी अधिकारी या प्रबंध संचालक या प्रबंधक
- **ii)** कंपनी सचिव
- **iii)** पूर्णकालिक संचालक
- **iv)** मुख्य वित्रीय अधिकारी, एवं
- **v)** ऐसे अन्य अधिकारी जो निर्धारित किये जाय।

कंपनी अधिनियम के अतंर्गत किसी कंपनी के प्रबंधन एवं प्रशासन के लिए संचालक मंडल का होना वैकल्पिक है अर्थात कंपनी नियुक्त करे या न करे। प्राय: सभी कंपनियां प्रबंध-संचालक या प्रबंधक की सहायता से संचालक मंडल द्वारा प्रबंधन करने की प्रबंध-प्रणाली अपनाती है।

संचालक

कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 2 (34) के अनुसार,'' संसचालक एक ऐसा व्यक्ति है जो संचालक की हैसियत से कंपनी के संचालक मंडल में नियुक्त किया जाता है।'' यह परिभाषा संतोषप्रद नहीं है। अत: इसे इसप्रकार परिभाषित किया जा सकता है,'' संचालक उन व्यक्तियों में से एक व्यक्ति होता है जो किसी कंपनी की नीति अथवा प्रबंधन को निदशित करने, अधिशासित करने अथवा नियंत्रित करने के लिए उत्तरदायी होता है।'' इन संचालकों को सामूहिक रूप से 'संचालक मंडल' कहा जाता है। संचालक-मंडल कंपनी की उच्चतम प्रशासकीय इकाई होती है। धारा 179 के अंतर्गत किसी कंपनी के व्यवसाय का प्रबंधन स्पष्ट तथा उसके संचालकों को सौपा गया है। संचालकों का चुनाव हो जाने पर शेयरधारियों का कार्य लगभग समाप्त हो जाता है। वस्तुत: कंपनी की नीति निर्धारित करने और निर्णय लेने के मामले में संचालक मंडल कंपनी की उच्चतम इकाई है।

संचालकों की कानूनी स्थिति

कंपनी के संचालकों की वास्तविक कानूनी स्थिति का यथार्थ चित्रण करना अत्यंत कठिन है। एल.जे. बोवन के अनुसार'' संचालकों की कभी एजेंटों, कभी न्यासियों और कभी-कभी प्रबंधक साझेदारों की संज्ञा दी जाती है। परन्तु इनमें से कोई भी अभिव्यक्ति उनकी संपूर्ण शक्तियों व दायित्वों को पूर्ण रूप से बयान नहीं कर पाती अपितु इनका प्रयोग किसी एक समय पर अथवा किसी विशेष उद्देश्य के लिए इन

व्यक्तियों के प्रति अपनाए गए उपयोगी दृष्टिकोण का संकेत देने के लिए किया जाता है।'' संचालकों की स्थिति का विस्तृत विवरण निम्ननलिखित है :

एजेन्टों के रूप में – एल.जे कैर्नस के अनुसार संचालक कंपनीके केवल एजेन्ट होते हैं। कंपनी स्वयं किसी व्यक्ति के रूप में काम नहीं कर सकती क्योंकि यह व्यक्ति होती ही नहीं। कंपनी केवल अपने संचालकों के माध्यम से काम कर सकती है और जहाँ तक उन संचालकों एजेंट का साधारण मामला है। जहाँ कहीं एजेंट दायी होता है वहा संचालक भी दायी होंगे और जहाँ कहीं दायित्व स्वामी का ठहराया जाएगा, वह दायित्व कंपनी का दायित्व होगा.....।'' इसलिए संचालकों को कंपनी के एजेंटों की संज्ञा दी गई है। एजेन्ट के रूप में, संचालकों को कंपनी का कामकाज अनिवार्यत: समुचित सावधानी और कर्मनिष्ठा के साथ करना चाहिए एवं कंपनी के ज्ञापन-पत्र तथा अंतर्नियमावली का अनुपालन करना चाहिए।

प्रबंधन साझेदारों के रूप में:- संचालक शेयरधारियों के प्रतिनिधि के रूप में चुने जाने के कारण प्रबंधक साझेदारों के रूप में होते हैं। स्वयं महत्वपूर्ण शेयरधारी होने के कारण भी वे अन्य शेयरधारियों के साझेदार बन जाते हैं। इसके अतिरिक्त संचालक, शेयर आबंटित करने, मांग करने और शेयर जब्त करने आदि जैसे स्वामित्वपूर्ण कार्य भी करते हैं जो उनके प्रबंधक साझेदार होने का प्रतीक है।

न्यासियों के रूप में:-कुछ पहलुओं से संचालक कंपन के लिए न्यासियों की हैसियत से कार्य करते हैं। वी.सी. बैकन के अनुसार,'' संचालकों का, जो कंपनी के न्यासी होते हैं, यह स्पष्ट कर्तव्य है कि वे कंपनी के न्यासी होते हैं, यह स्पष्ट कर्तव्य है कि वे कंपनी से संबंधित करोबार के सभी मामलों पर स्वयं अपने व्यक्तिगत हितों के लिए नहीं अपितु कंपनी के हित में कार्यवाही करें।'' संचालकों की अलभग सभी शक्तियां जैसे- शेयर आबंटित करना, मांग करना, अंतरण स्वीकार अथवा अस्वीकार करना आदि न्यासवत शक्रियां है जिन्हे सद्भावना से कंपनी के हित में प्रयोग करना पड़ता है। परन्तु यह उल्लेखनीय है कि संचालकगण व्यक्तिग शेयरधारियों के लिए अथवा कंपनी के साथ संविदा करने वाले अन्य व्यक्तियों के लिए न्यासियों की स्थिति में नहीं होते। वे केवल कंपनीके लिए ही न्यासी होते है।

अत: वास्तविक दृष्टि से संचालक पूर्ण रूपेण न तो एजेन्ट है और न ही प्रबंधक साझेदार अथवा स्वामी और नहीं न्यासी। उनमें ये सभी हैसियतें एक साथ रहती है। वास्तव में वे कंपनी के प्रति विश्वासास्तित संबंध रखते हैं और अधिक से अधिक उन्हें कंपनी का 'उच्च अधिकारी' कहा जा सकता है।

कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 149 (1) के अनुसार

संचालकों की संख्या:-

प्रत्येक सार्वजनिक कंपनी में काम-से-कम तीन संचालक होने चाहिए, प्रत्येक निजी कंपनी में कम-से-कम दो संचालक होने चाहिए तथा एकजनकंपनी में कम-से-कम एक संचालक होना चाहिए। संचालकोंकी अधिकतम सीमा पंद्रह निर्धारित की गई है। इस सीमा को कंपनी की सामान्य सभा में विशेष संकल्प पारित करके और अधिक बढ़ाया जा सकता है।

महिला संचालक :- अधिनियम की धारा 149 (1) (2) के अनुसार निर्धारित श्रेणी वाली कंपनियों में कम से कम एक महिला संचालक होना आवश्यक है। विद्यमान कंपनियों को कंपनी अधिनियम, 2013 के लागू होने की तिथि से एक वर्ष के भीतर इस उपबंधन का पालन कना होगा।

कंपनी (संचालकों की नियुक्ति एवं योग्यता) नियमावली, 2014 के नियम 3 के अनुसार, निम्नलिखित की कंपनियों द्वारा कम से कम एक महिला संचालक की नियुक्ति आवश्यक है :

i) प्रत्येक सूचीयत कंपनी;

ii) प्रत्येक अन्य सार्वजनिक कंपनी :

क) जिसकी दत्त शेयर – पूँजी 100 करोड़ रूपये या अधिक हो; अथवा

ख) जिसका टर्नओवर 300 करोड़ रूपये या अधिक हो।

स्वतंत्र संचालक

‘स्वतंत्र संचालक’ की अवधारणा को पहली बार कंपनी अधिनियम, 2013 द्वारा कंपनी विधि में शामिल किा गाया। सूचीयत कंपनियों के संचालक मंडल में स्वंतत्र संचालकों को नियुक्त करने का उद्देश्य अच्छे कार्पोरेट प्रशासन मानकों के पालन को सुनिश्चित करना है। स्वतंत्र संचालकों से यह उम्मीद की जाती है कि वे यह सुनिश्चित करें कि कंपनी के प्रवर्तक/प्रबंधक वर्ग द्वारा अनुचित तरीके अपनाकर स्वयं को वित्तीय फायदा न पहूँचाया जाय। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि स्वतंत्र संचालक उत्कृष्ट गुणों वाला एवं ईमानदार व्यक्ति होना चाहिए तथा उनका कंपनी या उसके प्रवर्तकों या संचालकों के साथ कोई आर्थिक संबंध नहीं होना चाहिए जिससे वे वास्तव में स्वतंत्र रूप से कार्य कर सकें।

कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 149 (6) में के अंतर्गत स्वतंत्र संचालक को विस्तृत रूप से निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया गया है :-

कंपनी के संबंध में स्वतंत्र संचालक का आशय एक ऐसे संचालक से है :-

क) जो संचालक मंडल के विचार में ईमानदार व्यक्ति है तथा जिसके पास सुसंगत विशेषज्ञा एवं अनुभव है;

ख) **(i)** जो कंपनी अथवा इसकी नियंत्रक, सहायक या सहयुक्त कंपी का प्रवर्तक नहीं है अथवा नही था;

(ii) जो कंपनी, इसकी नियंत्रक, सहायक या सहयुक्त कंपनी के प्रर्वतकों या संचालकों का रिस्तेदार नहीं है।

ग) जिसका कंपनी, इसकी नियंत्रक, सहायक या सहयुक्त कंपनी, या इसके प्रवर्तकों या संचालकों के साथ ठीक दो पूर्ववर्ती वित्ती वर्ष या चालू वित्तीय वर्ष के दौरान कोई आर्थिक संबंध नहीं है अथवा नही था;

घ) जिसके किसी रिस्तेदार का कंपनी, इसके प्रर्वतकों या सहायक, था सहयुक्त कंपनी या इसके प्रवर्तकों या संचालकों के साथ कोई ऐसा आर्थिक संबंध या संव्यवहार ठीक दो पूर्ववर्ती वित्तीय वर्षो में या चालू वित्तीय वर्ष में नहीं है या नहीं था जो इसके कुल टर्नओवर या कुल आय का 2% था अधिक है। अथवा पचास लाख रूपये या निर्धारित उच्च राशि, इनमें से जोभी कम हो;

ड) जो न तो स्वयं और न ही उसका कोई रिस्तेदार-

i) कंपनी या इसकी नियंत्रक, सहायक या सहयुक्त कंपनी में उसकी नियुक्ति के प्रस्तावित होने के ठीक पूर्ववर्ती वित्तीय वर्ष से 3 वर्षों में कोई प्रमुख प्रबंधकीय कार्मिक नहीं है और न ही था, तथा नही कोई कर्मचारी है और न ही था;

ii) इसकी नियुक्ति के प्रस्तावित किए जाने वाले वित्तीय वर्ष के ठीक पूर्ववर्ती तीन वित्तीय वर्षों में निम्नलिखित का कर्मचारी या स्वामी था साझेदार है अथवा रह चुका है :–

अ) कंपनी या इसकी नियंत्रक, सहायक या सहयुक्त कंपनी का लागत लेखा परीक्षको, अथवा प्रैक्टिस करने वाले लेखा-परीक्षकों या कंपनी सचिवों की फर्म; अथवा

ब) कोई कानूनी या सलाहकारी फर्म जिसका कंपनी इसकी नियंतक, सहायक या सहयुक्त कंपनी के साथ ऐसी फर्म के कुल टर्नओवर का 10% या अधिक अपने रिस्तेदारों के साथ मिलकर धारण करता है।

iii) कंपनी के कुल मताधिकार का 2% या अधिक अपने रिस्तेदारों के साथ मिलकर धारण करता है ।

iv) जो किसी गैर-लाभकारी संगठन का मुख्य कार्यकारी अधिकारी या संचालक है, चाहे किसी भी नाम से पुकार जाये, जो कंपनी, इसके किन्हीं प्रवर्तकों, संचालकों, या इसकी नियंत्रक सहायक या सहयुक्त कंपनी से अपने कुल प्राप्तियों का 25% या अधिक प्राप्त करता हो अथवा जो कंपनी के कुल मताधिका के 2% या अधिक पर नियंत्रण रखता हो; या

च) जो कोई अन्य निर्धारित अर्हताएं रखता हो।

अत: उपरोक्त परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि स्वतंत्र संचालक की परिभाषा देने में बहुत सावधानी बरती गई है जिससे कि स्वतंत्र संचालक द्वारा स्वत: या अपने रिस्तेदारों या एसोसिएट के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से कोई वित्तीय लाभ लेने क संभावना न रहे।

छोटे शेयरधारकों का संचालक

कंपनी अधिनियम की धारा 151 के अंतर्गत एक सूचनीय कंपनी एक संचालकका चुनाव छोटे शेयरधारकों द्वारा, ऐसी रीति तथा नियम व शर्तोंके अधीन जो निर्धारित की जाएं , या करा सकतीहै। इस प्रावधान के प्रयोजन के लिए ‘छोटे शेयरधारक’ का आशय ऐसे शेयरधारक से है जो 20,000 रूपये से अधिक , अथवा अन्य निर्धारित राशि से अधिक, अंकित मूल्य के शेयर न रखता हो।

उपरोक्त उपबंधों से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती है:-

1) कंपनी की दशा में कम-से-कम तीन संचालकों में से छोटे शेयरधारियों द्वारा एक सूचनीयत संचालक चूना जा सकता है और ऐसा चुना गया संचालक स्वयं भी कंपनी को छोटा संचालक होना चाहिये।

2) छोटे शेयरधारियों के प्रतिनिधि के रूप में चुने जाने वाले संचालक के चुनाव में केव छोटे शेयर धारी ही मतदान कर सकते है और उनमें इक्विटी शेयरधारी तथा पूर्वाधिकार शेयरधारी, दोनों शामिल होंगे।

केंद्र सरकार ने ‘’कंपनी (संचालकोंकी नियुक्ति एवं योग्यता) नियमावली, 2014’’ को लागूअधिसूचित किया है। यह नियमावली, अप्रैल 2014 से लागू हुए। इस नियमावली का नियम 7, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित व्यवस्था करता है :-

i) कोई सूचीयत कंपनी या तो अपने आप या छोटे शेयरधारियों की कुल संख्या के कम से कम 1/10 या 1000 छोटे शेयरधारियों, जो भी कम हो, द्वारा लिखित नोटिस दिये जाने पर छोटे शेयरधारियों द्वारा संचालक का चुनाव करा सकतीहै।

ii) छोटे शेयरधारियों द्वारा चुना गकया संचालक एक समय पर 3 वर्ष से अधिक के लिए नहीं चुना जा सकता है।

iii) ऐसा संचालक प्रबंध-संचालक अथवा पूर्णकालिक संचालक के पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकता।

iv) कोई भी व्यक्ति एक ही समय में दो कंपनियों से अधिक कंपनियों में छोटे शेयरधारियों द्वारा चुने गये संचालक के रूप में काम नहीं कर सकता।

संचालकों की योग्यताएं

कंपनी अधिनियम में सचालक के लिए कोई क्षैणिक अथवा शेयरधारण संबंधी योग्यताएं निर्धारित नहीं की गई है। किसी कंपनी का संचालक बनने के लिए उसका शेयरधारी होना अनिवार्य नहीं है बशर्ते कंपनी की अंतर्नियमावली में अन्यथा व्यवस्था न की गई हो। किन्तु आर्थिक चातुरी की दृष्टि से यह आवश्यक है कि संचालकों का कुछ पैसा भी कंपनी में विनियोजित रहे। इसलिए अंतर्नियमावली में सामान्यत: संचालको के लिए कुछ योग्यता शेयरोंकी व्यवस्था की जाती है। ऐसे योग्यता शेयरों का अंकित मूल्य कम रखना चाहिए ताकि एक साधारण शेयरधारक भी संचालक बनने के बारे में सोच सके।

संचालकों की अयोग्यताएं

1) जिसे विकृत मस्तिष्क का घोषित कर दिा गया हो :

2) जो दायित्वमुक्त दिवालिया न हो ;

3) जिसने दिवालिया घोषित किए जाने के लिए आवेदन दे रखा हो;

4) जिसे न्यायालय न नैतिक अपराध के लिए दोषी ठहराया हो और कम-से-कम छ: मास के करावास का दंड दिया हो और दंड की समाप्ति की तारीख से अभी पॉच वर्ष या अधिक के कारावास की सजा हुई हो;

5) जिसने कोई अपराध किया हो तथा जिसके संबंध में 7 वर्ष या अधिक के करावास की सजा हुई हो;

6) जिसने अपने शेयरों पर मांगी गई राशि छ: मास तक अदा न की हो;

7) जिसे न्यायालय या ट्रिब्यूनल ने संचालक के रूप में नियुक्त करने के अयोग्य होने का आदेश दिया हो तथा ऐसा आदेश प्रभावशाली हो;

8) जिसे विगत 5 वर्षों के दौरान किसी भी समय धारा 188 के अधीन 'संबद्ध पक्षकार संव्यवहार' के संबंध में अपराध करने का देषी माना गया हो;

9) जिसने धारा 152 (3) के प्रावधानों का पालन न किया हो, अर्थात् 'संचालक पहचान संख्या' आबंटित न कराई हो;

10) जो एक ऐसा सार्वजनिक कंपनी का पर्वत: संचालक रहा है या संचालक है जिसने:-

क) कंपनी रजिस्ट्रार के पास किन्हीं लगातार तीन वित्तीय वर्षों के लिए वित्तीय विवरण और वार्षिक विवरणियां फाइल नहीं की है, या

ख) अपने निक्षपों या उन पर अर्जित ब्याज का देय तिथि को भुगतान करने या अपने ऋण्पत्रों या उन पर अर्जित् ब्याज का देय तिथि को अदायगी करने या उन पर अर्जित ब्याज का देय तिथि को अदायगी करने या घोषित लाभांश का भुगतान करने में त्रुटि की हो और ऐसी त्रुटि एक वर्ष या अधिक के लिए चलती रही हो;

ऐसा संचालक चूक की तिथि से 5 वर्ष तक उस कंपनी में संचालक के रूप में पुन: नियुक्त होने या अन्य कंपनी में सचालक के रूप में नियुक्त किए जाने योग्य नहीं होगा।

<u>संचालक पहचान संख्या (Director Identification Number (DIN)</u>

कंपनी (संचालकों की नियुक्ति एवं योग्यता) नियमावल, 2014 के अनुसार, ''संचालक पहचान संख्या'' का आशय एक ऐसा पहचान संख्या से है जिसे केन्द्र सरकार द्वारा किसी ऐसे व्यक्ति को, जो किसीकंपनी में संचालक की भांति नियुक्त होने का इच्छुक है, या कंपनी के किसी विद्यमान संचालक को आबंटित किया जाता है, ताकि उसकी पहचान कंपनी के संचालक के रूप में हो सके। संचालकों को आबंटित की जानेवाली 'संचालक पहचान संख्या' की ई- फाइलिंग विधिक रूप से अनवार्य की गई है। कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 153 से 169 में 'संचालक पहचान संख्या के आबंटन संबंधी दिए गए उपबंध इस प्रकार है :-

1) धारा 153 के अनुसार कंपनी के संचालक के रूप में नियुक्ति के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति को संचालक पहचान संख्या (DIN) आबंटित कराने के लिए निर्धारित फार्म में तथा निर्दिष्ट मुल्य सहित, केन्द्र सरकार प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत करना होग।

2) धारा 154 के अनुसार, प्रार्थना-पत्र प्राप्त होने के एक महीने के अंदर केन्द्र सरकार निर्देशित स्वरूप में आवेदन को संचालन पहचान संख्या (DIN) आबंटित करेगी।

3) धारा 155 के अनुसार, किसीभी व्यक्ति को उसके जीवनकाल में एक ही संचालक पहचान संख्या (DIN) आबंटित की जाएगी।

4) धारा 156 के अनुसार, संचालक पहचान संख्या (DIN) आबंटिन की सूचना प्राप्त होने के एक महीने के अंदर, प्रत्येक विद्यमान संचालक अपनी संचालक पहचान संख्या (DIN) उन सभी कंपनियों को सूचित करेंगे जिनमें वे संचालक के रूप में कार्य कर रहे है;

5) धारा 157 के अनुसार, संचालक पहचान संख्या (DIN) की सूचना मिलने के 15 दिन के भीतर अंदर प्रत्येक कंपनी अपने सभी संचलकों की पहचान संख्या कंपनी रजिस्ट्रार अथवा केन्द्र सरकार द्वारा निर्दिष्ट किसी अन्य अधिक या प्राधिकारी को निर्धारित फीस के साथ सूचित करेगी।

6) धारा 158 के अनुसार, यदि किसी विवरणी या सूचना में किसी संचालक का हवाला या ब्यौरा दिया गया हो तो उसे फाइल करने से पहले कंपनियाँ ऐसे संचालक की संचालक पहचान संख्या का भी उल्लेख करेंगी।

7) धारा 159 के अनुसार, यदि कोई व्यक्ति या संचालक धारा 152,55 व156 के उपबंधों के अधीन बनाए किन्ही प्रावधानों का उल्लंघन करता है तो दोषी व्यक्ति या संचालक को 6 माह तक की केद एवं 50,000 रूपये तक का जुर्माना किया जा सकता है तथा त्रुटि चलते रहने की अतिरिक्त जुर्माना किया जा सकता है।

संचालको की नियुक्ति

कानूनी तौर पर संचालक के रू में किसी फर्म, संख्या अथवा कंपनी की नियुक्ति नहीं की जा सकती है अपितु केवल कोई व्यक्ति ही कंपनी का संचालक बन सकता है बशर्ते कि उसे धारा 154 के अधीन संचालक पहचान संख्या (DIN) आबंटित कर दी गई हो। कोई भी संविदा करने के सक्षम व्यक्ति, जिसे धारा 164 के अधीन अयोग्य करार न दिया गया हो, कंपनी के संचालक के रूप में नियुक्त किया जा सकता है। कम

से कम एक संचालक ऐसा व्यक्ति होगा जिसे विगत कैलेंडर वर्ष में कम से कम 182 दिन की अवधि तक भारत में निवास किया है। विद्यमान कंपनियों को कंपनी अधिनियम, 2013 के लागू होने की तिथि से 1 वर्ष के अन्दर इस प्रावधान का पालन करना होगा।

<u>प्रथम संचालक :-</u> कंपनी के प्रथम संचालकों की नियुक्ति ज्ञापन-पत्रके हस्ताक्षरकर्ताओं द्वारा की जाती उनके नाम अंतर्नियमावली में दिए जाते है, यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो अंतर्नियमावली में यह बताया जाता है कि प्रथम संचालकों की नियुक्ति किस प्रकार होगी। यदि अंतर्नियमावली में ऐसा नहीं किया जाता है तो ज्ञापन पत्र के हस्ताक्षरकर्ता कंपनी के प्रथम संचालक माने जायेंगे। ये संचालककंपनी की प्रथम वार्षि साधारण सभा में अवकाश ग्रहण करेंगे तथा इसी सभा में धारा 152 (6) के उपबंधों के अनुसार संचालकों को विधिवत नियुक्त किया जायेगा। एकजन कंपनी की दशा में यदि अंतर्नियमावली द्वारा प्रथम संचालक की नियुक्ति नहीं की जाती है तो व्यक्तिगत सदस्य तब तक इसका प्रथम संचालक समझा जायेगा जब तक कि सदस्य द्वारा संचालक या संचालकों को नियुक्त नहीं कर दिया जाता।

परवर्ती संचालक :-धारा 152 (6) के अनुसार सार्वजनिक कंपनी की दशा में कुल संख्या की कम से कम दो-तिहाई संख्या में संचालक चक्रानुक्रम में अनिवार्यत: रिटायर होने चाहिए तथा साधारण सभा में शेयरधारकों द्वारा नियुक्त किये जायेंगे। इस प्रकार, एक सार्वजनिक कंपनी की दशा में स्थायी संचालकों, यदि कोई हो, की संख्या संचालकों की कुल संख्या की एक-तिहाई से अधिक नहीं हो सकती। कंपनी की अंतर्नियमावली में यह व्यवस्था की जा सकती कि प्रत्येक वर्ष सभी संचालक रिटायर किए जायेंगे। निजी कंपनी की दशा में, यदि अंतर्नियमावली में व्यवस्था की गई हो तो उसके सभी संचाक स्थायी हो सकते है। रिटायर होने वाले संचालकों की नियुक्ति वार्षिक साधारण सभा में शेयरधारियों अंतर्नियमावली की व्यवस्थाओं के अनुरूप की जाएगी। यदि अंतर्नियमावली में इस संबंध में कोई व्यवस्था नकी गई हो तो पारी से रिटायर न होने वाले संचालकों की नियुक्ति भी साधारण सभा में शेयरधारियों द्वारा की जाएगी।

<u>संचालक मंडल द्वारा संचालकों की नियुक्ति :-</u> निम्नलिखित परिस्थितियों में संचालक-मंडल संचालकों की नियुक्ति कर सकता है :-

i) **आकस्मिक रिक्तियाँ :-** धारा 161 (4) के अनुसार, यदि संचालक का कार्यकाल समाप्त होने से पहले किसी कारण से उसका पद रिक्त हो जाता है तो उसे अंतर्नियमावली में दिए गए विनियमों के अनुसार संचालक-मंडल द्वारा भ्रा जा सकता है परन्तु इस प्रकार नियुक्त किया गया संचालक केवल उतने ही काल के लिए संचालक रह सकता है जितना की मूल संचालक रहता।

ii) **अतिरिक्त संचालक :-** धारा 161 (1) के अनुसा, यदि अतंर्नियमावली में व्यवस्था की गई हो तो संचालक-मंडल अतिरिक्त संचालक भी नियुक्त कर सकता है। ऐसे अतिरिक्त संचालक केवल आगामी वार्षि सभा की तारीख तक अपने पदों पर कार्य करेंगे। परन्तु संचालक मंडल किसी ऐसे व्यक्ति को अतिरिक्त संचालक के रूप में नियुक्त नहीं कर सकता जो कंपनी की साधारण सभा में संचालक नियुक्त होने में असफल रहा है।

iii) स्थानापन्न संचालक :- धारा 161 (2) के अनुसार, अतंर्नियमावलीमें संचालक मंडल को किसी ऐसे संचालक के स्थान पर कोई स्थानापन्न संचालक नियुक्त करने का अधिकार दियाजा सकता है जो कम-से-कम तीन महीने के लिए भारत से अनुपस्थित रहेगा। ऐसा स्थानापन्न संचालक मूल संचालक का कार्यकाल समाप्त हो जाने पर अथवा उसके भारत वापस लौट आने पर अपना पद छोड़ देगा। किसी भी व्यक्ति को स्वतंत्र संचालक के स्थान पर स्थानापन्न संचालक तभी नियुक्त किया जायेगा जब वह स्वतंत्र संचालक के रूप में नियुक्त किये जाने के लिए योग्य हो।

iv) **नाम-निर्देशिती संचालक :-** धारा 161 (3) के अनुसार, अंतर्नियमावली की अजीन रहते हुए, कंपनी के संचालक मंडल द्वारा किसी ऐसे व्यक्ति को संचालक के रूप में नियुक्त यिा जा सकता है जिसे किसी अनुबंधके आधार पर कोई संस्थान ना-निर्देशित करे अथवा केन्द्र सरकार या कोई राज्य सरकार कंपनी में अपनी शेयरधारिता के कारण निर्देशित करे।

बाहरी पक्षकारों द्वारा संचालकों की नियुक्ति :-

धारा 152 यह उपबंधित करती है कि सार्वजनिक कंपनी की दशा में संचालकों की कुल संख्या की एक-तिहाई संख्या तक, तथा निजी कंपनी की दशा में सभी संचालक, पारी से रिटायर न होने वाले संचालक हो सकते हैं। ऐसे संचालकों की नियुक्ति करने का अधिकार अंतर्नियमावली में स्पष्ट व्यवस्था जैसे ऋणपत्र-धारियों या विहित लेनदारों को दिया जा सकता है।

संचालक पदों की संख्या :-

धारा 165 के अनुसार, कोई भी व्यक्ति एक ही समय में 20 से अधिक कंपनियों में संचालक नहीं हो सकता। इस 20 की सीमा में स्थानापन्न संचालक का पद भी शामिल है। किन्तु कोई भी व्यक्ति 10 से अधिक सार्वजनिक कंपनियों में संचालक नहीं हो सकता।

यदि कोई व्यक्ति कंपनी अधिनियम, 2013 के लागू होने से ठीक पूव विहित कंपनियों की संख्या से अधिक कंपनियों में संचालक पद पर हो, तो वह इस अधिनियम के लागू होने के 1 वर्ष के भीतर विहित

संख्या में कंपनियों को चुनेगा तथा अन्य कंपनियों से त्याग-पत्र देगा तथा वह प्रत्येक कंपनी को अपने चयन के बारे में बातायेगा तथा इसकी जानकारी संबंधित कंपनी रजिस्ट्रार को भी देगा।

संचालक का पद रिक्त होना :-

धारा 167 के अनुसार, निम्नलिखित दशाओं में संचालक का पद स्वत: समाप्त हो जायेगा :-

1) यदि वह धारा 164 में बताई गई अयोग्यताओं में से किसी अयोग्यत से ग्रस्त हो जाये;

2) यदि वह संचालक मंडल से अनुपस्थित रहने की अनुमति लिए बिना या अनुमति लेकर संचालक मंडल की बाहर माह के भीतर होने वाली सभी सभाओं से अनुपस्थित रहे;

3) यदि वह उन संविदों या व्यवस्थाओं जिनमें उसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हित हो, संबंधी धारा 184 के उपबंधों का उल्लंघन करें;

4) यदि वह धारा 184 के उपबंधों के उल्लंघन में किए गए अपने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हित वाले किसी संविदे या समझौते में अपने हित को प्रकट करने में असफल रहे;

5) यदि वह न्यायलय या ट्रिब्यूनल के आदेश के कारण अयोग्य हो जाये;

6) यदि उसे नैतिक दुराचार या किसी अन्य अपराध के लिए न्यायालय द्वारा दोषी ठहराया जाये तथा कम से कम छ: मास के कारावास की सज़ा दी जाये तो संचालक पद रिक्तहो जायेगा, चाहे उसने न्यायलय के ऐसे आदेश के विरूद्ध अपील फाइल कर दी हो।

7) यदि उसे नियंत्रक, सहायक या सहयुक्त कंपनी में किसी पद या अन्य रोजगार धारणकिए होने के कारण संचालक नियुक्त किया गया हो तथा उसका उस कंपनी में ऐसा पद या रोजगार समाप्त हो गया हो।

संचालकों का त्याग-पत्र :-

कोई भी संचालक कंपनी के लिखित सूचना देकर अपने पद से त्याग-पत्र दे सकता है। कंपनी द्वारा त्याग-पत्र प्राप्त करने के उपरांत इसकी सूचना कंपनी रजिस्ट्रार को दी जायेगी। संचालक भी स्वयं अपने त्याग-पत्र की प्रतिलिपि कंपनी रजिस्ट्रार को भेजेगा जिसमें वह त्याग-पत्र के कारणों को विस्तार से बतायेग। इस प्रकार की प्रतिलिपि त्याग-पत्र के 30 दिन के भीतर निर्धारित तरीके से भेजी जायेगी।

संचालक का त्याग-पत्र कंपनी द्वारासूचना प्राप्त किए जाने की तिथि अथवावह तिथि जिसे संचालक ने सूचना में निर्दिष्ट किया हो, से प्रभावशाली होगा। परन्तु त्याग-पत्र देने वाला संचालक पद त्याग देने के पश्चात भी अपनी पदावधि के दौरन होने वाले अपराधों के लिए दायी होगा।

यदि कंपनी के सभी संचालक अपने पदों से त्याग-पत्र दे देते हैं अथवा धारा 167 में निर्दिष्ट अयोग्यताओं के कारण अपने पद रिक्त कर देते हैं तो प्रवर्तक अथवा उसकी अनुपस्थिति में केन्द्र सरकार द्वारा वांछित संख्या में संचालकों को नियुक्त किया जायेगा। ऐसे संचालक कंपनी द्वारा साधारण सभा में संचालकों को नियुक्त होने तक कार्य करेंगे।

संचालकों को हटाना :-

1) **शेयरधारियों द्वारा हटाया जाना :-** धारा 169 के अनुसार, कोई भी कंपनी अपने किसी संचालक को कम से कम 14 दिन की एक विशेष सूचना देकर और एक साधारण संकल्प पारित करके, उसके पद की कार्याविधि व्यतीत होने से पहले ही हटा सकती है। यदि कुछ शेयरधारी किसी संचालक को हटाये जाने संबंधित को ई प्रस्ताव पेश करना चाहते हों तो उन्हें प्रस्ताव पपकरने का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कंपनी को सभा से पहले कम-से-कम 14 दिन का नोटिस देना आवश्यक होगा ताकि संबद्ध संचालक तथा अन्य सदस्यों को उचित सूचना भेजी जा सके। इस प्रकार हटाये जाने वाले संचालक को साधारण सभा में उक्त प्रस्ताव पर बहस के दौरान अपनी बात कहने का अधिकार होगा।

परन्तु शेयरधरी निम्नलिखित श्रेणियों के संचालकों को नहीं हटा सकते :-

क) धारा 242 के अधीन ट्रिब्यूनल द्वारा नियुक्त किया गया संचालक।

ख) धारा 163 के अधीन अनुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धांत के अनुसार नियुक्त संचालक।

2) **ट्रिब्यूनल द्वारा हटाया जाना :-** धारा 242 के अनुसार, जब अत्याचार या कुप्रबंधन की रोकथाम के लिए, धारा 241 के अंतर्गत ट्रिब्यूनल में आवेदन किया जाता है तो ट्रिब्यूनल किसी संचालक को हटाने का आदेश दे सकता है। ऐस वयक्ति (संचालक) ट्रिब्यूनल की पूर्वानुमति के बिना पॉच वर्ष की अवधि के लिए कंपनी में कोई भी प्रबंधकीय पद धारित नहीं कर सकता। इसके अलावा वह अपनी नियुक्ति की समाप्ति के लिए कंपनी पर मुआवजे का दावा भी नहीं कर सकता।

संचालकों का पारिश्रमिक :-

संचालक कंपनी के अधिकारी और एजेन्ट होते हे। वे शेयरधारियों के निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं तथा कंपनी द्वारा कर्मचारी के रूप में नियुक्त नहीं किये जाते हैं। तदनुसार वे कंपनी के कर्मचारी नहीं होते और जब तक उनके पारिश्रमिक के संबंध में अंतर्नियमावल में कोई विशेष व्यवस्था न की गई हो अथवा शेयधारियों ने इस संबंध में साधरण सभा में कोई संकल्प पारित न किया हो तब तक वे पारिश्रम प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं रखते। परंतु अंतर्नियमावल में सामान्य: संचालकों के परिश्रमिक के लिए व्यवस्था की जाती है और यह मानदेय के रूप में होता है।

संचालकों की शक्तियाँ :-

संचालकों की शक्तियों का स्वरूप एवं सीमाएँ : कंपनी की अंतन्रियमावली और कंपनी अधिनियम को उपबंधों के अधीन रहकर कंपनी के संचालकों को ऐसे सभी कार्य करने की शक्ति प्राप्त होती है, जिन्हे करने के लिए स्वयं कंपनी प्राधिकृत है। अंतर्नियमावी द्वारा इनकी शक्ति निर्धारित कर दिए जाने के बाद केवल वही उन शक्तियों का प्रयोग कर सकते हैं। कंपनी के शेयरधारी हस्तक्षेप करके संचालकोंको अपने तरीके से काय्र करने से नहीं रोक सकते हैं बशर्ते कि संचालकगण अपने अधिकार-क्षेत्र के अंतग्रत सदविश्वास के साथ कंपनी के हित में अपनी शक्तियों का प्रयोग कर रहे हों। यदि शेयरधारी संचालकों के कार्यो से असंतुष्ट हैं तो वे संचालक-मंडलकी शक्ति सीमितकरने के लिए अंतर्नियमावली में परिवर्तन कर सकतेहैं अथवा जिन संचालकों के कार्यो से व असंतुष्ट हो उन्हें पुन: निर्वाचित न करनेका संकल्प कर सकते हैं परंतु वे गैर-कानूनी रूप से ऐसी शक्तियों को छीन नहीं सकतेस जो अंतर्नियमावली क्षरा संचालकों को दी गई हो।

परंतु निम्नलिखित आपवादिक स्थितियों में बहुसंख्यक शेयरधी हस्तक्षेप कर सकते हैं और कंपनी की साधारण सभा में संकल्प पारित करके संचालक-मंडल को दी गई किसी शक्ति का प्रयोग कर सकते है:

क) दुर्भाव-जब संचालक, कंपनी के हितों की पूर्ण उपेक्षा करके निजी हितों के लिए कार्य करें।

ख) असक्षम संचालक मंडल :- जब संचालक मंडल कार्य करने में अयोग्य हो जाए, उदाहरण के लिए जब सभी संचालक किसी संविदा या ठहराव में हितबद्ध हो।

ग) गतिरोध :- जब संचालक कार्य करने में असमर्थ हो, अथवा अनिच्छुक हो।

संचालकों की शक्तियों के संबंध में कानूनी उपबंध :-धारा 173 (3) प्रावधान करती है कि अंतर्नियमावली में लगाए गए प्रतिबंधों के अधीन, निम्नलिखित शक्तियाँ मंडल की बैठकों में पारित किए गए संकल्पों के माध्यम से केवल मंडल द्वारा ही प्रयोग की जा सकती है :

1) शेयरों पर अदल राशि की मांगकरने की शक्तिय;

2) कुल बदल इक्विटि शेयर-पूँजी और मुक्त आरक्षित कोषों के 10% तक अपने शेयरों या अन्य विनिर्दिष्ट प्रतिभूतियों का क्रय कारने के लिए कंपनी को अधिकृत करने की शक्ति;

3) शेयर या ऋण-पत्र जारी करने की शक्ति;

4) ऋण-पत्रों के अलावा किसी अन्य तरीके से धन उधारलेने की शक्ति;

5) कंपनी की निधियों का विनियोजन करने की शक्ति;

6) ऋण देने या ऋणों के संबंध में गारंटीया प्रतिमूति देने की शक्ति;

7) वित्तीय विवरण एवं संचालक मंडल की रिपोर्ट के अनुमोदन की शक्ति;

8) कंपनी के व्यवसाय में परिर्वन करने की शक्ति;

9) एकीकरण, संविलयन या पुनर्निर्माण के अनुमोदन की शक्ति;

10) किसी कंपनी का अधिग्रहण करने या अन्य कंपनी पर नियंत्रण करने या सारभूत साझेदार अर्जित करने की शक्ति;

11) कोई अन्य विषय जो निर्धारित किया जाए।

उपर्युक्त शक्तियों के अतिरिक्त, कंपनी अधिनियम की अनेक अन्य धाराओं के अंतर्गत कुछ अन्य शक्तियों की भी व्यवस्था की गई है, जिनका प्रयोग केवल मंडल की बैंठकों में ही किया जाना चाहिए, जैसे कि :

1) कार्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व के अनुमोदन की शक्ति।

2) अंतर्नियमावली में दिए गए विनियमों के अधीन संचालकों के आकस्मिक रिक्त स्थान की पूर्ति करने स्थानापान्न संचालक नियुक्त करने और अतिरिक्त संचालक नियुक्त करने की शक्ति।

3) राजनीतिक दल को चंदा देने की शक्ति।

4) संबद्ध पक्षकार के साथ कोई संविदा था ठहराब करने की शक्ति।

5) वार्षिक सभा में, शेयधारियों द्वारा स्वकृति के लिए कंपनी द्वारा घोषित किए जाने वाले लाभांश की दर की सिफारिष करने की शक्ति।

6) कंपनी के प्रथम लेखा-परीक्षक की नियुक्ति करने की शक्ति तथा लेखा-परीक्षा के आकस्मिक रिक्त स्थानकी पूर्ति करने की शक्ति।

7) ऋण शोधन क्षमता की घोषणा करने की शक्ति।

8) प्रमुख प्रबंधकीय कार्मियों के रिक्त स्थान की पूर्ति करने की शक्ति।

संचालको की शक्तियों पर प्रतिबंध :-अधिनियम की धारा 180 के अंतर्गत संचालकों की शक्तियों पर प्रतिबंध लगाए गए हैं। किसी कपंनी का संचालक-मंडल केवल विशेष संकल्प द्वारा शेयरधारियों की अनुमति से ही निम्नलिखित शक्तियों का प्रयोग करेगा :

1) कंपनी के समूचे उपक्रम या कारोबार अथवा उसके अधिकांश भाग को बेचना, पट्टे पर देना अथपर किसी अन्य प्रकान से उसका निपटान करना;

2) किसी विलीनीकरण या एकीकरण के परिणाम स्वरूप कंपनी द्वारा प्राप्त मुआवजे की राशि को न्यास प्रतिभूतियों के अलावा अन्य प्रतिभूतियों में विनियोजित करना;

3) कंपनी की अदत्त-पूँजी और इसकी मुक्त आरक्षित निधि के कुल योग से अधिकधनराशि उदार लेना।

4) किसी संचालक द्वारा देय ऋण की अदायगी माफ करना या उसकी देय तिथि को बढ़ाना।

संचालकों के कर्तव्य :- संचालकों की विश्वाश्रित स्थिति को ध्यान में रखते हुए कंपनी अधिनियम, 2013 के अंतर्गत संचालकों के कर्तव्यों की पहली बार धारा 166 में बताया गया है। धारा 166 के अंतर्गत संचालकों के निम्नलिखित कर्तव्य बताए गये है :

1) कंपनी की अंतर्नियमावली के अनुसार कार्य करना।

2) कंपनी के सभी सदस्यों के काम के लिए तथा कंपनी इसके कर्मचारियों,समुदाय एवं पर्यावरण के हित में सद्भावनापूर्वक कार्य करना

3) अपने कर्तव्यों को उचित एवं सम्यक सावधानी, कौशल एवं श्रमपूर्वक करना।

4) स्वतंत्र निर्णय लेना।

5) किसी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हित हो, जिससे कंपनी के हित का विरोध होता हो या होने की संभावना हो।

6) स्वयं या अपने रिस्तेदारों, साझेदारों या एसोसिएघ्ट के लिए कोई अनुचित लाभ प्राप्त नहीं करना और न ही प्राप्त करने का प्रत्यास करना चाहिए अन्यया व ऐसे लाभ के बराबर कंपनी को भुगतान करने के लिए दायी होंगे।

7) अपना पद किसी को समनुदेशित नहीं करना।

संचालकों का दायित्व :- जब तक संचालक अपने अधिकारों के अंतर्गत नेकनीयत और सदभावपूर्वक कार्य करें तथा अपने कर्तव्यों के पालन में समुचित सावधानी बरते तो उनका कोई व्यक्तिगत दायित्व नहीं होता। परन्तु निम्नलिखित परिस्थियों में संचालक कंपनी के प्रति हानि-पूर्ति करने के लिए व्यक्तिगत रूप से दायी बन सकते है :

i) **शक्तिबाध्य कार्यों के लिए :-**संचालक यदि ज्ञापन पत्र के सीमा-क्षेत्र के बाहर अथवा अपनी शक्तियों के अधिकार क्षेत्र के बाहर संविदाएँ करे जैसे कि समूचेपक्रम को बेचना।

ii) विश्वास भंग करने के लिए :-यदि संचालक गुप्त लाभ अर्जित करें या कंपनी के धन का उपयोग अपने निजी कार्य के लिए करें।

iii) **बेईमानीपूर्व कार्य करने के लिए :-**यदि संचालक कंपनी के साथ कोई बेईमानीपूर्वक कार्य करे जैसे कि पहले स्वयं अपने नाम पर सामान खरीदना और फिर लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से उसे ऊँचे मूल्य पर कंपनी को बेच देना।

v) **जान-बूझकर किए गए दुराचारण के लिए :-**यदि संचालक जान-बूझकर कोई दुराचरण करता है जैसे कि जान-बूझकर कंपनी की संपत्ति का अपहरण करना। ।

vi) **अपने सह-संचालकोंके कार्यों के लिए :-** एक संचालक अपने सह-संचालकों के कार्यों अथवा दुराचारण के लिए दायी नहीं होता है क्योंकि वे उसके एजेन्ट नहीं होते।

संचालकों से संबंधित रजिस्टर :-कंपनी अधिनियम, 2013 के अनुसार प्रत्येक कंपनी को संचालकों से संबंधित जानकारी दर्ज करने के लिए निम्नलिखित रजिस्टर रखने पड़ते है :

1) संचालकों एवं प्रमुख प्रबंधकीय कार्मिकों एवं उनकी शेयरधारिता का रजिस्टर :- धारा 170 के अनुसार प्रत्येक कंपनी को अपने संचालकों एवं प्रमुख प्रबंधकीय कार्मियों का विवरण देते हुए एक रजिस्टर रखना होता है जिसमें उनके द्वारा ली गई कंपनी, इसकी नियंत्रक कंपनी या सहायक कंपनी, नियंत्रक कंपनी की सहायक कंपनी तथा सहयुक्तकंपनी में धारित प्रतिभूतियों का विवरणहोता है।

2) ऐसी संविदाओं का रजिस्टर जिसमें संचालक हित रखते हों-धारा 189 के अनुसार, प्रत्येक कंपनी एक या अधिक ऐसे रजिस्टर रखेगी जिसमें ऐसी संविदाओं का निर्धारित विवरण देना होगा जिन पर धार 184 अथवा धारा 188 के उपबंध लागू होते हों। विवरण लिखने के बाद रजिस्टर संचालक मंडल की आगामी सभा में रखा जायेगा, तथा इस पर सभा में उपस्थित सभी संचालक हस्ताक्षर करेंगे।

संचालक मंडल की मितिसयाँ

बेहतर कार्पोरेट गवर्नेन्स प्रदान करने के लिए कंपनी अधिनियम, 2013 में यह आवश्यक किया गया है कि कुछ निश्चित कंपनियों के लिए संचालक मंडल की निम्नलिखित समितियाँ बनाई जाये:-

i) लेखा परीक्षा समित;

ii) नाम निर्देशन एवं पारिश्रमिक समिति;

iii) स्टेक होल्डर संबंध समिति;

iv) कार्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व समिति।

लेखा परीक्षा समिति

धारा-177 में लेख परीक्षा समितिके संबंध में निम्नलिखित उपबंध है :-

प्रवर्तनीयता :- प्रत्येक सूचीयत कंपनी एवं निर्धारित वर्ग की अन्यकंपनी द्वारा एक लेखा परीक्षा समिति का गठन किया जायेगा। कंपनी (मंडल की सभाएँ एवं इसकी शक्तियाँ) नियमावली, 2014 के लियम 6 के अनुसार निम्नखिलित वर्ग की कंपनियों द्वारा मंडल की एक लेखा परीक्षा समिति बनाई जायेगी : –

i) सभी सार्वजनिक कंपनियाँ जिनकी प्रदत्त पूँजी 10 करोड़ रूपये अथवा अधिक हो।

ii) सभी सार्वजनिक कंपनियाँ जिनका टर्नओवर 100 करोड़ रूपये या अधिक हो।

iii) सभी सार्वजनिक कंपनियाँ जिनके कुल बकाया ऋण अथवा उधार अथवा ऋण-पत्र अथवा जमाएँ 50 करोड़ रूपये या इससे अधिक हो।

गठन :- लेखा रीक्षा समिति में स्वतंत्र संचालकों सहित कम से कम तीन संचालक होंगे। इस समिति के सदस्यों में इसके अध्यक्ष सहित अधिकांश ऐसे व्यक्ति होंगे जो वित्तीय विवरण-पत्रों को पढ़ने एवं समझने में सक्षम हो।

भूमिका एवं उत्तरदायित्व :-प्रत्येक लेखा परीक्षा समिति, संचालक मंडल द्वारा लिखित रूप में निर्दिष्ट विचारार्थ विषय के अनुसार कार्य करेगी। इसमें अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित बातें होंगे :-

i) कंपनी के लेखा परीक्षक की नियुक्ति, नियुक्ति की शर्तों एवं पारिश्रमिक की सिफारिश करना।

ii) लेखा परीक्षक की स्वतंत्रता व कार्य अनुपालन तथा लेखा परीक्षण प्रक्रिया के प्रभावशीलता की **समीक्षा करना एवं देख रेख करना।**

iii) वित्तीय विवरण की जाँच करना तथा इसके संबंध में दी गई लेखा परीक्षक की रिपोर्ट को जाँचना।

v) अंतर-कंपनी ऋण एवं विनियोगों की जाँच करना ।

vi) कंपनी के उपक्रमों या संपत्तियों की जहाँ कीं आवश्यकता हो मूल्यांकन करना।

vii) आंतरिक वित्तीय नियंत्रण तथा जोखिम प्रबंध प्रणालियों का मूल्यांकन करना।

viii) सार्वजनिक प्रस्तावोंके माध्यम से प्राप्त किए गए कोषों के अंतिम उपयोग तथा संबंधित मामलों का नियंत्रण करना।

नाम-निर्देशन एवं पारिश्रमिक समिति

धारा 178 में नाम-निर्देशन एवं पारिश्रमिक समिति के संबंध में निम्नलिखित उपबंध हैं :- प्रवर्तनीयता-प्रत्येक सूचीयत कंपनी एवं निर्धारित कंपनियों की श्रेणी का संचालक-मंडल नाम-निर्देशन एवं पारिश्रमिक समिति का गठन करेगा।

कंपनी (मंडल की सभाएँ एवं इसकी शक्तियाँ) नियमावली 2014 के नियम 6 के अनुसार निम्नलिखित श्रेणियोंकी कंपनी द्वारा संचालक मंडल की नाम-निर्देशन एवं पारिश्रमिक समिति का गठन किया जायेगा :-

i) सभी सार्वजनिक कपनियाँ जिनकी प्रदत्त पूँजी 10 करोड़ रूपये अथवा अधिक हो।

ii) सभी सार्वजनिक कंपनियाँ जिनका टर्नओवर 100 करोड़ रूपये या अधिक हो।

iii) सभी सार्वजनिक कंपनियाँ जिने कु बकाया ऋण या उधारियाँ या ऋण-पत्र या जमाएँ 5 करोड़ रूपये या अधिक हो।

गठन-नाम-निर्देशन एवं पारिश्रमिक समिति में तीन या अधिक गैर-कार्यकारी संचालक होंगे जिनमें से कम से कम आधे स्वतंत्र संचालक होंगे।

कंपनी के अध्यक्ष (चाहे कार्यकारी है या गैर-कार्यकारी) को नाम-निर्देशन एवं पारिश्रमिक समिति का सदस्या नियुक्त किया जा सकताहै, परन्तु वह ऐसी समिति का अध्यक्ष नहीं बन सकता है।

भूमिका एवं उत्तरदायित्व :- नाम-निर्देशन एवं पारिश्रमिक समिति की भूमिका एवं उत्तरदायित्व निम्नलिखित है –

i) ऐसे व्यक्तियों की पहचान करना जो संचालक बनने के योग्य हो तथा जो निर्धारित मापदंड के अनुसार वरिष्ठ प्रबंधन में नियुक्त किए जा सकते हों।

ii) प्रत्येक संचालक के कार्य निष्पादनका मूल्यांकन करना।

iii) स्थायी एवं प्रेरणादायक वेतन में सामंजस्य के संबंध में उचित कार्य निष्पादन को ध्यान में रखकर संचालकों, प्रमुख प्रबंधकीय कार्मिकों एवं अन्य कर्मचारियों के पारिश्रमिक के संबंध में संचालकों की योग्यताएँ, सकारात्मक अभिरूचियाँ एवं स्वतंत्रता निर्धारित करने के लिए मापदण्ड बनाना।

स्टेकहोल्डर संबद्ध समिति

धारा 178 (5) यह प्रावधान करती हे कि किसी वित्तीय वर्ष के दौरान किसी समय पर 1000 से अधिक शेयरधारक, ऋणपत्र धारक, निक्षेप धारक, एवं कोई प्रतिभूति धारक से मिलकर बनने वाली कंपनी का संचालक मंडल स्टेकहोल्डर संबद्ध समिति का गठन करेगा।

इस समिति में एक अध्यक्ष होगा जो गैर-कार्यकारी संचालक होगा तथा इसमें उतने ही अन्य सदस्य होंगे जितने संचालक मंडल द्वारा निर्धारित किये जायेंगे। यह समिति कंपनी के प्रतिभूति धारकों की शिकायतों पर विचार करेगी एवं उनका समाधान करेगी।

धारा 178 के अनुसार गठित प्रत्येक समिति का अध्यक्ष अथवा उसकी अनुपस्थिति में इसके संबंध में उसके द्वारा अधिकृत किया गया समिति का कोई अन्य सदस्य कंपनी की साधारण सभा में उपस्थित होगा।

कार्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व समिति

कार्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व एक ऐसी गतिविधि है जो उद्योग के आसपास रहने वाले लोगों की जीवन गुणवत्ता को बढ़ाने के प्रति समर्पित होती है। यह समाजकीसामाजिक-आर्थिक हैसियकत बढ़ाने वाली गतिविधि होती है।

कार्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व संबंधी गतिविधियों को कंपनी अधिनियम, 2013 द्वारा कुछ निश्चित कंपनियों के लिए कानूनन आवश्यक कर दिया गया है। धारा135 इस संबंध में निम्नलिखित प्रावधान करती है-

प्रवर्तनीयता :- प्रत्येक ऐसी कंपनी जिसकी शुद्ध संपदा किसी वित्तीय वर्ष में 500 करोड़ रूपये या अधिक हो, अथवा जिसका टर्नओवर 1,000 करोड़ रूपये या अधिक हो अथवा जिसका शुद्ध लाभ 5 करोड़ रूपये या अधिक हो, उसके द्वारा संचालक मंडल की कार्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व समिति बनाई जायेगी।

गठन :- इस समिति में तीन या अधिक संचालक होंगे जिनमें से कम से कम एक स्वतंत्र संचालक होगा। संचालक मंउल की रिपोर्ट में कार्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व समिति की संरचना को दिया जायेगा।

भूमिका एवं उत्तरदायित्व :-कार्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व समिति के कार्य निम्नखित है :

क) कार्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व नीति बनाकर इसकी सिफारिश संचालक मंडल को करना। इस नीति में अनुसूची VII में यथा विहित वे गतिविधियाँ बताई जायेंगी जिन्हें कंपनी द्वारा किया जाये;

ख) ऐसी गतिविधियों पर किये जाने वाले व्यय की राशि की सिफारिश करना; तथा;

ग) समय-समय पर कंपनी की कार्पोरेट सामाजिक उत्तर-दायित्व नीति को मानीटर करना।

अनुसूची VII

यथा संशोधित अनुसूची VII के अनुसार कंपनियों की कर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व नीति में निम्नलिखित क्रियाकलापों को शामिल किया जा सकता है :-

i) भूखमरी, निर्धनता एवं कुपोषण का उन्मूलन करना, स्वास्थ्य रक्षाएवं साफ-सफाई को बढ़ावा तथा सुरक्षित पीने योग्य पानी उपलब्ध कराना;

ii) बच्चों, महिलाओं, वृद्धों एवं विकलांग व्यक्तियों में व्यावसायिक कौशल बढ़ाने एवं रोजगार सहित शिक्षा का विकास करना तथा जीविकोपार्जन बढ़ाने वाली परयोजनाएँ चालाना;

iii) लैंगिक समानता, महिला सशक्तिकरण को प्रोत्साहन देना, महिलाओं एवं अनाथ बच्चों के लिए घर एवं छात्रावासों की स्थापना करना, वृद्धाआश्रम खोलना, डे केयर केन्द्र स्थापित करना तथा वरिष्ठ नागरिकों के लिए अन्य सुविधाएँ उपलब्ध कराना;

iv) पर्यावरणीय संपोषण, पारिस्थकीय संतुल, वनस्पतियाँ एवं जीव-जंतु के संरक्षण्, जानवरों के कल्याण,वन विकास, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण व्यवस्था करना;

v) ऐतिहासिक महत्व के भवनों एवं स्थलों प्रथा कलाकृतियों को पूर्व स्थिति में लाने के कार्य सहित राष्ट्रीय विरासत, कला एवं संस्कृति का संरक्षण करना, सार्वजनिक पुस्तकालय खोलना परंपरागत कला एवं हस्तशिल्प का संवर्धन एवं विकास कना;

vi) ग्रामीण क्षेत्रों में खेलों, राष्ट्रीय मानयता प्राप्त खेलों, पैरालिम्पिक खेलों एवं ओलंपिक खेलों के विकास हेतु प्रशिक्षण देना;

vii) केन्द्र सरकार द्वारा सअनुमोदित शैक्षणि संस्थान में स्थित टेक्नोलॉजी इन्क्यूवेटर को अंशदान या कोष उपलब्ध कराना;

viii) सशस्त्र बलों के भूतपूर्व सैनिकों, युद्ध में मारे गए व्यक्तियों की विधवाओंएवंउनके आश्रितों के लाभ के लिए उपया करना;

ix) प्रधानमंत्री राष्ट्रीयसहायता कोष अथवा केन्द्र सरकार पिछड़े वर्गों, अल्पसंख्यकों एवं महिलाओं के सामाजिक आर्थिक विकास व सहायता वकल्याण के लिए बनाए गए किसी अन्य कोष में अंशदान करना;

x) ग्रामीण विकास परियोजाएँ;

xi) मलिन बस्ती क्षेत्र का विकास।

अन्य प्रबंधकीय कर्मचारी-वर्ग

कंपनी के अंतर्नियमावली द्वारा यदि अधिकार दिया गया हो तो कंपनी अपने दैनिक प्रशासन के लिए संचालक-मंडल के अतिरिक्त निम्नखिलिखत कर्मचारी-वर्ग में से किसी एक की नियुक्ति कर सकती है;

1) प्रबंध-संचालक

2) प्रबंधक

कंपनी अधिनियम के अनुसार किसी कंपनी में प्रबंधक-संचालक तता प्रबंधक की एक साथ नियुक्ति करना निषिद्ध है। किसी कंपनी में एक समय परउपर्युक्त प्रबंधकीय कर्मचारी वर्ग में से केवल एक श्रेणी की ही नियुक्ति की जा सकती है। परन्तु प्रबंध-संचालक अथवा प्रबंधक के साथ पूर्णकालिक संचालक की नियुक्ति करना निषिद्ध नहीं है।

प्रबंध संचालक

कंपनी अधिनियम की धारा 2 (54) के अनुसार, '' प्रबंध-संचालक का आशय एक ऐसे संचालक से है, जिसे कंपनीके साथ किए गए किसी करार के आधार पर अथवा कंपनी द्वाराअपनी साधारण सभा में अथवा संचालक-मंडल द्वारापारित किसी संकल्प द्वारा, अथवा कंपनी की अंतर्नियमावली द्वारा ऐसी सारभूत प्रबंधकीय शक्तियाँ सौंपी गई हो जिनका प्रयोग वह अन्यथा न कर सकता हो और ऐसा संचालक भी सम्मिलित होता है जो प्रबंधन-संचालक की स्थिति में कार्य कर रहा हो, चाहे वह किसी भी नाम से क्यों न पुकार जायें।''

उपर्युक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि प्रबंध-संचालक अनिवार्यत: एक ऐसा संचालक होना चाहिए जिसे प्रबंधन की सारभूत शक्तियाँ प्राप्त हो और जिसे ऐसी शक्तियाँ (क) करार, अथवा (ख) अंतर्नियमावली, अथवा (ग) मंडल के संकल्प, अथवा (घ) साधारण सभा के संकल्प द्वारा प्रदान की गई हों।

सामान्यत: अंतर्नियमावली द्वारा संचालक मंडल को मंडल की बैठक में पारित किए गए संकल्प द्वारा अपने में से किसी को प्रबंध-संचालक के पद पर नियुक्त करने के अधिकार दिए जाते हैं और यह नियुक्ति एक अलग सेवा संविदा के अंतर्गत उसकी शक्तियाँ, कर्तव्य एवं सेवा की शर्तें निर्धारित करके की जाती है। इस प्रकार , प्रबंध-संचालक एक सेवाधीन संचालक होता है। चूँकि प्रबंध-संचाल अनिवार्यत: कंपनी का एक संचालक होना चाहिए अत: यदि वह कोई अयोग्यता अर्जित करनेकेकारण अथवा चक्रानुक्रम में रिटायर होने के कारण संचालन के रूप में कार्य करना बंद कर दे तो प्रबंध-संचालक के रूप में उसकी नियुक्ति स्वत: समाप्त हो जाती है।

प्रबंधक

प्रस्तुत संदर्भ में प्रबंधक शब्द का अर्थ महाप्रबंधक के रूप में नियुक, कंपनी के मुख्य कार्यकारी अधिकारी से है। इसके अंतर्गत करखाना प्रबंधक, निर्माण कार्य प्रबंधक, बिक्री प्रबंधक जैसे कार्यकारी कर्मचारी नहीं आते है।

अधिनियम की धारा 2 (53) के अनुसार, ''प्रबंधक एक ऐसा व्यक्ति है जो संचालक-मंडल के अधीक्षण, नियंत्रण और निर्देशों के अधीन कंपनीके समूचे करोबार अथवा अधिकांश करोबारका प्रबंधन

करता है और इसमें कोई संचालक अथवा कोई ऐसा व्यक्ति भी शामिल है जो प्रबंधक की हैसियत से कार्यकर रहा हो, चाहे उसका पदनाम कुछ भी हो तथा चाहे उसकी नियुक्ति किस सेवा संविदा के अधीनकीगई हो अथवा नहीं।''

उपर्युक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि प्रबंध-संचालक तथा प्रबंधक के कार्य लगभग एक जैसे होते है। परन्तु यह महत्वपूर्ण है कि प्रबंध संचालक के पास प्रबंधन की संपूर्ण शक्तियां नहीं होती, उसके पास प्रबंधन की केवल सारभूत शक्तियाँ होती है। इस प्रकार प्रबंध संचालक की शक्तियाँ प्रबंधकी अपेक्षा सीमित होती है।

<u>प्रबंध संचालक या प्रबंधक की नियुक्ति</u>

कंपनी अधिनियम,2013की धारा 196 द्वारा प्रबंध संचालक, अथवा प्रबंधक की नियक्ति पर कुछ प्रतिबंध लगाए गये हैं जो निम्नलिखित है :-

1) कोई भी कंपनी एक साथ प्रबंध संचालक तथा प्रबंधक की नियुक्ति नहीं करेगी।

2) प्रबंध संचालक अथवा प्रबंधक की नियुक्ति या पुन: नियुक्ति की अधिकतम अवधि एक बार में 5 वर्ष हो सकती है।

3) कोई भी कंपनी किसी ऐसे व्यक्ति को प्रबंध संचालक या प्रबंधक नियुक्त नहीं करेगी :-

क) जो 21 वर्ष से कम आयु का हो तथा 70 वर्ष की आयु पूरा कर चुका हो। यदि वह 70 वर्ष की आयु का हो चुका है तो शेयरधारियों के विशेष संकल्प द्वारा उसकी नियुक्ति का अनुमोदन अनिवार्य है;

ख) जो दायित्वयुक्त दिवालिया न हो अथवा जिसे किसी भी समय दिवालिया घोषितकिया जा चुका हो;

ग) जो अपने ऋणदाताओं को भुगतान करना बंद कर दे अथवा जिसने किसी भी समय उन्हें उक्त भुमतान करना निलंबित किया हो अथवा जिसने उनके साथ कोई समझौत किया है या कभी किया हो; अथवा

घ) जो न्यायालय द्वारा किसी अपराध के लिए सजा पाए हुए है या पा चुका है और जिस 6 माह से अधिक की सजा दी गई हो।

4) यदि धारा 197 एवं अनुसूची V के प्रावधानों का पालन किया गया है तो प्रबंध संचालक, या प्रबंधक की नियुक्ति एवं उसको देय पारिश्रमिक के संबंध में संचालक मंडल की सभा में उनकी स्वीकृति

आवश्यक होगी तथा कंपनी की अगली साधारण सभा में शेयरधारकोंकी विशेष संकल्प द्वारा स्वकृति प्राप्त करनी होगी।

5) ऐसी नियुक्ति के 60 दिन के भीतर कंपनी रजिस्ट्रारके पास एक विवरणी फाइल की जानी चाहिए। यह विवरणी निर्धारित प्रारूप में होनी चाहिए।

6) यदि प्रबंध संचालक अथवा प्रबंधक की नियुक्ति को साधारण सभा में कंपनी द्वारा स्वकृति नहीं किया जाता तो ऐसी नियुक्ति को समाप्त समझा जायेगा।

5.5 अत्याचार एवं कुप्रबंधन की रोकथाम

बहुसंख्यको के शासन का सिद्धांत

कंपनी प्रबंधन का सिद्धांत है- 'बहुसंख्यको की इच्छा की अनिवार्यत: जीत होनी चाहिए।' संचालक-मंडल को सौपी गई शक्तियों के अतिरिक्त, कंपनी का कारोबार नियंत्रित करने के समस्त अधिकार शेयरधारियों के पास ही रहते है; जिनका प्रयोग वे साधारण सभाओं के माध्यम से करते हैं। यह भी स्पष्ट है कि साधारण सभाओं में निर्णय बहुसंख्यक शेयरधारियों द्वारा लिये जाते हैं वह बहुसंख्या कंपनी अधिनियम अथवा कंपनी की अंतर्नियमावली में निहित उपबंधों के अनुसार साधारण बहुसंख्या अथवा विशेष बहुसंख्या अर्थात् तीन-चौथाई बहुसंख्या हो सकती है। प्रबंधन और निर्णय लेने की इस व्यवस्था के अंतर्गत यह बात स्पष्ट है कि संचालकों को सौंपे गये विषयों के अतिरिक्त अन्य सभी विषयों के संबंध में बहुसंख्यक शेयरधारियों की इच्छा ही कंपनी के प्रशासन में सर्वोपरि होती है।

फॉस बनाम हारबोटल के वाद में प्रतिपादित सिद्धांत

बहुसंख्यकों की सर्वोपारित का सिद्धांत, सर्वप्रथम 1843 में फॉस बनाम हारबोटल के प्रसिद्ध वाद में न्यायिक स्तर पर स्वीकार किया गया था।

वाद के तथ्य – दि विक्टोरिया पार्क कंपनी के दो शेयरधारियों फॉस तथा टरटन ने अपनी और से तथा अन्य शेयरधारियों की और से कंपनी के 5 संचालकों, प्रतिवस्ता और वास्तुक के विरूद्ध वाद चलाया और उनपर यह आरोप लगाया कि उन्होंने इकट्ठे होकर अनेक कपटपूर्ण तथा अवैध लेन-देन किए, जिसके कारण कंपनी की संपत्ति का दुरूपयोग तथा अपव्यय हुआ है। वादियों ने यह प्रार्थना की कि न्यायालय द्वारा प्रतिवादियों को याचिका में बताए गए उनके गलत कार्यों के कारण कंपनी को हुई हानि की क्षतिपूर्ति करने के आदेश दिए जाएँ। न्यायालय ने इस मुकदमे को इस तर्क के साथ रद्द कर दिया कि जिस प्रकार के आचरण के प्रतिवादियों पर आरोप लगाए गए है; उससे केवल वादियों को ही हानि नहीं हुई अपितु इससे पूरे कार्पोरेशन को क्षति पहुँची है और इसलिए वादी नहीं, बल्कि केवल कार्पोरेशन ही अपने नाम से कानूनी कार्यवाही कर सकती है,

अन्यथा न्यायालय द्वारा कार्यवाही किया जाना व्यर्थ होगा, क्योंकि कथित कर्तव्य–भंग का साधारण सभा में कंपनी द्वारा अनुसमर्थन किया जा सकता है।

फॉस बना हारबोटल के वाद में दिए गए अधिनिर्णय से यह सिद्ध हो गया कि अल्पसंख्यक शेयरधारियों द्वारा वाद प्रस्तुत किये जाने पर अपने अधिकारों के अंतर्गत कार्य करनेवाली कंपनियों के आंतरिक प्रबंधन में न्यायालय हस्तक्षेप नहीं करेगा, भले ही प्रबंधक वर्ग की लापरवाही तथा अदक्षता सिद्ध भी हो जाये, क्योंकि जिन विषयों का साधारण सभा में अनुसमर्थन किया जा सकता है, उन विषयों पर कानूनी कार्यवाही करने में कोई तर्क नहीं है।

फॉस बनाम हारबोटल के वाद में प्रतिपादित सिद्धांत तब से अनेक वादों में भी अपनाया गया है।

अल्पसंख्यकों की सुरक्षा

फॉस बनाम हारबोटल के वाद में प्रतिपादित सिद्धांत से यह स्पष्ट हो जाता है कि बहुसंख्यकों के निर्णय कंपनी पर बाध्यकारी होते हैं और अल्पसंख्यकों की, चाहे उनकी संख्या 491भी हो कंपनी के नियंत्रण एवं प्रबंधन के मामलों में कोई सुनवाई नहीं होती है। ऐसी स्थिति में खतरे भी हो सकते हैं। यदि बहुसंख्यक सदस्य दुष्ट हैं और वे वस्तुत: पूरी कंपनी के हित में कार्य नहीं करते तो फॉस बनाम हारबोटल के सिद्धांत को पूरी तरह लागू करने पर बहुसंख्यक अल्पसंख्यकों का शोषण कर सकते हैं और इसके विरूद्ध अल्पसंख्यक कोई कार्यवाही नहीं कर सकते। न्याय की दृष्टि से बहुसंख्यकों की सर्वोपरिता के सिद्धांत के कुछ अपवाद स्वीकार किए गए हैं।

बहुसंख्यकों के सिद्धांत के अपवाद

निम्नलिखित परिस्थितियों में कोई अकेला शेयरधारी अथवा अल्पसंख्यक शेयरधारी अपने हितों की सुरक्षा के लिए कंपनी के विरूद्ध कानूनी कार्यवाही कर सकता है:

1) यदि कंपनी के अधिकारातीत अथवा गैर-कानूनी कार्य किया गया हो-फॉस बनाम हारबोटल का सिद्धांत ऐसे कार्यों पर लागु नहीं होता है जो कंपनी के अधिकार क्षेत्र के बाहर अथवा गैर-कानूनी हो क्योंकि बहुसंख्यक शेयरधारी, चाहे वे कितनी भी अधिक संख्या में हों, ऐसे कार्यों का अनुसमर्थन नहीं कर सकते। इसलिए प्रत्येक शेयरधारी निषेधादेश के लिए मुकदमा दाखिल करके कंपनी को ऐसे कार्य करने से रोकने का अधिकार रखता है।
2) जब किया गया कोई कार्य अपर्याप्त बहुमत से पारित किए गए संकल्प द्वारा समर्थित हो-कुछ संकल्पों को पारित करने के लिए विशेष संकल्प पारित करना अर्थात् तीन-चौथाई बहुमत होना आवश्यक होता है, जैसे-ज्ञापन पत्र के उद्देश्य–खंड में परिवर्तन करने के लिए। यदि कोई ऐसा संकल्प

साधारण संकल्प के रूप में केवल साधारण बहुमत से पारित किया गया हो तो कोई भी शेयर धारी ऐसे संकल्प को क्रियान्वित करने से कंपनी को रोकने के लिए कार्यवाही आरंभ कर सकता है।

3) यदि शिकायताधीन कार्य में अल्पसंख्यकों के साथ कोई धोखाधड़ी की गई हो और कंपनी का नियंत्रण इस धोखेधड़ी के उत्तरदायी व्यक्तियों के साथ में हो-इस अपवाद के अंतर्गत किसी कपटपूर्ण उद्देश्य से पारित किए गए ऐसे संकल्प आते हैं, जिनके आधार पर अल्पसंख्यकों को अनुचित ढंग से किसी ऐसे लाभ से वंचित किया जा सके जिसके वे हकदार हों। यदि बहुसंख्यक अल्पसंख्यकों को हानि पहुंचाकर अपने लाभ के लिए अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हैं तो यह अल्पसंख्यकों के साथ कपट होगा और कोई भी शेयरधारी कंपनी को ऐसा संकल्प क्रियान्वित करने से रोकने के लिए कार्यवाही आरंभ कर सकता है। उदाहरण के लिए, यदि बहुसंख्यक कोई ऐसा संकल्प पारित कर दें जिसमें कंपनी की संपत्ति कम मूल्य पर स्वयं उन्हीं को बेच देने की स्वीकृति दी गई हो, तो ऐसे मामलों में न्यायालय निश्चित रूप मे हस्तक्षेप करेगा।

4) यदि किसी शेयरधारी के व्यक्तिगत सदस्यता-अधिकारों का उल्लंघन किया गया हो-कोई भी बहुमत किसी भी शेयरधारी को उसके उन व्यक्तिगत सदस्यता अधिकारों से वंचित नहीं कर सकता जो उसे कंपनी अधिनियम अथवा अंतर्नियमावाली द्वारा प्रदान किए गए हों। उदाहरण के लिए, यदि किसी शेयरधारी को अपना मताधिकार प्रयोग न करने दिया जाए अथवा गैरकानूनी रूप से उसका नाम सदस्य रजिस्टर से हटा दिया जाए तो वह व्यक्तिगत रूप से कंपनी पर मुकदमा कर सकता है। साथ ही, यदि किसी शेयरधारी की संचालक-पद के लिए उम्मीदवारी सभापति द्वारा अस्वीकृत कर दी जाती है तो यह उसके व्यक्तिगत सदस्यता अधिकारों का उल्लंघन होगा और वह व्यक्तिगत रूप से कंपनी पर मुकदमा कर सकता है तथा संचालकों के चुनाव संबंधी सभा में की गई कार्यवाही को शून्य करार करा सकता है।

5) यदि कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 241 से 245 तक के उपबंध लागू होते हों-कंपनी अधिनियम 2013में भी ऐसे उपबंध विद्यमान हैं जो अत्याचार और कुप्रबंध के मामले में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा करते हैं।

अत्याचार एवं कुप्रबंधन की रोकथाम

कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 241 से 245 तक के विशेष उपबंधों के अधीन टिब्यूनल को अत्याचार एवं कुप्रबंधन की रोकथाम के लिए कंपनी के मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया गया है।

धारा 241 के अनुसार धारा 244 में निर्दिष्ट संख्या में, कंपनी के सदस्य निम्नलिखित आधार पर उपयुक्त राहत के लिए ट्रिब्यूनल को आवेदन कर सकते हैं :

- अत्याचार – यदि कंपनी का कारोबार किसी ऐसे तरीके से चलाया गया था चलाया जा रहा हो जिससे उसपर या किसी अन्य सदस्य पर या सदस्यों के प्रति अत्याचार होता हो अथवा किसी ऐसे तरीके से चलाया जा रहा हो जो लोकहित के प्रतिकूल हो।
  अत्याचार का अर्थ किसी सदस्य अथवा सदस्यों के प्रति क्रूरतापूर्ण और अत्याचारपूर्ण व्यवहार करना है। इसके अंतर्गत केवल नीति और प्रशासन के संबंध में संचालकों तथा सदस्यों के बीच के आंतरिक विवाद, संचालकों तथा सदस्यों के बीच निजी शत्रुता, अथवा बहुसंख्यक शेयरधारियों तथा अल्पसंख्यक शेयरधारियों के बीच परस्पर विश्वास की कमी के मामले नहीं आते। अत्याचार का आरोप लगाने वाले शेयरधारी को यह सिद्ध करना होगा कि उस पर एक ऐसा बोझ है जो कढोर अथवा अनुचित अथवा अत्याचारपूर्ण है। याचिक की तारीख तक बहुसंख्यकों द्वारा अनिवार्यत: ऐसे कार्य निरंतर किये गये होने चाहिए जो इस बात के द्योतक हों कि कंपनी का कारोबार ऐसे तरीके से चलाया जा रहा है जिससे कुछ सदस्यों के प्रति अत्याचार हो रहा है।
- कुप्रबंधन – यदि कंपनी के प्रबंधन अथवा नियंत्रण में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गया हो, चाहे यह परिवर्तन संचालक –मंडल अथवा प्रबंधक के परिवर्तन के कारण अथवा कंपनी के शेयरों के स्वामित्व परिवर्तन के कारण, अथवा यदि कंपनी की कोई शेयर-पूंजी न हो तो इसके सदस्यों के परिवर्तन के कारण हुआ हो, और इस परिवर्तन के कारण यह संभावना हो कि कंपनी का कारोबार ऐसे तरीके से किया जायेगा जो लोकहित या कंपनी या सदस्यों के हितों के प्रतिकूल होगा।
- अधिनियम की धारा 241 के अंतर्गत कुप्रबंधन का आरोप लगाने के लिए यह अनिवार्य है कि शक्ति का अनुचित दुरूपयोग किया गया हो और कंपनी के प्रबंधन के लिए उत्तरदायी व्यक्ति अनिवार्यत: कपट, अपाहरण (Misappori attic) तथा कर्तव्य भंग करने के दोषी हों।

यह उल्लेखनीय है कि इन धाराओं के अंतर्गत केन्द्रीय सरकार/ ट्रिब्यूनल को ऐसे मामलों में भी हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया गया है जहाँ शिकायताधीन अत्याचार अथवा कुप्रबंधन लोकहित के प्रतिकूल हो। कंपनी को आजकल केवल लाभ अर्जित करने का साधन मात्र नहीं माना जाता अपितु इसे समाज की आवश्यकताएं पूरी करने वाली एक सजीव सामाजिक एवं आर्थिक ईकाई समझा जाता है जो समाज द्वारा अपेक्षित सेवाओं और वस्तुओं की पूर्ति ऐसे मूल्य पर करती है जिसे उपभोक्त देने का इच्छुक हो और जिसके लिए उसमें सामर्थ्य हो।

एन.आर. मूर्ति बनाम औद्योगिक विकास कारपोरेशन ऑफ उड़ीसा लिमिटेड वाद के तथ्य इस संबंध में उल्लेखनीय है। कंपनी ने विभिन्न वित्तीय संस्थाओं से बहुत बड़ी मात्रा में ऋण प्राप्त किए थे और लोकहित की दृष्टि से यह आवश्यक था प्राप्त ऋण का समुचित उपयोग किया जाए। प्रबंध संचालक और सभापति के

बीच आपसी मतभेदों के कारण कंपनी के उलादन कार्य को शुरू करने में देरी हुई। इस संबंध में यह निर्णय दिया गया कि कंपनी का कारोबार कंपनी के हितों एवं लोकहित के प्रतिकूल चलाया जा रहा है।

ट्रिब्यूनल से आवेदन करने के हकदार पक्ष

कंपनी अधिनियम की धारा 244 में अत्याचार एवं कुप्रबंधन के मामलों में राहत के लिए ट्रिब्यूनल से आवेदन करने का अधिकार रखने वाले सदस्यों की संख्या का उल्लेख किया गया है, जो निम्नलिखित हैं:

क) शेयर-पूंजी वाली कंपनियों की दशा में कंपनी के कम-से-कम एक सौ सदस्य अथवा उसकी कुल सदस्य संख्या का दसवाँ भाग, इनमें से जो भी कम हो, अथवा कोई सदस्य या सदस्य गण जिसके पास कंपनी की निर्गमित शेयर-पूंजी का कम-से-कम 10 % भाग हो तथा जिन्होंने अपने शेयरों पर देय सब भांग राशियों का भुगतान कर दिया है।

ख) बिना शेयर-पूँजी वाली कंपनियों की दशा में कंपनी के सदस्यों की कुल संख्या के कम-से-कम 20 % सदस्य।

ग) किसी भी अपेक्षाकृत कम संख्या में सदस्य यदि इसके लिए ट्रिब्यूनल द्वारा आवेदन किये जाने पर प्रतिकृत किया गया हो।

घ) स्वयं केन्द्र सरकार ट्रिब्यूनल को आवेदन कर सकती है यदि इसके विचार में कंपनी का कारोबार लोकहित के प्रतिकूल ढंग से चलाया जा रहा है।

कंपनी अधिनियम की धारा 244 (2) के अनुसार अपेक्षित संख्या में सदस्यों की सहमति प्राप्त करने के पश्चात् कोई एक अथवा अधिक सदस्य शेष सदस्यों की ओर से तथा उनके लाभ के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है। याचिका प्रस्तुत करने के पश्चात् यदि कुछ हस्ताक्षरकर्ता अपनी सहमति वापस ले लेते हैं अथवा कंपनी की सदस्यता छोड़ देते हैं, तो इससे याचिका की वैधता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

ट्रिब्यूनल की शक्तियां

अत्याचार अथवा कुप्रबंधन के मामलों में ट्रिब्यूनल की व्यापक शक्तियाँ हैं। इससे संबंधित आवेदन प्राप्त होने पर ट्रिब्यूनल यथोचित आदेश दे सकती है, यदि उसकी राय में :

क) कंपनी के कारोबार का संचालन ऐसे तरीके से किया जा रहा हो जो लोकहित अथवा कंपनी के हितों के प्रतिकूल हो अथवा जिससे किसी सदस्य अथवा सदस्यों के प्रति अत्याचार होता हो: तथा

ख) अिधनियम की धारा 242 (1) के अनुसार, कंपनी के समापन से पीड़ित सदस्य अथवा सदस्यों को अनुचित हानि पहूँचती हो जबकि अन्यथा तथ्यों को ध्यान रखते हुए इस आधार पर कंपनी का समापन कर दिया जाना उचित होता कि कंपनी का समापन 'न्याय संगत एवं साम्पिक' है।

अधिनियम की धारा 242 (2) में अभिव्यक्तत: उन व्यापक विवेकीय शक्तियों का उल्लेख किया गया है, जिनका प्रयोग ट्रिब्यूनल इस प्रकार के आवेदन-पत्र का निपटारा करने के लिए कर सकता है। ट्रिब्यूनल के आदेश में निम्नलिखित के लिए व्यवस्था की जा सकती है :

i. भविष्य में कंपनी के कारोबार के संचालन का विनियमन;
ii. कंपनी के किसी सदस्य के शेयरों अथवा हितों की उसी कंपनी के किन्हीं दूसरे सदस्यों द्वारा अथवा कंपनी द्वारा खरीद;
iii. यदि किसी कंपनी को अपने शेयर खरीदने के आदेश दिए गये हों तो उस सीमा तक कंपनी की शेयर-पूँजी में कमी करना;
iv. कंपनी के शेयरों के अंतरण अथवा आबंटन पर रोक;
v. कंपनी और उसके प्रबंध संचालक, प्रबंधन अथवा किसी अन्य संचालक के बीच हुए किसी अनुबंध को उन शर्तों पर संशोधित या समापृत करना जो ट्रिब्यूनल के विचार में न्याय-संगत एवं उचित हों;
vi. कंपनी और उपर्युक्त खंड () में निर्दिष्ट न किये गये किसी व्यक्ति के बीच हुए किसी अनुबंध को समाप्त करना अथवा उसमें संशोधन करना बशर्ते कि संबद्ध पक्ष को विधिवत् सूचना दे दी गई हो और उसकी सहमति प्राप्त कर ली गई हो;
vii. आवेदन की तारीख से पहले तीन महीनों के भीतर दी गई किसी कपटपूर्ण प्राथमिकता को समाप्त करना;
viii. कंपनी के प्रबंध संचालक, प्रबंधक या किसी संचालक को हटाना;
ix. किसी प्रबंध संचालक प्रबंधक या संचालक द्वारा अपनी नियुक्ति के दौरान अनुचित लाभ की वसूली और वसूली की उपयोगिता की रीति जिनके अंतर्गत निवेशक शिक्षा एवं सुरक्षा कोष में अन्तरण या पहचानने योग्य पीड़ित व्यक्तियों का पुनर्भुगतान भी है;
x. वह रीति जिसमें, कंपनी के विद्यमान प्रबंध संचालक या प्रबंधक को हटाये जाने के आदेश के बाद कंपनी के प्रबंध संचालक या प्रबंधक की नियुक्ति की जा सकेगी;
xi. संचालकों के रूप में ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त करना, जिनसे ट्रिब्यूनल द्वारा निर्दिष्ट किये गये मामलों पर ट्रिब्यूनल को रिपोर्ट देने की अपेक्षा की जा सकेगी;
xii. ऐसे खर्चों का अधिरोपण जिन्हें ट्रिब्यूनल उचित समझे;
xiii. किसी अन्य विषय के संबंध में व्यवस्था, जो किसी मामले विशेष की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ट्रिब्यूनल को न्याय संगत और उचित प्रतीत है।

ट्रिब्यूनल को अपने विवेकानुसार यथोचित शर्तों पर अंतरिम आदेश देने की शक्ति भी होती है। कंपनी अधिनियम की धारा 242 (4) (5) में यह भी व्यवस्था की गई है कि यदि ट्रिब्यूनल द्वारा दिए गए आदेश से

कंपनी के शासन-पत्र या अंतर्नियमावली में कोई परिवर्तन होता हो तो कंपनी को ट्रिब्यूनल से अनुमति लिए बगैर कोई ऐसा परिवर्तन करने का अधिकार नहीं होगा जो उक्त आदेश के अनुरूप न हो।

अधिनियम की धारा 243 में बताया गया है कि यदि ट्रिब्यूनल के आदेश से किसी प्रबंधकीय कार्मिक के साथ किया गया कोई अनुबंध समाप्त होता हो अथवा उसमें किसी प्रकार का संशोधन होता हो तो उसके आधार पर पद छिन जाने के लिए अथवा क्षतिपूर्ति के लिए अथवा किसी भी अन्य बात के लिए मुआवजे का दावा नहीं किया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त जिस प्रबंधकीय कार्मिक का इस प्रकार अनुबंध समाप्त किया गया हो वह ट्रिब्यूनल की अनुमति के बगैर आदेश की तारीख से पाँच वर्ष की अवधि तक कंपनी में प्रबंधकीय पद पर नियुक्ति नहीं किया जाएगा अथवा इस हैसियत में कार्य नहीं करेगा।

वर्ग कार्यवाही

उपरोक्त उपबंधों के अलावा अत्याचार अथवा कुप्रबंध अथवा सदस्यों या जमाकर्ताओं या उनके किसी वर्ग के शोषण के उपचार के लिए कंपनी अधिनियम 2013 में वर्ग कार्यवाही शीर्षक के अधीन व्यवस्था की गई है। वर्ग कार्यवाही ऐसी दशा में मुकदमा दायर करने को संदर्भित करती है जहाँ बहुत से लोग एक साथ मिलकर लोगों के बड़े समूह की ओर से वाद चलाते हैं।

कंपनी अधिनियम 2013 की धारा 245 में अत्याचार एवं कुप्रबंधन संबंधी कार्यों को रोकने के लिए कंपनी इसके संचालक या लेखा-परीक्षकों के विरूद्ध सदस्यों या एवं जमाकर्ताओं द्वारा 'वर्ग कार्यवाही' किये जाने की व्यवस्था की गई है।

धारा 245 के उपबंध निम्नलिखित हैं :

i. निर्दिष्ट संख्या में सदस्य अथवा जमाकर्ता अथवा उनका कोई वर्ग सदस्यों या जमाकर्ताओं की ओर से ट्रिब्यूनल के समक्ष उस दशा में आवेदन कर सकता है जब उनका यह विचार हो कि प्रबंधकीय व्यक्तियों द्वारा कंपनी का करोबार कंपनी या इसके सदस्यों या जमाकर्ताओं के हितों के विपरीत तरीके से चलाया जा रहा है। ऐसे आवेदन के माध्यम से वे निम्नलिखित कोई या सभ आदेश प्राप्त करने का अनुरोध कर सकते हैं:

क) कंपनी के ज्ञापन-पत्र या अंतर्नियमावली के अधिकारीत कोई कार्य किये जाने से कंपनी को रोकना;
ख) कंपनी की अंतर्नियमावली या ज्ञापन –पत्र के किसी उपबंध का उल्लंघन करने से कंपनी को रोकना;
ग) कंपनी की अंतर्नियमावाली या ज्ञापन –पत्र को परिवर्तन करने वाले संकल्प को उस दशा में व्यर्थ घोषित कराना जब संकल्प को सारभूत तथ्यों को छिपाकर पारित किया गया हो;
घ) ऐसे संकल्प पर कार्य करने से कंपनी एवं इसके संचालकों को रोकना;

ङ) कंपनी को ऐसे कार्य करने से रोकना जो कंपनी अधिनियम या तत्कालीन किसी अन्य राजनियम के उपबंधों के विपरीत हो;

च) सदस्यों द्वारा पारित किसी संकल्प के विरूद्ध कंपनी को कार्यवाही करने से रोकना;

छ) क्षतिपूर्ति या अन्य उचित कार्यवाही के लिए निम्नलिखित से कहना:

i. कंपनी या इसके संचालकों द्वारा कोई अवैधानिक कपटपूर्ण या गलत कार्य करने पर;

ii. कंपनी की लेखा-परीक्षा कर्म सहित लेखा परीक्षक को अपनी रिपोर्ट में अनुचित या भ्रामक कथन या गैर-कानूनी कार्य या कपटपूर्ण कार्यवाही किए जाने पर;

iii. कोई विशेषज्ञ या परामर्शदाता या सलाहकार या कोई अन्य व्यक्ति जिसने कंपनी कोई गलत या भ्रामक कथन किया हो या गैर-कानूनी या कपटपूर्ण कार्य किया हो।

ज) कोई अन्य उपचार मांगना जिसे ट्रिब्यूनल उचित समझता हो।

ii. यदि सदस्य या जमाकर्ता लेखा-परीक्षा फर्म से या उनके विरूद्ध कोई हर्जाना या क्षतिपूर्ति चाहते हैं अथवा किसी अन्य उचित कार्यवाही की मांग करते हैं तो दायित्व फर्म एवं उसके प्रत्येक सदस्य का होगा जो लेखा-परीक्षा रिपोर्ट में कोई अनुचित या भ्रामक कथन में शामिल या अथवा जिसने कपटपूर्ण गलत या गैर-कानूनी तरीके से कार्य किया हो।

iii. ट्रिब्यूनल से उपरोक्तानुसार आवेदन करने हेतु सदस्यों की संख्या निम्नलिखित होगी:

क) शेयर पूँजी वाली कंपनी की दशा में, कंपनी कम-से-कम 100 सदस्य अथवा इसके सदस्यों की संख्या का कम से कम ऐसा प्रतिशत जिसे निर्धारित किया जाये, इनमें से जो भी कम हो, अथवा कंपनी की निर्गमित शेयर पूँजी का कम से कम ऐसा प्रतिशत जिसे निर्धारित किया जाए रखनेवाला कोई सदस्य या सदस्य गण बशर्ते आवेदक या आवेदकगण अपने शेयरों पर देय सभी याचनाएँ एवं अन्य राशियों का भुगतान कर चुके हों;

ख) बिना शेयर पूँजी वाली कंपनी की दशा में इसकी कुल संख्या के कम से कम 20% सदस्य।

iv. ट्रिब्यूनल को आवेदन करने वाले जमाकर्ताओं की संख्या 100 जमाकर्ताओं से कम अथवा जमाकर्ताओं की कुल संख्या के ऐसे प्रतिशत से कम, जो निर्धारित किया जाये, इनमें से जो भी कम हो, से कम नहीं होनी चाहिए अथवा ऐसा जमाकर्ता या जमाकर्तागण जिनकी कंपनी के पास कुल जमाराशियों का निर्धारित प्रतिशत जमाराशि है।

उपरोक्त संख्या के अधीन रहते हुए कोई व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह या किसी कार्य या भूल आदि से प्रभावित होने वाले व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करनेवाला कोई संघ इस धारा के अधीन आवेदन दे सकता है या कोई अन्य कार्यवाही कर सकता है।

4) यदि ट्रिब्यूनल द्वारा किसी आवेदन को विचार करने के लिए स्वीकार किया जाता है तो इसके लिए द्वारा निम्नलिखित कार्य किये जायेंगे-

क) वर्ग के सभी सदस्यों या जमाकर्ताओं के पास निर्धारित तरीके से आवेदन को विचार करने हेतु स्वीकार किये जाने की सार्वजनिक सूचना दी जायेगी;

ख) क्षेत्राधिकार में आनेवाले समान आवेदन-पत्रों को मिलाकर एक आवेदनपत्र माना जायेगा तथा सदस्यों या जमाकर्ताओं के वर्ग को प्रमुख आवेदक को चयन करने की अनुमति दी जायेगी;

ग) एक ही कार्यवाही के संबंध में दो वर्ग की कार्यवाही वाले आवेदनों को अनुमति नहीं दी जायेगी;

घ) वर्ग कार्यवाही हेतु आवेदनों संबंधी व्ययों का भुगतान कंपनी अथवा किसी अन्य ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जायेगा जो अत्याचार के लिए दायी हो।

5) ट्रिब्यूनल द्वारा पारित आदेश कंपनी, इसके सभी सदस्यों, जमाकर्ताओं लेखा परीक्षण फर्म लेखा परीक्षक, विशेषज्ञ या सलाहकार या परामर्शदाता अथवा कंपनी से संबद्ध अन्य व्यक्तियों पर बाध्यकारी होगा।

6) यदि ट्रिक्यूनल के समक्ष फाइल किया गया कोई आवेदन तुच्छ अथवा तंग करनेवाला पाया जाता है तो ट्रिब्यूनल द्वारा आवेदन को निरस्त कर दिया जायेगा तथा यह आदेश दिया जायेगा कि आवेदक द्वारा विरोधी पक्षकार को आदेशानुसार ऐसी राशि का भुगतान किया जाये जो 1 लाख रूपये से अधिक न हो।

7) इस धारा के उपबंध बैंकिंग कंपनी पर लागु नहीं होंगे।

8) ट्रिब्यूनल द्वारा पारित किये गये आदेश का पालन न किये जाने पर कंपनी पर कम से कम 5 लाख रूपये का जुर्माना लगाया जा सकता है जिसे 25 लाख रूपये तक बढ़ाया जा सकता है। गलती करने वाले कंपनी के प्रत्येक अधिकारी को 3 वर्ष तक का कारावास तथा कम से कम 25 हजार रूपये जुर्माना, जिसे 1लाख रूपये तक बढ़ाया जा सकता है, की सजा दी जा सकती है।

5.6 कंपनी का समापन

कंपनी एक कृत्रिम व्यक्ति है और कृत्रिम व्यक्ति होने के कारण इसकी मृत्यु एक प्राकृतिक व्यक्ति की तरह नहीं हो सकती है। समामेलन द्वारा कंपनी अस्तित्व में आती है तथा विघटन द्वारा इसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

समापन का अर्थ

कंपनी के समापन से आशय उसके कारोबार के बंद करने की प्रक्रिया से है। प्रो. गावर के शब्दों में "कंपनी का समापन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कंपनी का कारोबार समाप्त किया जाता है तथा उसकी

संपत्तियों को उसके लेनदारों तथा सदस्यों के भुगतान हेतु प्रयोग किया जाता है। एक समापक प्रशासक के रूप में नियुक्त किया जाता है जो कंपनी का नियंत्रण अपने हाथ में लेता है, उसकी सम्पत्तियाँ बेचकर धन एकत्रित करता है, उसके ऋणों का भुगतान करता है तथा अंत में शेष आधिक्य को सदस्यों में उनके अधिकारानुसार वितरित करता है।”

इस प्रकार कंपनी के समापन की प्रक्रिया में संपत्तियों को बेचकर धन एकत्रित करना, देयताओं का भुगतान करना और कंपनी की सदस्यों में शेश आधिक्य (यदि कोई है) का वितरण करना शामिल है।

समापन के प्रकार

कंपनी अधिनियम की धारा 270 के अनुसार कंपनी का समापन निम्नलिखित दो तरीकों में से किसी भी तरीके से किया जा सकता है :

1. ट्रिब्यूनल द्वारा समापन; अथवा
2. स्वैच्छिक समापन

ट्रिब्यूनल द्वारा समापन

ट्रिब्यूनल द्वारा समापन के आधार

कंपनी अधिनियम की धारा 271(1) के अनुसार ट्रिब्यूनल द्वारा किसी कंपनी का समापन निम्नलिखित परिस्थितियों में किया जा सकता है :

1. **विशेष संकल्प** – यदि कंपनी ने कोई विशेष संकल्प पारित कर लिया है कि कंपनी का समापन ट्रिब्यूनल द्वारा किया जाना चाहिए फिर भी ट्रिब्यूनल ऐसा आदेश देने के लिए बाध्य नहीं है। यदि ट्रिब्यूनल के अनुसार समापन जनहित अथवा कंपनी के हित में नहीं है तो ट्रिब्यूनल समापन का आदेश देने से इंकार कर सकता है। समापन का यह तरीका प्रचलित नहीं है क्योंकि यदि कंपनी के सभी सदस्य समापन का निश्चय करते हैं तो वे स्वैच्छिक समापन को अधिक पसंद करते हैं।
2. **राष्ट्रीय हित के विरुद्ध कार्य करना** – कंपनी ने यदि निम्नलिखित के हित के विपरीत कार्य किया हो तो इसके समापन का आदेश दिया जा सकता है :
    i. भारत की एकता और अखंडता,
    ii. राज्य की सुरक्षा,
    iii. विदेशी राज्यों के साथ मित्रवत संबंध,
    iv. नैतिकता,
    v. शिष्टाचार, अथवा
    vi. लोक-व्यवस्था

3. **अध्याय XIX के अधीन ट्रिब्यूनल का आदेश -** कंपनी का उस स्थिति में समापन किया जा सकता है जब ट्रिब्यूनल ने अध्याय XIX जोकि रुग्ण कंपनियों के पुनरुज्जीवन एवं पुनरुद्धार के संबंध में है, के अधीन कंपनी के समापन का आदेश दिया हो।
4. **कंपनी का कारोबार कपटपूर्ण तरीके से चलाया जा रहा हो** – यदि रजिस्ट्रार या केंद्र सरकार द्वारा अधिकृत किसी अन्य व्यक्ति द्वारा ट्रिब्यूनल को आवेदन देने पर ट्रिब्यूनल का यह विचार हो कि :
   - i. कंपनी कपटपूर्ण एवं अवैध प्रयोजन से बनाई गई थी; या
   - ii. कंपनी का कारोबार कपटपूर्ण रीति से चलाया गया है; या
   - iii. कंपनी के निर्माण अथवा कारोबार के प्रबंधन में लगे व्यक्ति कपट, कर्तव्य भंग या दुराचार के दोषी रहे हैं, तो ट्रिब्यूनल कंपनी के समापन का आदेश डे सकता है।
5. **वित्तीय विवरणपत्र फाइल करने में चूक** – यदि कंपनी ने पहले पांच लगातार वित्तीय वर्षों के वित्तीय विवरणों को रजिस्ट्रार के पास फाइल करने में चूक की है तो ट्रिब्यूनल द्वारा कंपनी का समापन किया जा सकता है।
6. **ऋणों के भुगतान में असमर्थता** – यदि कंपनी अपने ऋणों का भुगतान करने अथवा धन संबंधी देयताओं को पूरा करने में असमर्थ है तो ट्रिब्यूनल द्वारा उसके समापन का आदेश दिया जा सकता है।
7. **न्याय-सांगत एवं साम्यिक** – यदि ट्रिब्यूनल की राय में कंपनी का समापन न्याय-सांगत एवं साम्यिक है तो भी कंपनी के समापन का आदेश दिया जा सकता है। 'न्याय-सांगत एवं साम्यिक' क्या है, यह प्रत्येक मामलों के तथ्यों पर निर्भर करता है। इस उपबंध के अधीन ट्रिब्यूनल की शक्ति को पर्याप्त व्यापक बना दिया गया है।

स्वैच्छिक समापन

जब किसी कंपनी का समापन ट्रिब्यूनल के हस्तक्षेप के बगैर, उसके लेनदारों व सदस्यों द्वारा किया जाता है तो उसे स्वैच्छिक समापन कहते हैं। स्वैच्छिक समापन की दशा में कंपनी तथा उसके लेनदार अपने मामलों को ट्रिब्यूनल में ले जाए बगैर ही निपटा लेने के लिए स्वतंत्र हैं, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर वे आदेशों व निर्देशों के लिए ट्रिब्यूनल से आवेदन कर सकते हैं।

स्वैच्छिक समापन के आधार

कंपनी अधिनियम की धारा 304 के अनुसार किसी कंपनी का स्वैच्छिक समापन निम्नलिखित डॉ तरीकों से किया जा सकता है:

1. **साधारण संकल्प द्वारा** – यदि कंपनी के अंतर्नियमावली द्वारा निर्धारित कंपनी के कार्यकाल की अवधि समाप्त हो गई है अथवा यदि वह घटना घटित हो गई है जिसके घटित होने पर

अंतर्नियमावली के अनुसार कंपनी का विघटन कर दिया जायेगा तो एक साधारण संकल्प पारित करके कंपनी का समापन प्रारंभ किया जा सकता है।

2. **विशेष संकल्प द्वारा** – कंपनी किसी भी समय, बिना कोई कारण बताए, एक विशेष संकल्प पारित करके यह निश्चय कर सकती है कि उसका स्वैच्छिक समापन कर दिया जाए।

   स्वैच्छिक समापन हेतु पारित किये गए संकल्प की तिथि से 14 दिन के भीतर कंपनी को उस संकल्प की सूचना सरकारी राजपत्र में और उस जिले में, जिसमें कंपनी का पंजीकृत कार्यालय स्थित है, चलने वाले किसी समाचार-पत्र में विज्ञापन द्वारा देनी चाहिए।

5.7 सारांश

कंपनी के निर्माण तथा उसका व्यापार प्रारंभ करने के लिए अधिक मात्रा में पूँजी की आवश्यकता होती है। यह पूँजी किसी एक व्यक्ति द्वारा नियोजित करना संभव नहीं होता। जब कंपनी को पूँजी की आवश्यकता होती है तो वह उसे एकत्र करने के लिए जनता से प्रस्ताव करती है कि वह कंपनी को पूँजी के लिए अपने धन का विनियोजन करे। इसके लिए पूँजी के छोटे-छोटे समान टुकड़े कर दिये जाते है; जिन्हें शेयर कहते हैं। अत: शेयर पूँजी का आंशिक भाग होता है। यह किसी शेयरधारी का कंपनी में अधिकारों एवं हितों के स्वामित्व का आधार होता है। कंपनी के किसी सदस्य के शेयर अथवा ऋणपत्र चल संपत्ति होते हैं तथा उनका अन्तरण कंपनी की अंतर्नियमावली में दी गई रीति से हो सकता है। अन्तरण की सुविधा हेतु शेयरों को स्टॉक में बदला जाता है। स्टॉक से आशय एकीकृत किए गए कंपनी के पूर्णदत्त शेयरों की पोटली से है। कंपनी के शेयरों के निर्गमन से प्राप्त हुई अथवा होनेवाली पूँजी को शेयर-पूँजी कहा जाता है। शेयर-पूँजी कहा जाता है। शेयर-पूँजी विभिन्न प्रकार के होते हैं तथा अधिनियम में दी गई विधि से इसे आवश्यकतानुसार घटाया जा सकता है। शेयर मुख्य रूप से पूर्वाधिकार एवं इक्विटी के रूप में हो सकते है। सफल कंपनियों द्वारा अपने प्रतिभूतियों का निर्गमन प्रीमियम पर किया जा सकता है। अधिनियम की धारा 53 के अनुसार कंपनी श्रमसाध्य इक्विटी शेयरों के अलावा कोई भी शेयर बट्टे पर निर्गमित नहीं कर सकती है। सामान्य स्थिति में कंपनियों द्वारा अपने शेयरों के बाईबैक पर प्रतिबंध है परन्तु धारा 66 में बताई गई प्रक्रिया को अपनाकर केवल वैद्य एवं युक्तिगत प्रयोजनों के लिए शेयर-पुँजी कम की जा सकती है। अधिनियम में शेयर पूँजी के अतिरिक्त निर्गमन तथा बोनस शेयरों के निर्गमन का भी प्रावधान किया गया है। कंपनी के प्रत्येक शेयरधारी को उनके पंजीकृत शेयरों के लिए संचालक द्वारा शेयर प्रमाण-पत्र जारी किया जाता है।

अपने कारोबार के सुचारू संचालन हेतु प्रत्येक वाणिज्यिक अथवा व्यापारिक कंपनी को किसी भी सीमा तक ऋण लेने का अधिकार होता है। साथ ही कंपनी उधार ली गई राशि के लिए जमानतके रूप में अपनी संपत्तियोंको प्रभावित करने का अधिकार अथवा राक्षित हो सकतेहैं। कंपनी की संपत्तियोंको स्थायीरूप से अथवा अस्थायी रूप से प्रभावित किया जा सकता है प्रभार का निर्धारित विवरण तथा इस प्र भार को

सृजित करने वाला प्रपत्र अथवा इसकी एक प्रमाणित प्रति प्रभार सृजित करने के 30 दिन के भीतर पंजीकरण के लिए रजिस्ट्रार के पास दाखिल किए जाने चाहिए। ऋण-पत्र कंपनी द्वारा जारी किया गया ऋण का प्रमाण-पत्र होता है और प्राय: कंपनी की संपत्ति को प्रभारित करता है। संभवत: ऋणपत्रों का निर्गमन, कंपनीद्वारा दीर्घकालीन ऋण प्राप्त करने का सबंसेसरल तरीका है। ऋण-पत्र आबंटित करने के लिए वे सभी कनूनी व्यवस्थाएँ लागू होती हैं जो शेयर आबंटित करने के लिए निर्धारित है। परन्तुऋण-पत्र एव शेयर कई तरीके से भिन्न होते है, किसी कंपनी में एक से अधिक प्रकार के ऋण-पत्र हो सकते हैं और सुरक्षा अंतरणीयता , मूल राशि की वापसी आदि के संबंध में प्रत्येक श्रेणी में अधिकारी भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। ऋण-पत्रधारियों के हितों का संरक्षण करनेके उद्देश्य से ऋण-पत्रों के संबंध में ऋण-पत्र न्यासी की नियुक्त, इनके कर्तव्य व शक्तियो, ऋण-पत्र शोधन आरक्षित निधि बनाने व कंपनीद्वारा ऋण-पत्रों का भुगतान करने में त्रुटि करने पर ऋण-पत्रधारकों के ट्रिब्यूनल में आवेदन करने का प्रावधान किया गया है।

कंपनियों का उचित प्रबंधन लोकहित का विषय है क्योंकि इनके कुंशल कार्य-संचालक में एक ओर तो शेयरधारी के हैसियत से अथवा एक कर्मचारी अथवा एक लेनदान की हैसियत से असंख्य व्यक्तियों के हित निहित होते हैं तथा दूसरी ओर ऐस अवांछनीय लोग भी होते हैं जो समाज के भोल-भाले सदस्यों का शोषण करने के लिए शतत् प्रयत्नशील होते है। प्राय: सभी कंपनियाँ प्रबंध-संचालक अथवा प्रबंधक की सहायता से संचालक- मंडल द्वारा प्रबंधन करने की प्रणाली अपनाती है। वास्तविक दृष्टि से संचालक पूर्णरूपेण न तो एजेन्ट होता है और नहीं प्रबंधक साझेदार अथवा स्वामी और न ही न्यासी। उनमें यह सभी हैसियत एक साथ रहती है। कंपनी अधिनियम में संचालक के लिए कोई शैक्षणिक अथवा शेयर धारण संबंधी योग्यताएँ निर्धारित नहीं की गई है। अधिनियम की धारा 164 में संचालकों की अयोग्यताओं का उल्लेख किया गया है। कंपनी के संचालक के रूप में नियुक्ति के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति को संचालक पहचान संख्या (DIN) प्रापत करना अनिवार्य है। कानूनी तौर पर संचालक के रूप में किसी फर्म संस्था अथवा कंपनी की नियुक्ति नहीं की जा कसती है अपि केवल कोई व्यक्ति ही कंपनी का संचालक बन सकता है। प्रथम संचालकों की नियुक्ति ज्ञापन –पत्र के हस्ताक्षरकर्ताओं द्वारा की जाती है। संचालकों को शेयरधारियों द्वारा तथा ट्रिब्यूनल द्वारा हटाया जा सकता है। संचालकों के पारिश्रमिक के संबंध में जब तक अंतर्नियमावली में कोई विशेष व्यवस्था न की गई हो अथवा शेयरधारियों ने इसके लिए साधारण सभा में कोई संकल्प पारित न किया हो तब तक वे पारिश्रमिक प्राप्त करने का कोई अधिकार रखते है।

बहुसंख्यकों के शासन के सिद्धांत के अनुसार, 'बहुसंख्याकों की इच्छा की अनिवार्यत: जीत होनी चाहिए।' प्रबंधन एवं निर्णय लेने की व्यवस्था के अंतर्गत यह बात स्पष्ट है कि संचालकों को सौंपे गए विषयों के अतिरिक्त अन्य सभी विषयों के संबंध में बहुसंख्यक शेयर धारियों की इच्छा ही कंपनी के प्रशासन में सर्वोपरि होती है। बहुसंख्यकों की सर्वोपरिता का सिद्धांत सर्वप्रथम 1843 में फॉस बनाम हारबोटल के प्रसिद्ध

वाद में न्यायिक स्तर पर स्वीकार किया गया था। फॉस बनाम हारबोटल के वाद में प्रतिपादित सिद्धांत तब से अनेक अन्य वादों में भी अपनाया गया है। अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए न्याय की दृष्टि से बहुसंख्यकों की सर्वोपरिता के सिद्धांत के कुछ अपवाद भी स्वीकार किये गये हैं। कंपनी अधिनियम, 2013 की धारा 241 से 245 तक के विशेष उपबंधों के अधीन ट्रिब्यूनल को 'अत्याचार एवं कुप्रबंधन की रोकथाम' के लिए कंपनी के मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया गया है। धारा 244 में अत्याचार एवं कुप्रबंध के मामलों में राहत के लिए ट्रिब्यूनल से आवेदन करने का अधिकार रखनेवाले सदस्यों की संख्या को निर्दिष्ट किया गया है। अत्याचार अथवा कुप्रबंध के मामलों में ट्रिब्यूनल की व्यापक शक्तियाँ है। इस संबंध में आवेदन प्राप्त होने पर ट्रिब्यूनल यथोचित आदेश दे सकता है। अत्याचार अथवा कुप्रबंध अथवा सदस्यों या जमाकर्ताओं या उनके किसी वर्ग के शोषण के उपचार के लिए कंपनी अधिनियम, 2013 में 'वर्ग कार्यवाही' शीर्षक के अधीन व्यवस्था की गई है। ट्रिब्यूनल द्वारा पारित किया गया आदेश कंपनी इसके सभी सदस्यों, जमाकर्ताओं लेखा परीक्षक, लेखा परीक्षण फर्म, विशेषज्ञ या सलाहकार या परामर्शदाता अथवा कंपनी से सबंद्ध अन्य व्यक्तियों पर बाध्यकारी होगा।

5.8 बोध प्रश्न

1. एक कंपनी में शेयर की प्रकृति क्या होती है ? शेयर और स्टॉक में क्या अंतर है ?
2. प्रीमियम पर शेयरों के निर्गमन से आप क्या समझते है ? शेयरों पर प्रीमियम की धनराशि को कंपनी द्वारा किस प्रकार प्रयोग किया जा सकता है ?
3. शेयर-पूँजी को घटाने की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
4. कंपनी अधिनियम, 2013 के अधीन 'श्रम साध्य ईक्विटी शेयरों के निर्गमन को प्रस्तावित करने वाली कंपनी द्वारा पूरी की जाने वाली शर्तों का वर्णन कीजिए
5. बोनस शेयर क्या होते हैं ? ये कब जारी किए जाते हैं ? बोनस शेयरों के निर्गमन के संबंध में कानूनी प्रावधान बताइए।
6. अतिरिक्त शेयरों के निर्गमन संबंधी में कंपनी अधिनियम, 2013 के प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
7. शेयर प्रमाण-पत्र क्या है ? शेयर प्रमाण-पत्र के निर्गमन के कानूनी प्रभाव क्या होते हैं ? किन परिस्थितियों में शेयर प्रमाण-पत्र की दूसरी प्रति जारी की जा सकती है ?
8. कंपनी के ऋण लेने के अधिकारों की विवेख्ना कीजिए। यदि कंपनी अपने अधिकारों से बढ़कर ऋण प्राप्त कर ले तो ऋणदाता को कौन से उपचार प्राप्त होंगे?
9. चल प्रभार के स्वरूप तथा प्रभावों की व्याख्या कीजिए। यह स्थिर रूप कब धारण करता है?
10. ऋण-पत्र कितने प्रकार के होते हैं? ऋण-पत्र, शेयरों से किस प्रकार भिन्न होते है?
11. प्रभारों के पंजीयन के संबंध में कंपनी अधिनियम 2013 के प्रावधानों का वर्णन कीजिए। प्रभारों के पंजीयन न होने के प्रभाव को समझाए।

12. ऋण-पत्रधाकों के हितों की सुरक्षा के संबंध में कंपनी अधिनियम, 2013 के प्रावधानों का वर्णन कीजिए।

13. 'बहुमत के शासन के सिद्धांत' की व्याख्या कीजिए तथा कथित सिद्धांत के अपवाद बताइए।।

14. 'फॉस बनाम हारबोटल' में प्रतिपादित नियम की व्याख्या कीजिये।

15. शेयरधारियों पर अत्याचार और कंपनी का कुप्रबंध रोकने के लिए कंपनी अधिनियम, 2013 के उपबंधों की व्याख्या कीजिए।

16. कंपनी अधिनियम, 2013 के अधीन कंपनी में अत्याचार एवं कुप्रबंधन की रोकथाम के लिए ट्रिब्यूनल की शक्तियाँ समझाइए।

17. धारा 245 के अधीन 'वर्ग कार्यवाही' के संबंध में कंपनी अधिनियम, 2013 के उपबंधों का वर्णन कीजिए।

18. समापन का क्या अर्थ है ? ट्रिब्यूनल द्वारा समापन के आधारों का वर्णन कीजिए।

5.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- एम. सी. कुच्छल, आधुनिक भारतीय कंपनी अधिनियम, महावीर प्रकाशन, दिल्ली- 2010